शरद्-ग्रन्थावली—पुस्तक-संख्या ८

लेन-देन

मूल-लेखक

श्रीशरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय

अनुवादक

पंडित हरिदास शास्त्री

(Late Vice-Principal, A. & U. T. College, Delhi)

और

पंडित गोपालचन्द्र वेदान्तशास्त्री

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

प्रथमावृत्ति] संवत् १९८६ वि० [मूल्य २॥)

Published by
K. Mittra,
at The Indian Press, Ltd.,
Allahabad.

Printed by
A. Bose,
at The Indian Press, Ltd.
Benares-Branch.

लेन-देन

१

चण्डीगढ़ की चण्डी माता बहुत प्राचीन देवी हैं। कहते हैं कि राजा वीरबाहु के किसी पूर्वज ने एक लड़ाई जीतने पर, स्मारक रूप से, बारुई नदी के तट पर यह मन्दिर बनवाया था। इसके बाद, इसी मन्दिर के सहारे, धीरे-धीरे यह चण्डीगढ़ गाँव बस गया। शायद किसी ज़माने में सारा चण्डीगढ़ गाँव वास्तव में देवोत्तर-सम्पत्ति रहा हो; परन्तु अब तो मन्दिर के आस-पास की थोड़ी सी ज़मीन को छोड़कर बाक़ी सब अंश लोगों ने छीन लिया है। यह ग्राम अब बीजगाँव की ज़मींदारी में है। साधारण पाठकों को यह जानने की आवश्यकता नहीं कि अनाथ ग़रीबों का धन और मूक देवता की सम्पत्ति किस प्रकार अज्ञेय रहस्यमय उपाय से अन्त में ज़मींदार के पेट में आकर समाती है। मेरा कहना इतना ही है कि चण्डीगढ़ का अधिकांश अब चण्डी माता के हाथ से निकल गया है। देवता का शायद इससे कुछ हानि-लाभ नहीं; परन्तु जो लोग उनके सेवक हैं, उनके हृदय से यह क्षोभ आज तक नहीं मिटा।

इसलिए उनमें लड़ाई-झगड़ा लगा रहता है और कभी-कभी तो वह भयङ्कर रूप धारण कर लेता है। बीजगाँव का ज़मींदार-वंश अत्याचारी होने के कारण बदनाम है; परन्तु साल भर पहले सन्तानहीन ज़मींदार के गुज़र जाने से उनके भानजे जीवानन्द चौधरी ने जिस दिन से ज़मींदारी का भार लिया है, उस दिन से तो छोटे-बड़े सभी किसानों का जीवन कण्टकमय हो उठा है। लोग कहते हैं कि भूतपूर्व ज़मींदार कालीमोहन बाबू ने भी इस आदमी के अत्याचार और उच्छृंखलता से परेशान होकर इसे त्याग देने का सङ्कल्प किया था, परन्तु एकाएक मौत ने आकर उस सङ्कल्प को कार्यरूप में परिणत नहीं होने दिया।

यही जीवानन्द चौधरी अब राज्य-परिदर्शन के बहाने चण्डीगढ़ में आये हुए हैं। गाँव के भीतर सदा से एक छोटी सी तहसीली कचहरी थी; परन्तु बाँकुड़ा ज़िले के इस पहाड़ी गाँव की आब-हवा की ख्याति के कारण और ख़ासकर इस रेतीली बारुई नदी के जल के अत्यन्त रुचिकर होने से जीवानन्द के नाना राधामोहन बाबू ने गाँव के बाहर, नदी के किनारे, शान्तिकुञ्ज नाम से एक सुन्दर बँगला बनवाया था। वे उसमें कभी-कभी आकर रहते भी थे। परन्तु उनके पुत्र कालीमोहन बाबू ने अपने जीवन में कभी इसमें पैर नहीं रक्खा। अतः एक समय जिस भवन में सौन्दर्य, ऐश्वर्य और मर्यादा थी—चारों ओर का बाग़ दिन-रात फल-फूलों से हरा-भरा रहता था—वही, दूसरे के हाथ में पड़कर, देख-रेख

न होने से बिलकुल वीरान हो गया है। न उसमें माली है, न कोई रक्षक ही। आस-पास में मनुष्यों की बस्ती भी नहीं। केवल बारुई नदी के सूखे किनारे पर एक टूटा-फूटा विशाल भवन, जङ्गल के भीतर पूर्व-गौरव को खोकर सुनसान सन्नाटे में खड़ा है। पता नहीं कि कब से यहां कोई आया-गया नहीं है, किन्तु कचहरी के प्रधान कर्मचारी मालिकों के यहाँ बराबर झूठी इत्तला भेजते रहे हैं।

ऐसी दशा में एकाएक एक दिन तीसरे पहर नये ज़मींदार केवल दो पियादों को साथ लेकर गाँव में कचहरी के सामने आ गये; परन्तु पालकी से नहीं उतरे, सिर्फ़ गुमाश्ते एककौड़ी नन्दी को बुलाकर कह दिया कि हम शान्तिकुञ्ज में थोड़े दिन ठहरेंगे। आज्ञा देकर वे अपने गन्तव्य स्थल को चल दिये। डर के मारे एककौड़ी के मुँह पर कालिमा छा गई। शायद शान्तिकुञ्ज में जाने का रास्ता भी न हो; वहाँ के किवाड़ें, जँगलों और चौखट को चोर चुरा ले गये हों; शायद वहाँ कमरों में जङ्गली जानवरों का अड्डा जम गया हो। एककौड़ी को पता ही न था कि वहाँ क्या है और क्या नहीं।

इस सन्ध्या समय नौकर-चाकर कहाँ मिलेंगे, दिया-बत्ती का इन्तज़ाम कैसे होगा; और खाने-पीने का बन्दोबस्त ही वह कहाँ से करेगा,—एकाएक वह क्या करे, किसकी शरण ले—इसी चिन्ता में उसको शरीर भारी मालूम होने लगा, सिर में भी चक्कर आने लगा। नौकरी तो गई ही,—वह चली जाय,

परन्तु इस दुर्दान्त नये मालिक के सम्बन्ध में अब तक लोगों के मुँह से जो क़िस्से सुनने में आये हैं उनमें कोई भी ऐसा नहीं था जो उसको भरोसा दे। बिना ख़बर, बिना इत्तला दिये उनका यह शुभागमन जब केवल उसी के लिए है तब इन्हीं की ज़मींदारी में अपने बाल-बच्चों को कहाँ छिपाकर वह अपनी जान बचावेगा, इसका कुछ उपाय उसको सूझ न पड़ा।

मालिक को उसने कभी देखा नहीं था,—ज़रूरत भी नहीं हुई—आज भी डर के मारे मालिक पर दृष्टि डालने का उसे साहस नहीं हुआ; परन्तु कहारों के पालकी लेकर तङ्ग रास्ते में अदृश्य होते ही उसके मन में पालकी के भीतर की जिस मूर्त्ति की छाया पड़ी, वह बड़ी ही भयङ्कर मालूम हुई। उसकी लापरवाहियों और चोरियों की जाँच-पड़ताल अब वे स्वयं करेंगे, उसका कौन-कौन हिस्सा किस-किसके मत्थे मढ़ा जा सकता है, यही वह जब सोच रहा था उसी समय कचहरी का बड़ा पियादा हाँफता हुआ दौड़ता आया। वह बेचारा वसूली के लिए तक़ाज़े करने गया हुआ था। रास्ते में इस दुर्घटना की ख़बर पाकर दौड़ता हुआ लौट आया। उसने हाँफते-हाँफते पूछा—हुज़ूर आये हैं न?

एककौड़ी ने आँख उठाकर सिर्फ़ "हाँ" कहा।

विश्वम्भर अकचकाकर पल भर एककौड़ी के पीले चेहरे की ओर ताकता रहा। इसके बाद उसने कहा—हाँ क्या, मुन्शी बाबू? ख़ुद हुज़ूर ही तो आये हैं।

एककौड़ी निराशा से भीतर ही भीतर उन्मत्त हो उठा था। उसने उग्र स्वर से उत्तर दिया—आये हैं तो मुझे क्या? ख़बर नहीं, इत्तिला नहीं, हुजूर आ गये! हुजूर हैं तो सिर तो नहीं न काट लेंगे।

इस आकस्मिक उत्तेजना का अर्थ एकाएक विश्वम्भर की समझ में न आया। इससे कुछ देर तक वह चुप रहा परन्तु उसका दिमाग़ जैसा साफ़ था वैसा ही ठण्डा था। पियादा होने पर भी गुमाश्ते के साथ उसका सम्बन्ध बहुत घनिष्ठ था। उसने एककौड़ो को भीतर ले जाकर थोड़ो ही देर में ढाढ़स दिलाया और शराब की बोतल, मांस और उसकी साथिन एक गुप्त वस्तु का इशारा देकर इतनी बड़ी आशा दिलाने में भी आगा-पीछा न किया कि मनुष्य के भाग्य को जब कि देवता भी नहीं जान सकते तब मालिक की नज़र में पड़ने से नन्द जी के भाग्य में किसी दिन बड़े दफ़्तर की 'दीवानी' हासिल नहीं होगी यह कौन कह सकता है।

थोड़ी ही देर में एककौड़ी जब कुछ आदमी, दो लालटेनें और कुछ फल-मूल लेकर विश्वम्भर के साथ शान्तिकुञ्ज के टूटे-फूटे फाटक के सामने पहुँचा तब सन्ध्या बीत चुकी थी। उसने देखा कि इतने ही समय में थोड़ी-बहुत झाड़ियों को हटाकर आने-जाने लायक़ रास्ता साफ़ कर लिया गया है। तब भी इस जङ्गल के अँधेरे रास्ते में एकाएक घुसने की बहुत देर तक किसी को हिम्मत नहीं हुई। घुसकर भी पग-पग

पर उनके शरीर काँपने लगे। आठ-दस बीघे तक जङ्गल था, इसलिए रास्ता भी कम नहीं और उसको पार कर जाना भी सहज नहीं था। कहीं दिया भी दिखाई नहीं देता था। सिर्फ़ चबूतरे के एक तरफ़ जहाँ कहार लोग पालकी उतारकर बैठे हुए तमाखू पी रहे थे उसी के पास जलती हुई लकड़ी से कुछ प्रकाश मालूम होता था। ख़बर पाकर नौकर आया और एककौड़ी को कमरे के अन्दर ले गया। कमरे भर में शराब की बू भरी हुई थी, एक कोने में मोमबत्ती टिमटिमा रही थी, दूसरी तरफ़ एक टूटे पलँग पर बिस्तरा बिछा हुआ था जिस पर बीजगाँव के ज़मींदार जीवानन्द चौधरी बैठे हुए थे। वे बहुत ही दुबले और गोरे थे। उनकी उम्र का अन्दाज़ा लगाना कठिन था, क्योंकि अत्यधिक अत्याचार से चेहरा सूख-कर लकड़ी की तरह कड़ा हो गया था। सामने शराब से भरा शीशे का गिलास और उसी के पास एक अजब ढङ्ग की शीशे की बोतल थी जो प्रायः ख़ाली हो गई थी। तकिये के नीचे से नैपाली खुकरी का कुछ हिस्सा दिखाई देता था और उसी के पास एक खुले बक्स के अन्दर दो पिस्तौल रक्खे हुए थे।

एककौड़ी दण्डवत् कर हाथ जोड़कर खड़ा हो गया।

मालिक ने कहा—तुम्हीं एककौड़ी नन्दी हो? क्या तुम्हीं यहाँ के गुमाश्ते हो?

डर के मारे एककौड़ी का कलेजा काँपने लगा। उसने रुकते और काँपते हुए कण्ठ से सिर हिलाकर कहा—जी हुज़ूर!

उसने सोचा था कि अब इस मकान की बात उठेगी; परन्तु मालिक ने उसका उल्लेख तक नहीं किया। यही पूछा—तुम्हारे इस दफ़्तर की आमदनी कितनी है ?

एककौड़ी—क़रीब पाँच हज़ार रुपया है, सरकार।

"कोई पाँच हज़ार ? बहुत अच्छा, मैं सात-आठ दिन यहाँ रहूँगा। इसके अन्दर मुझे दस हज़ार रुपया चाहिए।"

एककौड़ी—जो हुक्म।

मालिक ने कहा—अच्छा, कल सबेरे तुम्हारे दफ़्तर में जाकर बैठूँगा। सबेरे यानी दस-ग्यारह बजे। उससे पहले मेरी नींद नहीं खुलती। तुम पहले से ही काश्तकारों को ख़बर दे देना।

एककौड़ी ने ख़ुशी से सिर हिलाते हुए कहा—"जो हुक्म।" क्योंकि यह कहने की ज़रूरत नहीं कि मालगुज़ारी के सिवा इतना अधिक रुपया वसूल करने के गुरु भार से उसने अपने को विपन्न नहीं समझा। वह प्रसन्न चित्त से बोला—मैं आज रात को ही चारों ओर आदमी भेज दूँगा, जिससे कोई कह न सके कि समय पर ख़बर नहीं मिली।

जीवानन्द ने सिर हिलाकर सम्मति दी और शराब के प्याले को मुँह से लगाकर एक ही घूँट में ख़ाली कर दिया। उसे धीरे-धीरे रखते हुए कहा—एककौड़ी, तुम्हारे यहाँ शायद विलायती शराब की दूकान नहीं है। अच्छा कुछ चिन्ता नहीं है। जितनी मेरे साथ है उसी से इतने दिनों का काम चल जायगा, परन्तु गोश्त मुझे रोज़ चाहिए।

एककौड़ी तैयार ही था, बोला—यह क्या बड़ी बात है सरकार। चण्डी माता का ताज़ा महाप्रसाद प्रतिदिन हुज़ूर के यहाँ आ जाया करेगा।

हुज़ूर ने ख़ुश होकर "बहुत अच्छा" कहा। इसके बाद बोतल से थोड़ी सी शराब गिलास में ढालकर पी ली और मुँह पोंछते हुए कहा—और भी एक बात है एककौड़ी!

एककौड़ी की हिम्मत बढ़ती जा रही थी। उसने कहा—फ़रमाइए।

जीवानन्द ने दो-चार लौंगें मुख में डालकर कहा—देखो एककौड़ी, मैंने शादी नहीं की है और शायद करूँगा भी नहीं।

एककौड़ी चुप हो रहा। तब इस शराबी ज़मींदार ने रूखी हँसी हँसकर कहा—परन्तु इसलिए मैं भीष्मदेव—तुमने महाभारत पढ़ा है न? उसमें का भीष्मदेव—बनकर नहीं बैठा हूँ और शुकदेव भी नहीं बन गया हूँ। मेरा मतलब समझ गये न एककौड़ी? वही मुझे चाहिए।

एककौड़ी ने शर्म के मारे नीचा सिर कर थोड़ा सा कन्धा हिलाया, मुँह से जवाब नहीं दिया। गुमाश्ते को भी जिस निर्लज्जता-पूर्ण उक्ति से शर्म मालूम हुई, उसे ज़मींदार ने न केवल बिना किसी झिझक के कही दिया; बल्कि उसमें उसे लज्जा के लायक कुछ मालूम ही नहीं हुआ। उसने यह भी कह दिया कि औरों की तरह मैं इन बातों को नौकर से कहलाना पसन्द नहीं करता, उससे धोखा खाना पड़ता है। अच्छा अब

जाओ। कहारों के खाने-पीने का इन्तज़ाम कर देना—वे ताड़ी-ऊड़ी भी पीते होंगे, उसका भी ध्यान रखना। अच्छा जाओ।

एककौड़ी ने सिर हिलाकर स्वीकृति दी। अब वह दण्डवत् कर बाहर जाने को था कि ज़मींदार ने पूछा—इस गाँव में कोई बदमाश किसान तो नहीं है ?

एककौड़ी लौटकर खड़ा हो गया। उसके चित्त में बहुत दिनों का एक ज़ख्म था। मालिक के पूछने से उसमें चोट लगी। परन्तु उसने दर्द को दबाकर उदास स्वर से उत्तर दिया—ऐसा तो कोई नहीं है—सिर्फ़ तारादास चक्रवर्ती है—लेकिन वह तो हुजूर का किसान नहीं है।

"यह तारादास है कौन ?"

एककौड़ी ने कहा—गढ़चण्डी का महन्त है।

इन महन्तों के साथ ज़मींदारी के सिलसिले में एककौड़ी का अब तक बहुत लड़ाई-झगड़ा हो चुका है, परन्तु इसके लिए उसे कोई अफ़सोस नहीं था। लेकिन दो साल पहले एक पुराने कटहल के पेड़ के बाबत जो झगड़ा हुआ था उसकी जलन एककौड़ी के हृदय से अभी तक नहीं मिटी है; क्योंकि उस पेड़ के तख़्तों की ज़रूरत उसे अपने घर के लिए थी। इस झगड़े में आख़िर उसी को दबना पड़ा और छिपकर आपस में ही सुलह कर लेनी पड़ी।

एककौड़ी कहने लगा—क्या कहूँ सरकार, सदर में अर्ज़ी भेजने से ठीक हुक्म नहीं होता। दीवानजी कुछ ध्यान ही

नहीं देते, नहीं तो चक्रवर्ती को सीधा करने में कितनी देर लगती? परन्तु मैं यह भी अर्ज़ करता हूँ सरकार कि लापरवाही करने से ये लोग हमारे किसानों को भी उभाड़ देंगे— तब गाँव का इन्तज़ाम करना कठिन हो जायगा।

ज़मींदार को नशा चढ़ रहा था। उसने उदास और जकड़े हुए स्वर से पूछा—तुमने तो अकेले तारादास का ही नाम लिया एककौड़ी, फिर ये लोग कहाँ से आ गये?

एककौड़ी ने उत्तर दिया—चक्रवर्ती की लड़की भैरवी है। वैसे चक्रवर्ती ख़ुद उतना बुरा आदमी नहीं है, परन्तु असली सत्यानाशिन तो उसकी लड़की है। दुनियां भर के बदमाश गुण्डे उसके ग़ुलाम हैं।

ज़मींदार के कानों में शायद सब बातें नहीं पहुँचीं। उसने चीण स्वर से कहा—हो सकता है। उसकी उम्र कितनी है? सूरत-शकल कैसी है?

एककौड़ी ने कहा—उम्र बाईस-तेईस के क़रीब होगी। और चेहरे की बात क्या कहूँ, लड़ाके सिपाही की सूरत समझिए! न तो औरत की सी शकल है और न वैसा बर्ताव है। मानों हथियार बाँधे लड़ाई करने को तैयार है। इसी से तो लोग समझते हैं कि यही साचात् गढ़ की चण्डी है।

जीवानन्द एकाएक सीधा होकर उठ बैठा। उत्साह और कौतूहल से लाल-लाल आँखें फाड़कर बोला—क्या कहा तुमने? ज़रा खोलकर कहो तो सुनूँ! देखने में गँवार की तरह

हो सकती है, परन्तु है तो वह गृहस्थ ब्राह्मण की ही लड़की न! तब सत्यानाशिन वह कैसे हो गई और बदमाश गुण्डों का दल भी उसके साथ कैसे जुट गया ?

"इसमें आश्चर्य की बात क्या है हुज़ूर !" यह कहकर एककौड़ी ने भैरवी का जो क़िस्सा सुनाया उसका सारांश यह है--

एककौड़ी कहने लगा—भैरवी किसी का नाम नहीं, यह तो चण्डीगढ़ की प्रधान सेविका की उपाधि है। वर्तमान भैरवी का नाम षोड़शी है और इसके पहले जो भैरवी थी उसका नाम था मातङ्गिनी भैरवी। देवी की आज्ञा है कि उनके सेवक पुरुष नहीं हो सकते। यह पद चिरकाल से स्त्रियों के ही अधिकार में है। पन्द्रह-सोलह वर्ष पहले एक दिन अचानक ख़बर मिली कि मातङ्गिनी भैरवी के पति का स्वर्गवास हो गया है। जाँच-पड़ताल के बाद जब यह ख़बर सत्य प्रमाणित हुई तब मातङ्गिनी को पद-त्याग कर काशी चला जाना पड़ा।

जीवानन्द अब तक चुपचाप सुन रहा था, आश्चर्य में आकर उसने पूछा—क्या विधवा होने से भैरवी का पद छिन जाता है ?

एककौड़ी—हाँ, हुज़ूर।

"क्या इसी से उसने अपने पति को अज्ञातवास करने भेज दिया था ?"

एककौड़ी ने कहा—सिवा इसके और उपाय ही न था। देवी की आज्ञा है कि विवाह की तीन ही रात के बाद भैरवी पति को स्पर्श भी न करे। इसी लिए दूर से किसी ग़रीब के लड़के को लाकर, विवाह करा करके, दूसरे ही दिन रुपया-पैसा देकर बिदा कर दिया जाता है। इसके बाद कोई उसकी छाया तक नहीं देख सकता। यहाँ का यही नियम है। ऐसा ही बराबर होता आया है।

जीवानन्द ने हँसकर कहा—क्या कहते हो एककौड़ी? बिलकुल देश-निकाला! चण्डी की भैरवी है—रात को एकान्त में पति को गिलास भरकर शराब देना, गर्म मसाले से छौंका हुआ महाप्रसाद पकाकर खिलाना—कुछ भी नसीब नहीं होता?

एककौड़ी ने सिर हिलाकर कहा—नहीं हुज़ूर, माता की भैरवी पति को छू तक नहीं सकती। परन्तु पति के सिवा क्या गाँव में आदमी नहीं हैं? मातङ्गिनी भैरवी को देखा है, षोड़शी भैरवी को भी देख रहा हूँ। लोग क्या ऐसे ही उसके पीछे पड़े रहते हैं और बात-बात में हुज़ूर के साथ मुक़दमे लड़ते हैं?

जीवानन्द ने हँसकर कहा—महन्तिन है न? परन्तु मातङ्गिनी के बाद यह कहाँ से आ गई?

एककौड़ी ने कहा—चक्रवर्ती थे मातङ्गिनी के भानजे। ढाका या और कहीं किसी महाजन की गद्दी पर मुनीमत करते

थे, चिट्ठी पाते ही चले आये। साथ में एक नव दस वर्ष की लड़की भी थी। कहीं से एक दुलहा भी ढूँढ़ लाये। कौन जाति, किसका लड़का, कहाँ घर, कौन जाने, रातों-रात विवाह कराकर बिदा कर दिया। इसके बाद गद्दी पर बैठकर मज़े में राजभोग कर रहे हैं। कौन क्या कहे, कौन क्या पूछे? गाँव में भी आदमी नहीं हैं, राजा का शासन भी नहीं है! इतना कहकर उसने ज़मींदार पर इशारा किया। परन्तु उधर देखा तो मालूम हुआ कि उसका ताना मारना व्यर्थ हुआ। राजा आँखें मूँदे खर्राटे ले रहा है। देर तक कुछ बातचीत नहीं हुई—उसकी ग़लती से कहीं नींद न टूट जाय, इस डर से वह कठपुतली की तरह चुपचाप खड़ा हुआ मन ही मन शराबियों का श्राद्ध करने लगा और सोचने लगा कि चुपके से निकल जाऊँ या नहीं कि इतने में जीवानन्द स्वाभाविक मनुष्य की तरह बोल उठा—पन्द्रह वर्ष पहले न? अच्छा यह तारादास क्या ख़ूब नाटा और गोरा है?

एककौड़ी—नहीं हुज़ूर, चक्रवर्ती का रङ्ग गोरा है सही, परन्तु वे बहुत लम्बे हैं।

"लम्बा है? अच्छा तुम्हें यह कैसे मालूम हुआ कि यह आदमी ढाका में महाजन की गद्दी पर बही-खाता लिखता था? यह भी तो हो सकता है कि कलकत्ते में रसोइये का काम करता रहा हो।"

एककौड़ी ने सिर हिलाकर कहा—नहीं हुज़ूर, वे तो सच-मुच बही-खाता लिखते थे। वहाँ उनकी छः महीने की तनख़्वाह बाक़ी थी। मैंने ही दावा करने का डर दिखाकर ख़त-किताबत करके रुपया वसूल करा दिया था।

जीवानन्द ने कहा—तुम्हारा ही कहना सच होगा। अच्छा, क्या इसी आदमी ने किसी किसान के उजाड़ने के मुक़दमे में मामा के ख़िलाफ़ गवाही दी थी?

एककौड़ी ज़ोर से सिर हिलाकर बोला—हुज़ूर की नज़र से कुछ छिपा नहीं रह सकता। जी हाँ, ये वही तारादास हैं।

जीवानन्द ने धीरे-धीरे सिर हिलाते हुए कहा—उस बार बहुत रुपये के फेर में डाल दिया था। इन लोगों के पास कितनी ज़मीन है?

एककौड़ी मन में हिसाब जोड़कर बोला—पचास साठ बीघे से कम न होगी।

जीवानन्द तनिक चुप रहकर बोला—कल तुम ख़ुद जाकर कह देना कि मुझे बीघे पीछे दस रुपये नज़राना चाहिए। मैं आठ दिन ठहरूँगा।

एककौड़ी सकुचाते हुए बोला—वह तो माफ़ी है, देवोत्तर है सरकार।

"नहीं, इस गाँव में माफ़ी ज़मीन एक बित्ता भी नहीं है। नज़राना न देने से सब ज़ब्त हो जायगी।"

एककौड़ी कुछ उत्तर न देकर चुपचाप खड़ा रहा। वह चक्रवर्त्ती को नहीं दबता था, वह तो उसकी लड़की लड़ाकू सिपाही षोड़शी भैरवी की बात याद कर डर रहा था। ज़मींदार तो एक दिन यहाँ से चले जायँगे, परन्तु उसको तो इसी गाँव में रहना पड़ेगा। एक बार उसने दबती ज़बान से कहा भी—परन्तु हुज़ूर—

उसका कहना वहीं रुक गया। हुज़ूर ने बीच में ही रोककर कहा—मैं किन्तु परन्तु नहीं सुनना चाहता। मुझे रुपये की ज़रूरत है—मैं पाँच-छः सौ रुपया छोड़ नहीं सकता; वह उन्हें देना ही पड़ेगा। कल चक्रवर्ती को ख़बर देना कि कचहरी में हाज़िर हो। दस्तावेज़ वग़ैरह कुछ हो तो साथ लेता आवे। रात हो गई है, अब तुम जा सकते हो। आदमियों के खाने-पीने का इन्तज़ाम कर देना। घर लौटने पर मैं तुम्हारा ख़याल रक्खूँगा।

"हुज़ूर माँ-बाप हैं" कहकर एककौड़ी फिर दण्डवत् प्रणाम कर धीरे-धीरे वहाँ से निकल आया।

२

ज़मींदार जीवानन्द चौधरी को चण्डीगढ़ में क़दम रक्खे कुल पाँच ही दिन हुए हैं, इतने ही समय के भीतर सारा गाँव उनके अनाचार और अत्याचार से मानों जलकर ख़ाक होने को है। नज़राने का रुपया वसूल हो रहा है; परन्तु किस

प्रकार हो रहा है यह बात ज़मींदार की नौकरी किये बिना समझने की कोशिश करना भी पागलपन है।

तारादास चक्रवर्ती ने ज़मींदार की आज्ञा से पहले दिन हाज़िर होकर नज़राना देने से इनकार किया; छः घण्टे तक कड़ी धूप में खड़े रहकर भी स्वीकार नहीं किया। परन्तु सबके सामने कान पकड़कर उठने-बैठने, घुड़दौड़ और मेंढक का नाच नचाने के प्रस्ताव से वे धैर्य नहीं रख सके। चण्डी माता से मन ही मन ज़मींदार के वंशलोप की प्रार्थना कर, और रुपया अदा करने के लिए पाँच दिन की मुहलत लेकर वे घर लौट आये। वह दिन आज है; परन्तु सबेरे से ही उनका कहीं पता नहीं मिल रहा है।

प्रतिदिन देवी का महाप्रसाद पहुँचाया गया; तालाब की मछलियाँ, बगीचे के फल-मूल, कद्दू-कोंहड़ा आदि ज़मींदार के लोग लूट-खसोटकर ले गये। षोड़शी ने रोकना चाहा, परन्तु तारादास ने किसी बात में उसे कुछ कहने नहीं दिया, उसका हाथ पकड़ रो-धोकर किसी तरह उसे रोक रक्खा। पिता के अपमान से लेकर ये सब अत्याचार इतने दिन तक सह लेने पर भी आज की घटना से उसका सारा सञ्चित क्रोध क्षण भर में ज्वालामुखी की तरह भड़क उठा। पिता के एकाएक छिप जाने तथा उसके अवश्य होनेवाले परिणाम के बोझ को उसका मन आज उठा नहीं सकता था। इसी तरह सुबह और दोपहर बीतकर शाम हो चली, तब रात के अँधेरे में

भूखे पिता के लौट आने की आशा से वह कुछ रसोई करने बैठी थी कि इतने में मन्दिर की परिचारिका ने आकर जिस अत्याचार का वर्णन किया वह यह है—

मतवाले ज़मींदार पर यह धुन सवार हुई है कि अब वह 'निषिद्ध' मांस तो कभी खायगा ही नहीं और 'वृथा' मांस भी नहीं खायगा। बकरे का मांस काफ़ी स्वादिष्ठ और रुचिकर नहीं होता, इसलिए ज़मींदार के लोगों ने डोमड़ों की बस्ती से एक 'ख़सी' बकरा पकड़ लाकर पुजारी से उसे महाप्रसाद बना देने को कहा। पुजारी पहले तो इसके लिए तैयार नहीं हुआ; परन्तु अन्त में आज्ञा मानकर, उसी का बलिदान देकर, उसे महाप्रसाद बना दिया।

सुनते ही षोड़शी चूल्हे से देग़ची को नीचे पटककर, क्रोध में जल-भुनकर, तुरन्त मन्दिर की ओर चल पड़ी। फाटक पर चार-पाँच जवान रास्ता रोककर खड़े हो गये। विश्वम्भर दूर से मकान दिखाकर सटक गया। ये लोग ज़मींदार के पालकी ढोनेवाले कहार हैं। मुँह से ताड़ी की बदबू निकल रही है, आँखें लाल-लाल हैं, अस्तव्यस्त दशा है। एक ने पूछा—साला पण्डित घर में है? साला रुपया नहीं देगा, भागता फिरता है।

षोड़शी ने चारों ओर देखा, कहीं कोई नहीं है। कहीं ये मतवाले पशु उसी का अपमान न कर बैठें, इस डर से उसने अपने प्रचण्ड क्रोध को जी-जान से रोककर धीरे से कहा—नहीं, पिताजी घर में नहीं हैं।

"कहाँ पर छिपा हुआ है ?"

"मैं नहीं जानती" कहकर षोड़शी के एक तरफ़ से निकल जाने की चेष्टा करते ही उसने हाथ फैलाकर एक बहुत भद्दी गाली देकर कहा—नहीं है तो तू चल। नहीं चलेगी तो गले में अँगौछा डालकर खींच ले जाऊँगा।

इस अपमान के कारण षोड़शी से धीरज धरते नहीं बना। उसने ज़ोर से धमकाकर कहा—"ख़बरदार जो वाहियात बात मुँह से निकाली। चल, मैं ही चलती हूँ। देखूँ तेरा पियक्कड़ मालिक मेरा क्या कर सकता है!" वह परिणाम-भयहीन पगली की तरह स्वयं आगे बढ़ चली।

रास्ते में दो-एक परिचित आदमियों से भेंट हुई, परन्तु षोड़शी ने उधर ताका तक नहीं। ज़मींदार के आदमी पीछे-पीछे हल्ला करते हुए आ रहे थे। यह नहीं कि देहाती लोगों को इसका मतलब समझाने की आवश्यकता नहीं थी, परन्तु इस हालत में किसी की सहायता माँगकर इतने बड़े अपमान को अपने मुँह से चारों ओर प्रकट करने की इच्छा उसको नहीं हुई।

कचहरी बहुत दूर नहीं थी, एककौड़ी सामने ही था। देखते ही वह बोल उठा—"मैं नहीं जानता, मैं कुछ भी नहीं जानता। सरदारजी, इसे हुज़ूर के पास ले जाओ।" यह कहता हुआ वह "शान्ति-कुटीर" की ओर उँगली उठाकर झटपट भीतर घुस गया।

अब अपनी विपत्ति के गुरुत्व को समझकर षोड़शी भीतर ही भीतर काँप उठी।

जाने का स्थान मालूम होते हुए भी उसने पूछा—कहाँ जाना होगा ?

उस आदमी ने एककौड़ी के दिखाये रास्ते की ओर इशारा करके कहा—चल।

वहाँ जाना अवश्य ही पड़ेगा, यह समझकर भी उसने कहा—मेरे साथ तो रुपया-पैसा है नहीं सरदार ! सरकार के पास मुझे ले जाने से तुम्हें क्या लाभ होगा ?

परन्तु सरदार कहकर जिससे यह प्रार्थना की गई उसने इस पर ध्यान ही नहीं दिया, बल्कि इसके उत्तर में नाक-भौं सिकोड़कर धमकाकर कहा—चल-चल।

षोड़शी ने और कुछ नहीं कहा : ये आदमी ज़मींदार के साथ बाहर से आये हुए हैं। उनको क्या मालूम कि षोड़शी की कैसी क्या मर्यादा है। इस कारण रुपये के लिए या लगान वसूल करने के लिए मामूली किसानों के साथ जैसा बर्ताव करने की इनको आदत पड़ी है और जिसमें ये स्त्री या पुरुष का कुछ ख़याल ही नहीं करते, उसमें यहाँ भी कुछ रद्दोबदल न होगा। प्रार्थना-विनती यहाँ निष्फल है, रोने-धोने से भी कोई मदद करने नहीं आवेगा। कहना न मानने से रास्ते में ही ये खींचा-तानी करने लगेंगे। आम रास्ते पर के अपमान का यह बीभत्स चित्र, मुँह बाँधकर, मानों

उसे सामने की ओर ढकेलकर लिये जा रहा था। रास्ते में गड़रियों के लड़के गाय-भैंस लेकर घर लौट रहे थे। किसान दिन भर का काम करके सिर पर बोझ लिये घर जा रहे थे, सब लोग षोड्शी की ओर एकटक देख रहे थे। उसने किसी की ओर ताका नहीं, किसी से कुछ कहने की कोशिश भी नहीं की। वह मन ही मन कहने लगी—भगवती वसुन्धरे, दो टुकड़े हो जाओ, मैं तुम्हारे गर्भ में समा जाऊँ।

सूर्य अस्त हो गये, अँधेरा घिर आया। कल की पुतली की तरह वह चुपचाप शान्ति-कुटीर के फाटक के अन्दर घुस गई। उसने ठहरने या एतराज़ करने की कोशिश तक न की।

जिस कमरे में उसे पहुँचाया गया, वह वही कमरा था जहाँ उस दिन एककौड़ी आकर डर से काँप उठा था। वैसा ही कूड़ा पड़ा था, वैसी ही शराब की बदबू आ रही थी। चारों ओर सफ़ेद, काली, लम्बी, छोटी हर तरह की शराब की बोतलें बिखरी हुई थीं। सिरहाने की ओर, दीवार में, दो चमकीली कटारें लटक रही थीं। एक कोने में एक बन्दूक़ रक्खी हुई थी। हाथ के पास, टूटी सी तिपाई पर, दो पिस्तौल रक्खे हुए थे। सामने के बरामदे में किसी जङ्गली जानवर का कच्चा चमड़ा छत में लटक रहा था, बीच-बीच में उसकी बदबू आती थी। शायद थोड़ी ही देर पहले गोली से एक गीदड़ मारा गया है, वह अभी तक फ़र्श पर

पड़ा हुआ है। उसके ख़ून से कुछ स्थान रँग गया है। पलँग पर लेटा हुआ ज़मींदार कोई पुस्तक देख रहा था। सिरहाने के पास, एक मोटी जिल्ददार पुस्तक पर, मोमबत्ती जल रही थी। उसके उजाले में एकाएक बहुत सी चीज़ें षोड़शी ने देखीं। चद्दर न रहने से, बिस्तरे पर, शायद क़ीमती शाल बिछाया गया था, उसी का कुछ हिस्सा ज़मीन पर लटक रहा था। सोने की घड़ी के ऊपर रक्खे अधजले सिगरेट से धुएँ की सूक्ष्म रेखा घूम-घूमकर ऊपर उठ रही थी। पलँग के नीचे एक चाँदी के बर्तन में जूठी हड्डियाँ शायद सुबह से ही पड़ी हुई थीं। उसी के पास बूटीदार किनारेवाली रेशमी चद्दर पड़ी हुई थी। सामने हाथ पोंछने का रूमाल या अँगोछा न रहने के कारण शायद इसी से हाथ पोंछे गये हैं।

पुस्तक की आड़ में रहने से षोड़शी ज़मींदार का चेहरा देख नहीं सकी, परन्तु वह उसके सामने दर्पण की तरह स्पष्ट प्रतीयमान होने लगा। इसका कोई धर्म नहीं है, पुण्य नहीं है, शर्म या सङ्कोच भी नहीं है—यह तो निर्दयता की मूर्त्ति है! इसके क्षण भर के प्रयोजन के सामने किसी का कोई मूल्य या मर्यादा नहीं है। इस पिशाचपुरी के भीतर, इस मतवाले आदमी के क़ब्ज़े में, अपने को अकेली पाकर क्षण भर के लिए षोड़शी की तमाम इन्द्रियाँ निःस्तब्ध हो गईं।

आहट पाकर ज़मींदार ने पूछा—कौन है?

बाहर से सरदार ने संक्षेप से घटना का वर्णन करके, चक्रवर्ती को भद्दी गाली देकर, कहा—हुज़ूर, उसकी बेटी को पकड़ लाया हूँ।

"किसको? भैरवी को?" कहकर जीवानन्द तड़फड़ाकर उठ बैठा। शायद उसने ऐसा हुक्म नहीं दिया था। परन्तु दूसरे ही क्षण में कहा—अच्छा किया। अच्छा जा।

उन लोगों के चले जाने पर जीवानन्द ने षोड़शी से पूछा—तुम्हारे आज रुपया देने की बात थी। लाई हो?

षोड़शी का गला रुँध गया, आवाज़ नहीं निकली। जीवानन्द ने थोड़ी देर इन्तिज़ार करके कहा—लाई नहीं हो, जानता हूँ। परन्तु क्यों नहीं लाई?

अब षोड़शी ने जी-जान से कोशिश करके जवाब दिया। धीरे-धीरे कहा—हमारे पास नहीं है।

"नहीं है तो सारी रात तुम्हें नौकरों के घर में रहना पड़ेगा। उसका अर्थ जानती हो?"

दरवाज़े के चौखट को दोनों हाथों से ज़ोर से पकड़कर षोड़शी आँखें मूँदे हुए चुपचाप खड़ी रही। उसने सोचा कि यहाँ पर कुछ भी असम्भव नहीं है।

षोड़शी के पीले चेहरे को दूर से ही शायद जीवानन्द ने देख लिया। वह मूर्च्छा से बचने की चेष्टा कर रही थी, शायद यह भी जीवानन्द को अज्ञात न रहा; कोई मिनिट भर तक

वह भी बेसुध-सा बैठा रहा। फिर वह एकाएक बत्ती हाथ में लेकर उस मुर्दे की तरह बेहोश-सी खड़ी स्त्री के मुँह के पास आकर खड़ा हो गया और आरती के पहले पुजारी जैसे दिया जलाकर मूर्ति का मुख देखा करते हैं वैसे ही यह महा-पातकी इस संन्यासिनी की बन्द आँखों की ओर चुपचाप गम्भीरता-पूर्वक एकटक देखता हुआ उसकी गेरुए रङ्ग की धोती, उसकी बिखरी हुई लटों, उसके पीले होठों और उसकी सबल नीरोग तथा सुगठित देह सभी को मानों अपनी आँखें फाड़-फाड़कर निगलने लगा।

३

स्त्री का एक प्रकार का रूप है जिसे पुरुष, यौवन के उस पार पहुँचे बिना, कभी देख नहीं सकता। वही अपूर्व नारी-रूप आज षोड़शी की तैलहीन उलझी हुई लटों में, उपवास से सूखी हुई उसकी कठोर देह में, प्रवृत्ति को रोकने के उसके रूखेपन में—उसके अङ्ग-अङ्ग में—यही पहले-पहल जीवानन्द की नज़र के सामने प्रकट हुआ।

बीस वर्ष तक जिसने नारी के शरीर के साथ उच्छृङ्खल भाव से बे-रोक टोक बीभत्स लीला की है, कितनी शोभा, कितनी लज्जा और कितनी माधुरी को इस व्यभिचार के भँवर में डुबा दिया है, उसका ज़रा सा दाग़ तक इस पाखण्डी के मन में नहीं है; उसी लहलहाती लालसा की लहर के सामने

जब आज एकाएक रुकावट आ पड़ी तब, कुछ क्षण के लिए, इस अनजान अचम्भे में उसकी मतवाली विकृत दृष्टि स्तब्ध, गम्भीर और आविष्ट हो गई।

भैरवी घूँघट नहीं काढ़ती; वह खुले सिर, आँखें मूँदे, मुँह नीचा किये बेहोश सी खड़ी रह गई। जीवानन्द ने चुपचाप लौटकर बत्ती रख दी। वह बोतल से प्याला भर-भरकर शराब पीने लगा।

कोई पन्द्रह मिनिट इस तरह चुपचाप बीत जाने पर वह अचानक सीधा होकर उठ बैठा। शायद अब उसने अपने भीतर के सोये हुए पशुभाव को, चाबुक मार-मारकर, उत्तेजित कर लिया है।

उसने पूछा—तुम्हारा नाम तो षोड़शी है न ?

इस तरफ़ से कुछ जवाब न मिला।

जीवानन्द ने फिर पूछा—तुम्हारी उम्र कितनी है ?

इसका भी कोई उत्तर न पाकर उसका स्वर कठिन हो उठा। कहा—चुप रहने से कोई लाभ न होगा। जवाब दो।

षोड़शी ने बड़ी मुशकिल से धीरे से कहा—मेरी उम्र अट्ठाइस वर्ष की है।

जीवानन्द ने कहा—अच्छा, जैसी ख़बर मिली है वह अगर सच है तो इस उन्नीस-बीस वर्ष से तुम भैरवी का काम कर रही हो। अब तक बहुत रुपया इकट्ठा किया होगा। सब दे क्यों नहीं सकोगी ?

षोड़शी ने वैसे ही धीरे-धीरे उत्तर दिया—आपसे तो पहले ही कह दिया कि मेरे पास रुपया नहीं है।

इस शङ्कित मृदु स्वर में भी जो सत्य की दृढ़ता थी वह ज़मींदार के कानों में खटकी। उसने इस बात पर और तर्क नहीं किया; कहा—अच्छा, तो और दस आदमी जैसा कर रहे हैं, वही करो। जिन लोगों के पास रुपया है उनके यहाँ ज़मीन-जायदाद रेहन रखकर दो या बेंचकर दो।

षोड़शी बोली—वे ऐसा कर सकते हैं क्योंकि ज़मीन उनकी है। परन्तु देवता की सम्पत्ति रेहन रखने या बेंचने का तो मुझे अधिकार नहीं है।

जीवानन्द ने तनिक चुप रहकर एकाएक हँसकर कहा—लेने का ही क्या मुझे अधिकार है? एक कौड़ी भी नहीं। तो भी लेता हूँ, क्योंकि मुझे ज़रूरत है। संसार में यह 'ज़रूरत' ही असली अधिकार है। तुम्हें भी जब देने की ज़रूरत है, तब—समझ गईं?

षोड़शी चुपचाप खड़ी रही। जीवानन्द कहने लगा—मालूम होता है कि तुम कुछ पढ़ी-लिखी हो; अगर ऐसा हो तो ज़मींदार के रुपये की वसूली में और हुज्जत न करना। दे देना।

षोड़शी अब थोड़ा साहस पाकर, मुँह उठाकर, बोली—क्या उसे आप ज़मींदार का प्राप्य कहते हैं?

जीवानन्द ने कहा—नहीं, मैं प्राप्य नहीं कहता हूँ, वह तुम्हारा देय है यही कहता हूँ। तुम कहोगी, और और

ज़मींदारों को तो नहीं देना पड़ा। उसका कारण यह है कि वे मेरे ऐसे सरल नहीं थे। उन्होंने स्पष्ट रूप से दावा नहीं किया, परन्तु धीरे-धीरे सारे गाँव पर ही दख़ल कर लिया। उनकी समझ एक तरह की थी, मेरी दूसरी तरह की है। जो हो, अब इतनी रात में क्या अकेली घर जा सकोगी? जैसे आदमियों के साथ तुम आई हो, उन्हें मैं साथ नहीं करना चाहता।

इतनी देर की बातचीत से षोड़शी को यहाँ का भय भी कुछ कम हो गया था। वह विनय के साथ बोली—आपका हुक्म हो तो जा सकती हूँ।

जीवानन्द ने अचम्भे में आकर कहा—"अकेली? इस अँधेरी रात में? बड़ा कष्ट होगा!"—यह कहकर वह हँसने लगा।

उसकी बात और हँसने का ढङ्ग इतना स्पष्ट था कि षोड़शी की जो आशङ्का घट रही थी वह अब चौगुनी होकर लौट आई। उसके सिर हिलाकर, क्षीण स्वर से "मुझे अभी जाना ही होगा" कहकर, आगे क़दम बढ़ाते ही जीवानन्द ने मुसकराते हुए कहा—अच्छा, न हो रुपया न देना षोड़शी। उसके सिवा और भी बहुत तरह के सुभीते—

परन्तु प्रस्ताव समाप्त नहीं होने पाया। इसके मुँह से अपना नाम सुनते ही षोड़शी अचानक ज़ोर से सिर हिलाकर बोली—"आपका रुपया, आपका सुभीता, आपके ही

पास रहे, मुझे जाने दीजिए।" अब वह पैर बढ़ाकर आगे बढ़ी। परन्तु जिन आदमियों को साथ देने की हिम्मत यह आदमी (जीवानन्द) भी नहीं कर रहा था उन्हीं को सामने, थोड़ी दूर पर, बैठे देखकर वह ख़ुद ही ठहर गई।

ज़मींदार ने न तो उसके वाक्य का प्रतिवाद किया और न कार्य का ही; उसके मुँह पर तो अँधेरा छा गया।

क्षण भर चुप रहकर उसने पूछा—तुम शराब पीती हो?

षोड़शी—नहीं।

जीवानन्द ने पूछा—सुना है, दो-एक पुरुष तुम्हारे अन्तरङ्ग मित्र हैं। क्या यह सच है?

षोड़शी वैसे ही सिर हिलाकर बोली—बिलकुल झूठ।

जीवानन्द ने क्षण भर चुप रहकर फिर प्रश्न किया—तुम्हारे पहले की सब भैरवियाँ शराब पिया करती थीं न?

षोड़शी—हाँ।

जीवानन्द—मातङ्गी भैरवी का चरित्र अच्छा नहीं था—अभी तक उसके गवाह हैं। यह सच है या झूठ?

षोड़शी शर्म से सिकुड़कर मृदु स्वर से बोली—सच ही सुना है।

जीवानन्द—सुना है न? अच्छा। तब तुम्हीं क्यों एकाएक दल छोड़कर, परम्परा छोड़कर, इस तरह अच्छी हो पड़ी हो?

इसके उत्तर में षोड़शी यही कहना चाहती थी कि अच्छा होने का अधिकार सभी को है; परन्तु अचानक एक कठोर

कण्ठस्वर ने उसे बीच में ही रोक दिया। ज़मींदार जीवानन्द सीधा बैठकर बोला—स्त्रियों से मैं न तो कभी बहस ही करता हूँ और न कभी उनका मतामत ही जानना चाहता हूँ। तुम अच्छी हो या बुरी, इसका विचार करने के लिए बाल की खाल निकालने का भी मुझे अवकाश नहीं। मेरा कहना है कि चण्डीगढ़ की और-और भैरवियों का जीवन जिस तरह बीता है, उसी तरह तुम्हारा जीवन बीत जाना ही अच्छा है। तुम्हें आज की रात इसी मकान में रहना पड़ेगा।

हुक्म सुनकर षोड़शी को मानों काठ मार गया। जीवानन्द कहने लगा—तुम्हारे लिए न मालूम मैंने इतना कैसे सह लिया! अगर और कोई इतनी बेअदबी करती तो अब तक उसे नौकरों के घर में भेज देता। ऐसी बहुतेरियों को भेज चुका हूँ।

सुनने से ही मालूम होता है कि यह अर्थ-हीन बँदर-घुड़की नहीं है। षोड़शी एकाएक रो पड़ी। गले में आँचल डालकर उसने हाथ जोड़े और गिड़गिड़ाते हुए कहा—मेरा जो कुछ है वह सब लेकर आज मुझे छोड़ दीजिए।

जीवानन्द ने पल भर चुप रहकर उसकी ओर देखते हुए कहा—बतलाओ न, किसलिए? मेरे सामने ऐसा रोना भी कुछ नई बात नहीं है, इस तरह की प्रार्थना भी नई नहीं सुन रहा हूँ। परन्तु उन सबके पति-पुत्र थे—उनका कुछ कारण समझ में भी आता है।

उन स्त्रियों के पति-पुत्र थे ! सुनकर षोड़शी काँप उठी।

जीवानन्द कहने लगा—परन्तु तुम्हारे पीछे तो वह सब झञ्झट नहीं है। पन्द्रह-सोलह वर्ष के अन्दर तो तुमने अपने पति को आँख से देखा तक नहीं है। इसके सिवा तुम लोगों को तो इसमें कुछ दोष भी नहीं।

षोड़शी हाथ जोड़े खड़ी थी। वह रोती हुई बोली—पति को मुझे याद नहीं है सही, परन्तु वे हैं तो ! मैं आपसे सच कहती हूँ, आज तक मैंने कोई भी बुरा काम नहीं किया है। कृपया मुझे छोड़ दीजिए।

जीवानन्द ने ज़ोर से पुकारा—महावीर।

डर से काँपती हुई षोड़शी बोली—मेरी आप जान ले सकते हैं, परन्तु—

जीवानन्द ने कहा—अच्छा, वह घमण्ड उन लोगों के घर में जाकर करना। महावीर—

षोड़शी धरती पर लोटकर रो-रोकर कहने लगी—जीते-जी मुझे कोई यहाँ से नहीं ले जा सकता। मेरी जो कुछ दुर्दशा होनी हो—जितना अत्याचार होना हो–वह आपके ही सामने हो। आप अभी तक ब्राह्मण हैं, आप आज तक भलेमानुस ही हैं !

इतना बड़ा अभियोग सुनकर भी जीवानन्द हँसने लगा। वह हँसी जैसी कठोर थी वैसी ही निष्ठुर थी। उसने कहा—तुम्हारी बात सुनने में तो बुरी नहीं लगती। परन्तु रुलाई देखकर मुझे दया नहीं आती। रोना मुझे बहुत सुनना पड़ता

है। स्त्रियों के ऊपर मुझे तनिक लोभ नहीं है। अच्छी नहीं लगती तो नौकरों को दे देता हूँ। तुम्हें भी इन्हीं के सपुर्द कर देता, पर आज ही शायद पहले-पहल थोड़ी सी ममता आ गई है। मालूम नहीं, क्या बात है। नशा उतरे बिना मालूम न होगा।

महावीर ने दरवाज़े के पास जाकर आवाज़ दी—हुज़ूर।

जीवानन्द ने सामने के किवाड़ की ओर उँगली से इशारा करके कहा—इसे आज रात भर उस कमरे में बन्द रक्खो। कल फिर देखा जायगा।

षोड़शी रोती हुई बोली—मेरे सर्वनाश का ख़याल कर लीजिए हुज़ूर। कल तो मैं मुँह दिखाने लायक़ न रह जाऊँगी।

जीवानन्द ने कहा—दो-एक दिन ऐसा होगा। उसके बाद मुँह दिखाने में न झिझकोगी। लिवर (यकृत) का वह दर्द आज बहुत बढ़ गया है। अब ज़्यादा दिक़ न करो, जाओ।

महावीर ने ज़ोर से ताकीद करके कहा—अरी, उठ न साली, चल।

यह बात पूरी होते न होते ही दोनों चौंक उठे। जीवानन्द ने धमकाकर कहा—"ख़बरदार, सुअर के बच्चे, तमीज़ से बात कर! अगर फिर कभी मेरी आज्ञा के बिना किसी औरत को पकड़ लायगा तो गोली से मार डालूँगा।" इतना कहते-कहते वह सिरहाने के तकिये को पेट के नीचे खींचकर, औंधे मुँह, बिस्तरे पर लेट गया और पेट की व्यथा

से हाय-हाय करके बोला—आज उस कमरे में बन्द रहो, कल तुम्हारे सतीपन की जाँच-पड़ताल की जायगी। ऐ, ले जा न इसे मेरे सामने से।

महावीर ने धीरे-धीरे कहा—चलिए।

षोड़शी खड़ी होकर चुपचाप, आज्ञा के अनुसार, पास के अँधेरे कमरे में जा रही थी। अचानक उसका नाम लेकर जीवानन्द ने कहा—ज़रा ठहरो, तुम पढ़ना जानती हो न ?

षोड़शी मृदु स्वर से बोली—जी हाँ।

जीवानन्द ने कहा—तो एक काम कर दो। वह जो सन्दूक़ रक्खा है, उसके भीतर एक छोटा सा काग़ज़ का बक्स है। उसमें छोटी-बड़ी शीशियाँ रक्खी हुई हैं, जिस पर 'मरफ़िया' लिखा है उसमें से ज़रा सी नींद की दवा दे जाओ। परन्तु बहुत होशियारी से, वह भयानक विष है। महावीर, बत्ती दिखा !

बत्ती की रोशनी में षोड़शी ने काँपते हुए हाथ से सन्दूक़ खोलकर शीशी निकाल ली और डरते हुए पूछा—कितना दूँ ?

जीवानन्द ने तीव्र व्यथा से फिर एक अव्यक्त ध्वनि करके कहा—कह तो दिया कि बहुत थोड़ा सा। मैं उठ ही नहीं सकता, हाथ का भरोसा नहीं है और आँख भी ठिकाने नहीं है। उसी में एक शीशे की सीप है, उसके आधे से भी कम देना। ज़रा सा ज़्यादा हो जायगा तो तुम्हारी चण्डी का बाप भी आकर इस नींद को तोड़ नहीं सकेगा।

षोड़शी ने सीप ढूँढ़ ली, परन्तु परिमाण का निश्चय करने में उसका हाथ काँपने लगा। इसके बाद बहुत यत्न से, बड़ी सावधानी से, जब वह बताई हुई दवा लाकर उसके पास आ खड़ी हुई, तब जीवानन्द ने हाथ पसारकर वह ज़हर ले लिया और बिना ही देखे-भाले मुँह में डाल लिया। न प्रश्न किया, न जाँच की और न आँख खोलकर देखा ही।

४

बग़लवाले अँधेरे कमरे में पहुँचाकर, बाहर से दरवाज़ा बन्द करके, महावीर चला गया; परन्तु भीतर से बन्द करने का कोई उपाय न देख षोड़शी उन्हीं बन्द किवाड़ों में पीठ लगाये हुए बड़ी सावधानी से बैठी रही। उसका शरीर और मन दोनों ही श्रान्ति और अवसाद की अन्तिम सीमा तक पहुँच गये थे। शायद रात में और किसी विपत्ति की आशङ्का नहीं थी; फिर भी एकदम सो जाने से भी तो नहीं चलेगा। यहाँ ज़रा सी शिथिलता को भी स्थान नहीं है—यहाँ सोलहों आने असम्भव घटना के लिए भी उसे सब तरह जाग्रत रहना होगा।

किसी तरह रात बीतने पर भी कल उसके सतीत्व की बड़ी कठिन परीक्षा होगी, यह उसने अपने कानों से सुना है और इससे बचने का उपाय भी उसे अभी तक अज्ञात है।

अपने पिता को याद करते उसे ढाढ़स तो क्या बँधता, उलटी लज्जा आने लगी। उन्हें वह अच्छी तरह जानती थी;

वे जैसे डरपोक हैं वैसे ही नीच प्रकृति के हैं। गहरी रात में घर आने पर यह दुर्घटना जानकर भी वे शायद इसे ज़ाहिर न करेंगे—बल्कि सामाजिक गड़बड़ी के डर से वे इसे दबा देने की ही चेष्टा करेंगे। मन में यही सोचेंगे कि षोड़शी को एक दिन ज़मींदार छोड़ ही देगा; परन्तु इस बात का अधिक आन्दोलन करने से यदि देवोत्तर-सम्पत्ति से ही हाथ धोना पड़े तो लाभ की अपेक्षा नुक़सान का ही पलड़ा भारी हो जायगा। अधिकन्तु, नज़राने के रुपये के विषय में भी उनकी तीव्र दृष्टि बहुत दूर तक बढ़ जायगी, यह भी षोड़शी को स्पष्ट दिखाई देने लगा। इसके सिवा इस दुर्दान्त ज़मींदार के विरुद्ध वे कर ही क्या सकेंगे! छः-सात कोस के अन्दर कोई थाना या चौकी भी नहीं—पुलीस में रपट लिखाने के लिए जितने धन, समय और जनबल की आवश्यकता है उसमें से कुछ भी तारादास के पास नहीं है। इसलिए अत्याचार कितना ही बड़ा क्यों न हो, इस प्रबल शक्ति के सामने उसे सिर झुकाकर सह लेने के सिवा और कोई उपाय नहीं है। यही षोड़शी की आँखों के आगे बार-बार दिखाई देने लगा।

इन सारी दुश्चिन्ताओं के भीतर और एक प्रकार की चिन्ता की धारा षोड़शी के अन्तःकरण में लगातार बह रही थी, वह है उसकी चण्डी माता, जिनकी पूजा वह बचपन से करती आई है। परन्तु वह जो आदमी उस कमरे में गहरी नींद सो रहा है, जिसकी गम्भीर और भारी श्वास का अस्पष्ट शब्द

उसके कानों तक पहुँच रहा है—धर्म और अधर्म, भला और बुरा, अपना और पराया—संसार की सारी वस्तुओं पर उसकी कैसी गहरी अवहेला है! स्त्रियों के आँसू देखने से उसको दया नहीं आती; नारी के रूप या यौवन में उसको ममता या लालच नहीं है; पति-पुत्रवाली सती के सतीत्व की वृथा हत्या करने में वह ज़रा भी नहीं हिचकता; सती नारी के हृदय के ख़ून में दोनों पाँव डूब जाने से भी वह कुछ परवा नहीं करता—उसने अपने प्राण तक अभी मेरे हाथ में सौंपकर मेरे दिये हुए ज़हर को आँख मूँदकर पी लेने में ज़रा भी सङ्कोच नहीं किया, रत्ती भर आनाकानी नहीं की; अश्रद्धा और अनासक्ति के इस पत्थर के बोझ को हटाकर क्या चण्डी माता ही मेरे परित्राण का मार्ग खोल देंगी?

इस तरह वह जिधर देखने लगी, गहरे अँधेरे के सिवा प्रकाश की क्षीण रश्मि भी नज़र न आई। तब उसके उस एक मात्र देवता के मन्दिर के चारों ओर पूर्ण निराशा कल्पना का जाल बुनने लगी।

सवेरे पहर शायद उसे कुछ तन्द्रा आ गई थी, अचानक पीठ पर दबाव मालूम होते ही वह तड़फड़ाकर उठ बैठी। उसने देखा कि जँगले से सूर्य की किरणें कमरे में आ रही हैं।

बाहर से जो दरवाज़े को ढकेल रहा था, उसने कहा—आप बाहर आ जाइए, मैं एककौड़ी हूँ।

षोड़शी अपनी धोती सम्हालकर खड़ी हो गई। उसने किवाड़ खोलकर देखा कि सामने ही, रात के उसी बिस्तरे पर, जीवानन्द उसी तरह तकिया के सहारे बैठा है। कल बत्ती की धीमी रोशनी में उसके चेहरे को षोड़शी अच्छी तरह देख नहीं सकी थी, परन्तु आज पल भर की दृष्टि से ही उसने देखा कि बहुत दिनों के लगातार अत्याचार से उसके अङ्ग-अङ्ग में कितनी गहरी चोट लगी है। उम्र का ठीक अनुमान करना कठिन है—शायद चालीस या उससे भी अधिक हो—माथे के दोनों ओर के कुछ बाल पक गये हैं, चौड़े माथे में कई रेखाएँ हैं, उसी के ऊपर काले-काले दाग़ हैं। क्षय रोगी की आँखों की तरह दृष्टि अत्यन्त तीव्र है और उसी के नीचे शीर्ण लम्बी नाक नीचे की ओर झुक आई है। चेहरा एकदम पीला पड़ गया है, और भीतर की किसी अव्यक्त व्यथा से उसके मुखड़े पर कालिमा छा गई है।

जीवानन्द ने हाथ से इशारा करके क्षीण स्वर से कहा—डरो मत, इधर आओ।

षोड़शी धीरे-धीरे दो-चार क़दम आगे बढ़कर नीची नज़र किये हुए खड़ी हो गई। जीवानन्द ने कहा—पुलीसवालों ने मकान घेर लिया है। मैजिस्ट्रेट साहब फाटक के भीतर घुस आये हैं—अब आते ही होंगे।

षोड़शी भीतर ही भीतर चौंक उठी, परन्तु कुछ बोली नहीं। जीवानन्द कहने लगा—"ज़िले के मैजिस्ट्रेट ने दौरे

के लिए निकलकर यहाँ से कोस भर की दूरी पर ख़ेमा लगाया था, तुम्हारे पिता ने कल रात को ही उनसे मिलकर सब बतला दिया है। इसी से नौबत यहाँ तक नहीं पहुँची है बल्कि के० साहब ख़ुद ही मेरे ऊपर बहुत नाराज़ हैं। गत वर्ष दो बार मुझे फँसाने की कोशिश की थी, पर कामयाबी नहीं हुई। आज एकदम प्रमाण सहित पकड़ लिया है"— इतना कहकर वह ज़रा सा मुसकुराया।

एककौड़ी एक ओर चुपचाप खड़ा था। डर के मारे उसका मुँह सूख गया था; उसने कहा—हुज़ूर, अबकी शायद मेरे भी बचने की आशा नहीं है।

जीवानन्द ने सिर हिलाकर कहा—"सम्भव है।" फिर षोड़शी से कहा—बदला लेना चाहो तो अच्छा मौक़ा है। मुझे क़ैद भी करा सकती हो।

षोड़शी ने जवाब देने के लिए मुँह उठाते ही देखा कि जीवानन्द उसके मुँह की ओर एकटक देख रहा है। उसने नीची नज़र करके धीरे-धीरे पूछा—इसमें जेल क्यों होगा?

जीवानन्द ने कहा—क़ानून है। इसके सिवा के० साहब के क़ब्ज़े में आ गया हूँ। बादुड़बागान की 'मेस' में रहते समय इन्हीं के यहाँ बीस रोज़ हिरासत में भी रह चुका हूँ। किसी हालत में ज़मानत नहीं ली। और तब ज़ामिन होता ही कौन?

षोड़शी अचानक व्यग्र कण्ठ से पूछ बैठी—क्या आप कभी बादुड़बागान की 'मेस' में भी थे?

जीवानन्द ने कहा—हाँ। मैं उस समय एक प्रेमकाण्ड का दूत बन गया था, परन्तु आयन घोष ने नहीं माना, पुलीस में पकड़वा दिया। जाने दो, वह बहुत लम्बी कथा है। के० साहब मुझे भूले नहीं हैं, अच्छी तरह पहचानते हैं। आज भी मैं भाग जाता, परन्तु 'लिवर' के दर्द से लाचार हूँ, हिलने तक की शक्ति नहीं है।

षोड़शी ने धीरे-धीरे पूछा—तो क्या कल का दर्द अभी तक घटा नहीं है?

जीवानन्द ने कहा—नहीं, बहुत बढ़ गया है। इसके सिवा यह दर्द अच्छा होने का भी नहीं।

षोड़शी तनिक ठहरकर बोली—तो मुझसे क्या करने के लिए कहते हो?

जीवानन्द ने कहा—यही कह देना कि तुम यहाँ अपनी इच्छा से आई हो, और अपनी इच्छा से ही यहाँ हो। मैं इसके बदले में तुम्हारे पास मन्दिर की सारी सम्पत्ति बनी रहने दूँगा, हज़ार रुपया नक़द दूँगा, और नज़राने के रुपये लेने की तो अब कुछ बात ही नहीं है।

एककौड़ी शायद इन्हीं बातों को दुहराना चाहता था, परन्तु षोड़शी के चेहरे की ओर देखकर एकाएक रुक गया। षोड़शी सीधे जीवानन्द के मुँह पर नज़र रखकर बोली—इस बात को मान लेने का अर्थ आप समझते हैं? उसके बाद

भी क्या आपको विश्वास है कि ज़मीन-ज़ायदाद या धन-सम्पत्ति पर मेरा अधिकार रहेगा ?

जीवानन्द के चेहरे का रङ्ग उड़ गया। उस पीले चेहरे की तीव्र आँखों में न जाने कहाँ से गत रात्रि की तरह कोमल और मुग्ध दृष्टि मानों धीरे-धीरे लौटकर स्थिर हो गई! बहुत देर तक उसने एक भी बात नहीं कही। इसके बाद धीरे-धीरे सिर हिलाकर कहा—वही ठीक है, षोड़शी, वही ठीक है। जन्म भर में तो तुमने कभी पाप नहीं किया, यह तुमसे न हो सकेगा।

ज़रा हँसकर फिर कहा—रुपये-पैसे के बदले अपनी इज़्ज़त-आबरू बेंची नहीं जा सकती, इसको मानों मैं भूल ही गया था। अच्छा, तुम सच बात ही कहना,—ज़मींदार की ओर से अब तुम्हारे ऊपर कोई अत्याचार नहीं होगा।

एककौड़ी घबराकर फिर कुछ कहना चाहता था परन्तु बाहर के बन्द किवाड़ों पर बार-बार हाथ के आघात के शब्द से इस बार भी वह कुछ बोल न सका। उसका चेहरा सूख-कर तनिक सा रह गया।

जीवानन्द ने आवाज़ देकर कहा—"खुला है, भीतर आइए।" दूसरे ही चण खुले दरवाज़े के सामने दिखाई पड़े, कुछ पुलीस कर्मचारियों के पीछे ख़ुद ज़िले के मैजिस्ट्रेट और उनके कन्धे के ऊपर से तारादास चक्रवर्ती झाँकते हुए। उन्होंने रोते-रोते भीतर घुसकर कहा—हुज़ूर, धर्मावतार, यही

मेरी बिटिया, चण्डी माता की भैरवी, है। आपकी कृपा न होती तो अब तक रुपये के लिए यह मार डाली गई होती।

के० साहब ने षोड़शी को नख से शिख तक बार-बार देखकर पूछा—तुम्हारा ही नाम षोड़शी है? तुम्हीं को घर से पकड़ लाकर इन्होंने बन्द कर रक्खा है?

षोड़शी सिर हिलाकर बोली—नहीं, मैं अपनी इच्छा से आई हूँ। किसी ने मेरे शरीर को हाथ से छुआ तक नहीं।

चक्रवर्ती चिल्लाहट मचाकर कहने लगा—नहीं हुज़ूर, सरासर झूठ है। तमाम गाँव के लोग गवाह हैं। मेरी लड़की रसोई बना रही थी। ज़मींदार के आठ-दस नौकर जाकर इसे घर से मार-पीट करके पकड़ लाये हैं।

मैजिस्ट्रेट ने जीवानन्द की ओर तिरछी नज़र से देखकर फिर षोड़शी से कहा—तुम डरो मत। सच-सच कहो। तुम्हें घर से ये लोग पकड़ लाये हैं?

"नहीं, मैं ख़ुद आई हूँ।"

"यहाँ तुम्हें क्या काम था?"

"मुझे काम था।"

साहब ने मुसकुराकर पूछा—सारी रात ही काम था?

षोड़शी उसी तरह सिर हिलाकर शान्त मृदु स्वर से बोली—जी हाँ, मुझे रात भर ही काम था। इनके एकाएक बीमार हो जाने के कारण मैं लौटकर घर नहीं जा सकी।

तारादास ने चिल्लाकर कहा—विश्वास न कीजिए हुज़ूर, सब झूठ है। बनाया हुआ मामला है, शुरू से अख़ीर तक सिखाई हुई बात है।

उसकी ओर ख़याल न कर साहब ज़रा सा मुसकुराये। उन्होंने मुसकराते हुए पहले बन्दूक़ की, उसके बाद दोनों रिवालवरों की अच्छी तरह जाँच करके जीवानन्द से कहा—"शायद इनके रखने की आपको इजाज़त है।" इसके बाद वे धीरे-धीरे घर से निकल गये।

बाहर से उनकी आवाज़ सुनाई दी—'मेरा घोड़ा लाओ।' इसके बाद घोड़े की टापों की आहट से मालूम पड़ा कि मैजिस्ट्रेट साहब मकान से चले गये।

५

मैजिस्ट्रेट साहब के घोड़े की टापों का शब्द क्रमशः अस्पष्ट हो गया। पुलीस के अफ़सर ने भी सिपाहियों को घेरा उठा लेने का इशारा किया। अब तारादास की हालत उसके ही सामने प्रकट हो पड़ी। अब तक मानों वह मोह के गहरे कुहरे में खड़ा था, अचानक प्रचण्ड सूर्यकिरणों से तमाम वाष्प उड़ गई और दुःख का उन्मुक्त आकाश चारों ओर व्याप्त हो गया। जहाँ तक दृष्टि जाती है कहीं छाया, आश्रयस्थल या छिपने की जगह नहीं है—केवल वह है और उसकी मृत्यु सामने खड़ी होकर दाँत निकाल-निकालकर हँस रही है।

अकस्मात् आशातीत रूप से ज़िलाधीश का अनुग्रह और अनुकम्पा प्राप्त कर वह फूला न समाता था। उसने सोचा था कि इस अत्याचारी मतवाले को न केवल गिरफ्तार ही करवा दूँगा, बल्कि मेरा भाग्य भी जाग उठेगा। लक्ष्मी के वर-हस्त की दस उँगलियों की सन्धियों से जो वस्तु गिरेगी वह ज़मींदारवंश का सत्यानाश तो करेगी ही, साथ ही वह मेरी ज़मीन-जायदाद को बचाकर रुपये-मुहरों का ढेर लगा देगी। उसे यही आशङ्का हो रही थी कि वे लोग शायद ठीक समय पर पहुँच न सकें, पहले से ख़बर देकर ज़मींदार को कोई साव-धान न कर दे। इधर उसकी चिन्ता, परिश्रम और उत्साह की कोई सीमा न थी। यह नहीं कि इस काम की विफलता का दण्ड भी उसने सोचा नहीं था; परन्तु वह निष्फलता जब इधर से आ पहुँची, षोड़शी के हाथ के आघात से ही जब कामना का इतना बड़ा पत्थर का महल नींव सहित धूल में मिल गया तब तारादास पहले तो ख़ूब चिल्लाया, उसके बाद कुछ देर तक बावले की भाँति चुपचाप खड़ा रहा। फिर अचानक गला फाड़कर रो उठा और सबको चकित करता हुआ पुलीस अफ़सर के पैरों के नीचे गिरकर बोला—बाबू साहब, मेरा क्या होगा! मुझे तो अब ज़मींदार के लोग ज़िन्दा गाड़ देंगे।

इन्स्पेक्टर साहब अधिक उमर के सज्जन थे। उन्होंने हाथ पकड़कर चक्रवर्ती को उठाया और ढाढ़स बँधाकर सदय

कण्ठ से कहा—डरने की कुछ ज़रूरत नहीं। पण्डितजी, आप जैसे थे वैसे ही जाकर रहिए। ख़ुद मैजिस्ट्रेट साहब आपके सहायक हैं। कोई आप पर ज़ुल्म नहीं करेगा।

अब उन्होंने ज़रा तिरछी नज़र से जीवानन्द की ओर ताका। तारादास ने आँसू पोंछते हुए घबराकर कहा—साहब तो चिढ़कर चले गये!

इन्स्पेक्टर मुसकुराते हुए बोले—"नहीं पण्डितजी, साहब नाराज़ नहीं हुए हैं। लेकिन मालूम होता है कि आज की इस दिल्लगी को वे जल्दी नहीं भूलेंगे। इसके सिवा हम लोग भी मरे नहीं हैं; कैसा ही क्यों न हो, एक थाना भी है।" इन्स्पेक्टर ने एक बार फिर ज़मींदार के पलँग की ओर तिरछी नज़र से देख लिया। उनके इस इशारे का मतलब चाहे जो रहा हो, किन्तु ज़मींदार की तरफ़ से इसका कुछ जवाब नहीं आया। क्षण भर चुप रहकर उन्होंने कहा—चलिए पण्डित-जी, चलें बहुत दूर जाना भी तो पड़ेगा।

सब-इन्स्पेक्टर साहब की उम्र कुछ कम है। उन्होंने तनिक हँसकर कहा—पण्डितजी क्या अकेले ही जायँगे?

इस बात से सभी हँस पड़े। दरवाज़े के पास दो पहरे-दार खड़े थे, वे भी मुँह फेरकर हँसने लगे। यहाँ तक कि लाल मुँह करके एककौड़ी भी छत की कड़ी देखने लगा।

इस कुत्सित-इङ्गित से तारादास के आँसू सूखकर आँखों से चिनगारियाँ निकलने लगीं। वह षोड़शी की ओर कठोर

दृष्टि से देखकर गरज उठा—जाना होगा तो अकेला ही जाऊँगा। अब कभी उसका मुँह देखूँगा? फिर कभी उसे मकान में घुसने दूँगा?

दारोग़ा साहब ने हँसकर कहा—मुँह चाहे आप न भी देखें, इसके लिए कोई आपको क़सम नहीं देगा; परन्तु जिसका मकान है उसी को घुसने न देकर फिर नये फ़साद में न फँसिएगा।

तारादास झुँझलाकर कहने लगा—"मकान किसका है? मकान तो मेरा है। मैंने ही उसे भैरवी बनाया है, मैं ही उसे निकाल बाहर करूँगा। कुछो इस तारादास के हाथ में है!" अब वह ज़ोर से अपनी छाती ठोकता हुआ बोला—नहीं तो कौन है वह, जानते हैं आप? सुनिएगा इसकी माँ की—

इन्स्पेक्टर ने रोककर कहा—"ठहरिए, पण्डितजी ठहरिए। क्रोध के मारे पुलीस के सामने सब बातें न कहनी चाहिएँ। उससे आफ़त में पड़ सकते हो।" षोड़शी की ओर देखकर उन्होंने कहा—तुम जाना चाहो तो हम लोग तुम्हें आराम से घर पहुँचा देंगे। चलो, देर मत करो।

षोड़शी अब तक सिर झुकाये चुपचाप खड़ी थी। उसने गरदन हिलाकर "नहीं" कहा। पुलीस के छोटे अफ़सर ने मुसकुराकर पूछा—तो क्या जाने में कुछ देरी है?

षोड़शी ने मुँह उठाकर देखा, परन्तु जवाब दिया इन्स्पेक्टर साहब को ही। कहा—आप लोग जाइए, मेरे जाने में अभी विलम्ब है।

"विलम्ब है, हरामज़ादी! मैंने अगर तेरा ख़ून न कर डाला तो मैं मनोहर चक्रवर्ती का लड़का ही नहीं!" कहकर तारादास पागल की तरह उछलकर सचमुच ही उसे सख़्त चोट पहुँचा देता; परन्तु इन्स्पेक्टर साहब ने उसे पकड़ लिया और धमकाकर कहा—फिर तुमने अगर ज़्यादती की तो तुम्हें पकड़कर थाने में ले जाऊँगा। भले आदमी की तरह घर चले जाओ।

अब वे चक्रवर्ती को प्रायः खींचते हुए ले गये। परन्तु तारादास ने उनके हित वाक्यों पर ध्यान ही नहीं दिया। जहाँ तक सुनाई दिया, वह ज़ोर-ज़ोर से षोड़शी की माता के सम्बन्ध में निन्दा करता हुआ और उसकी बहुत जल्दी हत्या करने की क़सम खाता हुआ उनके साथ चला गया।

सभी पुलीसवाले चले गये या कहीं कोई छिपा बैठा है, इसका पता लगाने के लिए धूर्त एककौड़ी चुपचाप पैर दबा-दबाकर बाहर गया। उसके जाने पर जीवानन्द ने इशारे से षोड़शी को नज़दीक बुलाकर क्षीण कण्ठ से पूछा—तुम इन लोगों के साथ गई क्यों नहीं?

षोड़शी ने उत्तर दिया—मैं इनके साथ आई जो नहीं थी।

जीवानन्द ने तनिक ठहरकर कहा—तुम्हारी सम्पत्ति की दस्तबरदारी लिख देने में दो-चार रोज़ की देर होगी; परन्तु नक़द रुपया क्या आज ही ले जाओगी?

षोड़शी—अच्छा दीजिए।

जीवानन्द ने बिस्तरे के नीचे से नोटों का बण्डल निकाल लिया। उन्हें गिनते हुए षोड़शी के मुख की ओर बार-बार देखकर उसने हँसकर कहा—मुझे किसी काम में शर्म नहीं आती, परन्तु इन्हें तुम्हारे हाथ में देने में मुझे भी झेंप सी मालूम हो रही है।

षोड़शी शान्त और नम्र स्वर से बोली—परन्तु शर्त तो देने की ही थी।

जीवानन्द के पीले चेहरे पर क्षण भर के लिए लज्जा की लाल आभा झलक आई; उसने कहा—शर्त कुछ भी रही हो, किन्तु मुझे गिरफ़्तारी से बचाने के लिए तुमने आज जो चीज़ खो डाली है, उसका दाम रुपये से ठहराया गया सोचते हुए मुझे अपने ऊपर जो धिक्कार आ रहा है, उससे तो मेरी गिरफ़्तारी ही अच्छी थी।

ज़मींदार के चेहरे पर अपनी दृष्टि जमाकर षोड़शी बोली—परन्तु स्त्रियों का मूल्य तो आप बराबर इसी से ठहराते आये हैं।

जीवानन्द उत्तर न देकर चुपचाप बैठा रहा। षोड़शी ने कहा—अच्छी बात है, यदि आपका वह मत आज बदल गया है तो रुपया रहने दीजिए। आपको कुछ भी न देना पड़ेगा। परन्तु क्या मुझे आप सचमुच अभी तक पहचान नहीं सके? अच्छी तरह नज़र डालकर पहिचानिए तो।

जीवानन्द एकटक देखने लगा। देर तक उसकी पलकें नहीं झपीं। इसके बाद धीरे-धीरे सिर हिलाकर कहा—शायद पहचाना है; बचपन में तुम्हारा नाम अलका था न?

षोड़शी हँसी नहीं, परन्तु उसका चेहरा उज्ज्वल हो उठा। उसने कहा—मेरा नाम षोड़शी है। दश महाविद्या के नामों के सिवा भैरवी का और कोई नाम नहीं होता। तो क्या आपको अलका की याद है?

जीवानन्द ने निरुत्साह के साथ कहा—कुछ-कुछ याद ज़रूर है। मैं जब तुम्हारी माँ के होटल में बीच-बीच में भोजन करने जाता था तब तुम्हारी उम्र छः-सात साल की रही होगी। परन्तु मुझे तो तुमने आसानी से पहचान लिया?

इस कण्ठस्वर और उसके गुप्त अर्थ को समझकर षोड़शी ने तनिक चुप रहकर अन्त में सहज भाव से कहा—उसका कारण यह है कि उस समय अलका की उम्र छः-सात साल नहीं, नव-दस साल की थी। और आपको याद भी होगा कि उसकी माँ उसे आपका वाहन कहकर हँसी करती थी। इसके सिवा आपके चेहरे का कितना ही परिवर्तन क्यों न हो, आपकी दहिनी आँख पर का वह तिल तो नहीं मिट सकता। अलका की माँ की कुछ याद है?

जीवानन्द ने कहा—ज़रूर। उनके सम्बन्ध में तारादास जो कुछ कहते गये हैं वह भी अब समझ में आ रहा है। क्या वे अभी जीती हैं?

"नहीं; कोई दस वर्ष हुए, उनका स्वर्गवास हो गया। आपको वे बहुत प्यार करती थीं न ?"

जीवानन्द के सूखे चेहरे पर अब घबराहट की छाया पड़ी। उसने कहा—हाँ, एक बार मुसीबत में पड़कर मैंने उनसे सौ रुपये उधार लिये थे; शायद वे चुकाये नहीं गये।

दबी हँसी से षोड़शी के होंठ फूलने लगे, परन्तु वह उसी वक्त सँभलकर बोली—उसके लिए आपको अफ़सोस करने की आवश्यकता नहीं। अलका की माँ ने आपको वह रुपया उधार नहीं, दहेज समझकर दिया था।

दम भर चुप रहकर फिर बोली—आज इस पूर्ण सुख-सम्पदा के समय शायद वे दुःख की कहानियाँ आपको याद भी न आवेंगी, शायद उस दिन के उन सौ रुपयों का मूल्य ठहराना—हिसाब लगाना—भी कठिन होगा; परन्तु चेष्टा करने से इतना तो स्मरण अवश्य हो जायगा कि, वह दिन भी आज का सा ही दुर्दिन था। आज षोड़शी का ऋण बहुत भारी मालूम हो रहा है, परन्तु उस दिन अलका की कुलटा माँ का ऋण भी कम भारी नहीं था।

जीवानन्द ने दुखी होकर कहा—मैं ऐसा ही समझता बशर्ते कि वे उस रुपये के एवज़ में अपनी लड़की से विवाह करने को मुझे लाचार न करतीं !

षोड़शी बोली—विवाह करने के लिए उन्होंने लाचार नहीं किया था, बल्कि किया था आपने। परन्तु उन अप्रिय

बातों से अब क्या प्रयोजन ? आपसे तो अभी-अभी मैंने कहा है कि आज उस तुच्छ रुपये का मूल्य निरूपण न किया जा सकेगा; परन्तु अलका की मां के जन्म भर की पूँजी उतनी ही थी। अपनी बेटी के हाथ पीले करने के लिए उसके सिवा जब और कुछ भी उनके हाथ में नहीं था, तब उस रुपये के साथ-साथ उन्हें अपनी लड़की भी आपके ही हाथ में सौंपनी पड़ी। परन्तु विवाह तो आपने किया नहीं, की थी दिल्लगी ! कन्यादान होते ही जो आप ग़ायब हुए, उसके बाद कल ही शायद पहले-पहल आपके दर्शन हुए हैं।

जीवानन्द ने कहा—परन्तु उसके बाद तो, सुना है, तुम्हारा सचमुच विवाह हुआ है।

षोड़शी ने धीरज को नहीं खोया। वैसी ही शान्त गम्भीरता के साथ कहा—यानी और एक आदमी के साथ ? यही न ? परन्तु निरपराध निरुपाय बालिका के भाग्य में यदि वैसी विडम्बना हुई ही हो, तो आपके साथ तो उसका कोई सम्बन्ध ही नहीं है !

जीवानन्द ने लज्जित होकर कहा—षोड़शी, उस समय तुम बहुत छोटी थीं, बहुत सी बातें ठीक-ठीक नहीं जानती हो। यदि तुम्हारी मां आज जीवित होतीं तो गवाही देतीं कि उन्होंने वास्तव में क्या चाहा था। तुम्हारे पिता को इसके पहले मैंने कभी देखा नहीं था, उस कन्यादान की रात्रि में केवल नाम सुना था। परन्तु मैंने स्वप्न में

कल्पना तक नहीं की थी कि वही यह तारादास चक्रवर्ती है और तुम्हीं अलका हो।

षोड़शी तुरन्त रोककर बोली—आज भी तो कल्पना करने की आवश्यकता नहीं।

जीवानन्द ने कहा—न सही, किन्तु तुम्हारी माँ ने तुम्हें तुम्हारे पिता से अलग रखने के लिए ही जो कुछ भी हो एक—

"विवाह की लकीर खींच ली थी? शायद यही हो। अब तो अलका की माँ जीवित नहीं है, और मैं ही अलका हूँ या नहीं इसकी भी आपको चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं। परन्तु मैं उन लोगों के साथ क्यों नहीं गई और क्यों मैंने अपने सर्वनाश की कुछ कसर नहीं रक्खी, वही बात आज आपसे कह जाऊँगी। कल आपको सन्देह हुआ था कि शायद मैं पढ़ी-लिखी हूँ। पढ़ना-लिखना तो वह एककौड़ी भी जानता है, सो नहीं—परन्तु मेरे जो गुरु हैं, वे कुछ बाक़ी रखकर दान नहीं करते, इसलिए आज उन्हीं के चरणों में इस तरह से अपना बलिदान करने में मुझे कुछ झिझक नहीं हुई।"

जीवानन्द ने थोड़ी देर तक सिर झुकाये रहकर धीरे-धीरे मुँह उठाकर कहा—अच्छा, यदि तुम सच बात को प्रकट कर दो तो—

षोड़शी तुरन्त बोली—कौन सी सच बात? विवाह की बात? वह तो झूठ है। विवाह तो हुआ ही नहीं। इसके सिवा वह सवाल अलका का है, मेरा नहीं। मैं यहाँ सारी

रात बिताकर लोगों से इस कहानी का वर्णन करूँ तो इससे मेरी बदनामी का परिमाण घटने का नहीं। परन्तु मैं अब उस बात की परवा नहीं करती। मुझे अब अपने लिए दुःख नहीं है, वह तो आपके लिए है। कल मैंने सोचा था कि आपमें असीम साहस है—शायद उसके सामने आपके प्राण भी तुच्छ हैं, परन्तु आज मालूम हुआ कि वह मेरी भूल थी। न केवल एक निरपराध स्त्री के कलङ्क के मूल्य से आज आपने अपने को बचा लिया, प्रत्युत एक दिन जिस अनाथ बालिका को अपार समुद्र के बीच में अकेली छोड़कर आप रफूचक्कर हो गये थे, उसे पहचानने का साहस तक आपको नहीं हुआ।

जीवानन्द ने थोड़ी देर चुप रहकर एकाएक कहा—षोड़शी, मैं इतना नीचे उतर आया हूँ कि अब गृहस्थ की कुल-वधू की दुहाई दूँ तो तुम मन ही मन हँसोगी; परन्तु क्या उस दिन अलका को विवाह कर बीजगाँव के ज़मींदार-वंश की कुलवधू रूप से समाज पर लाद देना ही अच्छा होता?

षोड़शी ने सहज भाव से उतर दिया—वह मैं ठीक-ठीक नहीं जानती; मैं तो यह जानती हूँ कि सत्य की रक्षा उसी से होती। जिसका सारा दुर्भाग्य जानकर भी उसे हाथ फैलाकर ग्रहण करने में आपने आगा-पीछा नहीं किया, उसे आप उस तरह छोड़कर भाग न जाते तो आज आपका इतना बड़ा अपमान न होता। वही सत्य आज आपको इस दुर्गति से बचा लेता। परन्तु मैं वृथा बक रही हूँ। अब तो आपसे ये बातें

कहना निष्फल है। मैं जाती हूँ—आप कोई चीज़ देने की चेष्टा कर फिर मेरा अपमान न कीजिएगा।

जीवानन्द ने कुछ भी नहीं कहा। एककौड़ी को दरवाज़े के सामने देखकर वह एकाएक कातर स्वर से बोला—एककौड़ी, क्या यहाँ कोई डाक्टर है? ख़बर देकर बुला सकते हो? वह जो माँगेगा, मैं वही दूँगा।

षोड़शी चौंक उठी। अपने अभिमान और उत्तेजना के कारण उसकी दृष्टि अब तक दूसरी तरफ़ थी।

"डाक्टर हैं क्यों नहीं सरकार—हमारे बल्लभ डाक्टर का अच्छा नाम है।" इतना कहकर एककौड़ी ने समर्थन के लिए भैरवी की ओर ताका।

षोड़शी कुछ नहीं बोली, परन्तु जीवानन्द ने व्यग्र होकर कहा—उन्हीं को बुलवा भेजो एककौड़ी। एक मिनिट की भी देर न करो। देखो वहाँ बहुत सी ख़ाली बोतलें पड़ी हैं, किसी से कह दो कि पानी गरम कर लावे। कहाँ गये वे लोग?

एककौड़ी ने कहा—मैं वही बात तो कहने आया था हुज़ूर! पता ही नहीं चलता कि पुलीस के डर से कौन कहाँ भाग गया है।

"तो क्या कोई नहीं है, सब भाग गये?"

"सब के सब! एक भी आदमी नहीं है। वे लोग क्या आदमी हैं सरकार! मैं तो—"

जीवानन्द ने व्याकुल होकर कहा—तब क्या डाक्टर नहीं बुलाया जायगा एककौड़ी ?

बाधा पाकर एककौड़ी मन में लज्जित हुआ और बोला—क्यों न बुलाया जायगा सरकार, मैं ख़ुद ही जाता हूँ। अभी तो वे घर में ही होंगे। परन्तु पानी गरम करूँगा तो बहुत विलम्ब हो जायगा। इधर सरकार को अकेले—

परन्तु उसकी बात पूरी नहीं हो सकी। भीतर की किसी दुःसह व्यथा से जीवानन्द का चेहरा देखते ही देखते पीला पड़ गया। इसी को दबाने के लिए वह पेट के बल पलँग पर लेट गया और अस्फुट कण्ठ से बोला—ऊह, अब तो सहा नहीं जाता !

षोड़शी को मानो कहीं बड़ी चोट लगी। इतना कातर और हताश कण्ठस्वर भी इस दुर्दान्त पाखण्डी के मुँह से निकल सकता है, यह मानो उसके लिए स्वप्नातीत है। वास्तव में मनुष्य कितना दुर्बल, कितना निरुपाय है, दुःख की पीड़ा के कारण मनुष्यों में कितनी एकता, कितना अपनापन है—यह सोचकर उसकी आँखों में आँसू आ गये। परन्तु क्षणभर में अपने को सँभालकर वह घबराये हुए एककौड़ी की ओर देखकर बोली—तुम वल्लभ डाक्टर को बुला लाओ एककौड़ी। यहाँ जो कुछ करना है, मैं कर लूँगी। रास्ते में यदि किसी से भेंट हो जाय तो भेज देना। कहना कि अब पुलीस का डर नहीं है।

एककौड़ी चकित नहीं हुआ, बल्कि ख़ुश होकर बोला—जहाँ से होगा, मैं डाक्टर साहब को ज़रूर बुला लाऊँगा। परन्तु क्या आपको रसोईघर बतलाता जाऊँ ?

षोड़शी ने सिर हिलाकर कहा—ज़रूरत नहीं है, मैं ढूँढ़ लूँगी। परन्तु तुम कहीं किसी कारण से देर नहीं करना।

"जी नहीं, मैं बात की बात में आ जाऊँगा"—कहते-कहते एककौड़ी झटपट वहाँ से चला गया।

६

रसोईघर को ढूँढ़कर जब षोड़शी वहाँ से बोतल में गरम पानी भरकर लाई तब तक कोई लौटकर नहीं आया था। जीवानन्द उसी तरह औंधे मुँह पलँग पर पड़ा था। पैरों की आहट से मुँह उठाकर उसने देखते हुए कहा—तुम हो ? डाक्टर नहीं आये ?

"अभी तो उनके आने का समय नहीं हुआ।" यह कहकर षोड़शी ने दोनों बोतलें बिछौने के एक किनारे रख दीं।

जीवानन्द इस बात पर मानो विश्वास नहीं कर सका। उसने कहा—अभी आने का समय नहीं हुआ ? तुम्हें मालूम है, डाक्टर कितनी दूर रहते हैं ?

षोड़शी—हाँ, परन्तु क्या पन्द्रह मिनिट के भीतर ही आना हो सकता है ?

जीवानन्द ने लम्बी साँस छोड़कर कहा—"कुल पन्द्रह ही मिनिट हुए? मैंने समझा था कि दो-तीन घण्टे से एक-कौड़ी उन्हें बुलाने गया है। वह भी शायद डर के मारे यहाँ नहीं आवे अलका!" इतना कहकर वह फिर पेट के बल लेट गया। उसके कण्ठस्वर में और दृष्टि में व्याकुल निराशा की सीमा न रही।

षोड़शी तनिक चुप रहकर स्नेहयुक्त स्वर से बोली—डाक्टर आवेंगे क्यों नहीं। तब तक गरम पानी की बोतलों को पेट में लगा लीजिए न।

जीवानन्द ने उसी दशा में सिर हिलाकर कहा—नहीं, उसे रहने दो। उससे मुझे कुछ लाभ नहीं होता, केवल कष्ट ही बढ़ता है।

षोड़शी ने सहसा कुछ प्रतिवाद नहीं किया। इस निरुपाय रोगी के मुँह से अपने लड़कपन का नाम सुनकर उसके हृदय में अपूर्व आनन्द का उदय होने लगा था। सम्भवतः इसी भाव में मग्न होकर वह अपना और पराया, सामने का और पीछे का सब भूलकर बेसुध की तरह चुपचाप खड़ी थी। अचानक जीवानन्द के प्रश्न से उसको होश आया।

"अलका!"

इस नाम की अब वह उपेक्षा न कर सकी। बोली—कहिए।

जीवानन्द ने कहा—अभी तक समय नहीं हुआ? शायद वह न आवें, शायद कहीं चले गये हों।

षोड़शी—मैं जानती हूँ कि वे अवश्य आवेंगे। वे कहीं गये नहीं हैं।

"यहाँ का कोई अभी तक लौटा नहीं क्या ?"

"नहीं"।

जीवानन्द ने दम भर चुप रहकर कहा—शायद वे लोग अब न आवें, शायद एककौड़ी भी इसी बहाने खिसक गया हो।

षोड़शी चुप रही। जीवानन्द ने शायद अपने दर्द को दबाकर थोड़ी देर के बाद कहा—सब लोग चले गये। वे जा सकते हैं—केवल तुम्हीं न जा सकोगी।

"क्यों ?"

"शायद मैं अब बचूँगा नहीं—इसी लिए। साँस लेने में भी मुझे कष्ट हो रहा है। मालूम होता है, मानो दुनिया में हवा ही नहीं है।"

"आपको क्या बहुत कष्ट हो रहा है ?"

"हाँ। अलका, तुम मुझे क्षमा करो।"

षोड़शी ने कुछ नहीं कहा। जीवानन्द ने थोड़ा रुककर फिर से कहा—मैं ईश्वर को नहीं मानता, ज़रूरत भी नहीं होती। परन्तु अभी मन ही मन प्रार्थना कर रहा था। मैंने जीवन् में इतने पाप किये हैं कि उनका ओर-छोर तक नहीं है। आज बार-बार यही मालूम हो रहा है कि शायद सब देना सिर पर लादे ही जाना पड़ेगा।

षोड़शी वैसे ही चुपचाप खड़ी रही। जीवानन्द ने कहा—"न तो मनुष्य अमर है और न मृत्यु की कोई सीमा निर्दिष्ट है कि अमुक समय शरीर छूट जायगा—परन्तु इतना कष्ट तो सहा नहीं जाता। ऊह मैया रे!" कहते-कहते उसका शरीर व्यथा की असह्य तीव्रता से सिकुड़ने लगा।

षोड़शी ने देखा कि जीवानन्द के शरीर में ही नहीं, किन्तु कपाल पर भी पसीने के बिन्दु दिखाई दे रहे हैं। उसके विवर्ण चेहरे में बन्द आँखों के नीचे रक्तहीन होंठ मज़बूती से जुड़ गये हैं।

क्षण भर के लिए षोड़शी ने कुछ सोचा, शायद थोड़ा आगा-पीछा भी किया; उसके बाद वह इस रोगी की शय्या पर जा बैठी। गरम पानी की बोतलें पेट से लगाई जाने पर जीवानन्द ने क्षण भर के लिए आँखें खोलकर फिर बन्द कर लीं। उसके माथे के पसीने को अपने आँचल से पोंछकर षोड़शी, पङ्खा न रहने के कारण, आँचल से ही धीरे-धीरे हवा करने लगी।

जीवानन्द ने कुछ नहीं कहा। वह अपने दहिने हाथ को षोड़शी की गोद में रखकर चुपचाप पड़ा रहा।

इसी तरह दस-पन्द्रह मिनिट बीतने पर जीवानन्द ने पुकारा—अलका!

षोड़शी ने कहा—आप मुझे षोड़शी कहकर पुकारिए।

"अब क्या फिर अलका नहीं बन सकती हो?"

"नहीं।"

"कभी किसी कारण से भी क्या—"

"आप दूसरी बात कीजिए।"

परन्तु जीवानन्द के मुँह से दूसरी बात नहीं निकली। धीरे-धीरे एक लम्बी साँस निकलकर शून्य में लीन हो गई।

दो-तीन मिनिट के बाद षोड़शी ने मृदु स्वर से पूछा—आपके कष्ट में क्या कुछ कमी नहीं हुई?

जीवानन्द ने गर्दन हिलाकर कहा—शायद कुछ कमी हुई है। अच्छा, अगर बच जाऊँ तो क्या मैं तुम्हारा कोई उपकार नहीं कर सकता?

षोड़शी—नहीं, मैं संन्यासिनी हूँ। कोई मेरा कुछ उपकार नहीं कर सकता।

जीवानन्द ने थोड़ी देर स्थिर रहकर एकाएक पूछा—अच्छा, क्या ऐसा कोई काम नहीं है जिससे संन्यासिनी भी ख़ुश होती है?

षोड़शी—शायद हो, परन्तु आप इसके लिए इतने उतावले क्यों होते हैं?

जीवानन्द ने इस बार ज़रा क्षीण हँसी हँसकर कहा—मुझमें बहुत ऐब हैं; परन्तु दूसरे का उपकार करने के लिए उतावले होने का दोष किसी ने आज तक मुझे नहीं लगाया। और इस समय कह रहा हूँ, इसलिए आराम हो जाने पर भी कहूँगा, इसका भी कोई भरोसा नहीं। मैं ऐसा ही गया-बीता हूँ। जन्म भर में इसके सिवा शायद मेरी समझ में और कुछ नहीं आया।

षोड़शी ने चुपचाप फिर उसके माथे का पसीना पोंछ दिया। जीवानन्द ने एकाएक वही हाथ पकड़कर पूछा—संन्यासिनी को क्या सुख-दुःख नहीं है? संसार में क्या ऐसा कुछ भी नहीं है जिससे वह ख़ुश हो?

षोड़शी—परन्तु वह तो आपके हाथ में नहीं है।

जीवानन्द—ऐसा कुछ जो मनुष्य के हाथ में हो?

षोड़शी—वह भी है, परन्तु आप अच्छे होकर यदि कभी पूछेंगे तो बतलाऊँगी।

उसके हाथ को जीवानन्द ने अपनी छाती के पास खींचकर कहा—नहीं, नहीं, अच्छे होने पर नहीं; इसी सख़्त बीमारी की हालत में ही मुझसे कहो। मनुष्यों को मैंने बहुत दुःख दिये हैं; आज अपने दुःख के समय दूसरे के दुःख की बात, दूसरे की आशा की वाणी तो ज़रा सुन लूँ। इसी से मेरे दुःख का बोझ ज़रा हलका हो जाय।

अपने हाथ को धीरे-धीरे छुड़ाकर षोड़शी स्थिर हो बैठी। जीवानन्द ने एक मिनिट चुप रहकर कहा—अच्छा, यही सही। सबकी तरह मैं भी तुम्हें आज से षोड़शी ही कहा करूँगा। कल से आज तक मैंने इतने कष्ट के समय बहुत सी बातें सोची हैं। शायद तुम्हारी बात ही अधिक है। मैं तो बच गया, परन्तु तुम्हें तो यहाँ—

षोड़शी ने तुरन्त रोककर कहा—मेरी बात रहने दीजिए।

रोके जाने पर जीवानन्द ने दम भर चुप रहकर धीरे-धीरे कहा—"मैं समझ गया षोड़शी, तुम यह भी नहीं चाहती कि मैं तुम्हारी चिन्ता करूँ। यही होना चाहिए!" यह कहते हुए वह एक लम्बी साँस छोड़कर चुप हो गया।

षोड़शी शय्या से खड़ी हो गई। जीवानन्द ने आँख खोलकर कहा—तुम भी चलीं?

षोड़शी गर्दन हिलाकर बोली—"नहीं। घर बड़ा गन्दा हो रहा है, ज़रा सफ़ाई कर डालूँ।" वह जीवानन्द की सम्मति की प्रतीक्षा किये बिना ही गृहकार्य करने लगी। घर के बहुत से जँगले, दरवाज़े अब तक खोले ही नहीं गये थे; बहुत खींचा-तानी करके उन्हें खोलते ही क्षण भर में प्रकाश और हवा से सारा घर भर गया। फ़र्श पर कई जगह कूड़े का ढेर जम गया था; झाड़ू ढूँढ़कर षोड़शी ने तमाम साफ़ कर डाला। अपने आँचल से बिछौना झाड़कर जब षोड़शी ने दोनों तकियों को ठिकाने पर रख दिया तब भी जीवानन्द ने कुछ नहीं कहा; केवल उसके मलिन मुख पर एक स्निग्ध ज्योति धीरे-धीरे आकर स्थिर हो रही थी। षोड़शी काम कर रही थी, जीवानन्द सिर्फ़ आँखों से उसी का अनुसरण कर रहा था, मानो अपना सब दु:ख-दर्द भूलकर दुनिया के सबसे बड़े आश्चर्य की तरह जीवन में पहले-पहल देख रहा था कि शृङ्खला और सुथरापन क्या है।

एकाएक बहुत से पैरों की आहट पाकर षोड़शी ने झाड़ू एक तरफ़ रख दी और सीधी खड़ी हो गई।

एककौड़ी दरवाज़े के भीतर झाँककर बोला—हुज़ूर डाक्टर साहब आये हैं।

"उन्हें ले आओ," कहकर षोड़शा अपने पहले के स्थान पर जा बैठी। दूसरे ही क्षण में जिन चिकित्सक का यश इस देश में बहुत ही प्रसिद्ध है वही बल्लभ डाक्टर कमरे के भीतर आये और षोड़शी को यहाँ, इस तरह, देखकर मानो एकदम आसमान से गिर पड़े।

एककौड़ी ने उँगली से इशारा कर कहा—वह हैं सरकार, अगर आप अच्छा कर देंगे डाक्टर साहब, तो इनाम का कहना ही क्या है, हम लोग ज़िन्दगी भर आपके कृतज्ञ रहेंगे।

डाक्टर धीरे-धीरे पलँग के पास आये और जेब से रबर का नल निकालकर चुपचाप रोग की परीक्षा करने लगे। बहुत जाँच-पड़ताल के बाद उन्होंने बड़े डाक्टर की तरह ही राय दी। कहा—बहुत अत्याचार करने से इस रोग की उत्पत्ति हुई है; अगर अभी से सावधानी न की जायगी तो 'लिवर' का पक जाना असम्भव नहीं है, और उसमें भय की भी बात है; परन्तु सावधान होने से बचाव हो सकता है, और उसमें भय भी कम है। किन्तु मैं यह बात अवश्य कहूँगा कि दवा खाना आवश्यक है।

जीवानन्द ने पूछा—क्या आप कह सकते हैं कि इस हालत में कलकत्ते जाना सम्भव है?

डाक्टर ने उत्तर दिया—अगर जा सकें तो सम्भव है, नहीं तो किसी हालत में भी सम्भव नहीं।

जीवानन्द ने फिर पूछा—क्या आप निश्चय करके कह सकते हैं कि यहाँ रहने से आराम हो जायगा ?

डाक्टर ने बड़े बुद्धिमान् की तरह सिर हिलाकर जवाब दिया—जी नहीं हुजूर, मैं नहीं कह सकता। परन्तु यह निश्चित है कि यहाँ रहने से भी आपको आराम हो सकता है, और कलकत्ते जाकर आराम नहीं भी हो सकता।

जीवानन्द ने मन ही मन चिढ़कर फिर दुबारा प्रश्न नहीं किया। डाक्टर दवा के लिए आदमी भेजने का इशारा करके, अपनी दक्षिणा लेकर, विदा हो गये। एककौड़ी उनके साथ-साथ दरवाज़े के बाहर तक जाकर लौट आया। तब जीवानन्द ने उसके मुँह की ओर देखकर कहा—क्या होगा एककौड़ी ?

एककौड़ी ढाढ़स बँधाकर बोला—डर क्या है सरकार, दवा आया ही चाहती है। बल्लभ डाक्टर का एक शीशी मिकचर पीने से ही सब अच्छा हो जायगा।

जीवानन्द ने सिर हिलाकर कहा—"नहीं एककौड़ी, तुम्हारे बल्लभ डाक्टर का मिकचर तुम्हीं को मुबारक हो। तुम आज ही मेरे कलकत्ते जाने का इन्तज़ाम कर दो।" यह कहकर वह उस दरवाज़े की ओर उत्सुक नेत्रों से देखने लगा जिस दरवाज़े से थोड़ी देर पहले षोड़शी गई थी।

परन्तु कोई लौटा नहीं। दो-तीन मिनिट के बाद उससे धीरज धरते नहीं बना। उसने कहा—उन्हें बुलाकर तुम

मेरे जाने का कुछ इन्तज़ाम कर दो एककौड़ी, आज मुझे जाना ही चाहिए।

सुनते ही एककौड़ी इस इशारे का मतलब समझ गया। "जो हुक्म सरकार" कहकर वह उसी वक्त बाहर गया। परन्तु उसे लौटने में विलम्ब होने लगा। पन्द्रह मिनिट के बाद जब वह सचमुच में आया तब अकेला आया। कहा—वे नहीं हैं हुजूर, घर चली गई हैं।

जीवानन्द को विश्वास नहीं हुआ। बेकली के साथ कहा—मुझसे बिना कहे चली जायँगी? यह हो ही नहीं सकता एककौड़ी।

विश्वास करना वास्तव में कठिन था। अलका कुछ व्यवस्था किये बिना ही चली गई, एक बात भी नहीं कह गई, डाक्टर की राय तक सुनकर जाने का धैर्य उसे नहीं रहा! इस बात पर जीवानन्द अपने मन में किसी तरह विश्वास नहीं कर सका।

एककौड़ी ने कहा—हाँ हुजूर, वे डाक्टर साहब के जाने के बाद ही चली गईं। बाहर गोपाल कहार बैठा है। भैरवी माई को सीधे जाते हुए उसने देखा है।

जीवानन्द ने प्रतिवाद नहीं किया। एककौड़ी बोला—तो ज़रा दिन रहते-रहते आपके जाने का इन्तज़ाम करूँ, सरकार?

"हाँ, ऐसा ही करो" कहता हुआ जीवानन्द करवट लेकर दीवार की तरफ़ मुँह करके लेट गया। एककौड़ी कलकत्ते

जाने की बहुत सी सुविधा-असुविधाओं की बातें कहने लगा, परन्तु मालिक की तरफ़ से कुछ जवाब नहीं मिला। बातें उनके कानों में जाती हैं या नहीं, यह भी समझ में नहीं आया।

७

ज़मींदार के विलासकुञ्ज से जब षोड़शी चुपचाप निकल गई तब दिन के नव-दस बजे होंगे। इस तरह चला आना उसे बुरी तरह खटकता था; परन्तु उसी दम मन में हुआ कि कह-सुनकर, बिदा लेकर, आने में और भी ज़्यादती होती। परन्तु फाटक के बाहर आकर उसने देखा कि अब एक क़दम आगे बढ़ना भी कठिन है। खेतों में चारों ओर किसान काम कर रहे हैं, गाँव में जाने का रास्ता उन्हीं के बीच से है। दिन के उजेले में, इसी रास्ते से, मुँह ऊँचा या नीचा करके किसी तरह भी जाने में उसका पाँव नहीं उठता था। बिजली की चमक अँधेरे के पर्दे को हटाकर बादल से घिरी हुई धरती की छाती को जैसे क्षण भर में सुस्पष्ट कर देती है, उसी तरह दूर के उन किसानों की दृष्टि ने षोड़शी की गत रात्रि की घटनाओं को उसी के सामने पलक मारते ही प्रकट कर दिया। पर्दे की ओट में इतनी चीज़ें ढकी हुई थीं। एक ही रात के अन्दर किसी मनुष्य के भाग्य में इतनी बड़ी घटना हो सकती है, यह देखकर उसके हवास उड़ गये। पूरा एक दिन भी तो नहीं बीता। कल ही शाम को अपमान के मारे बिलकुल बेसुध

होकर इसी रास्ते से वह चली आई थी, परन्तु उसके बाद ? उसके बाद की घटना होने में साधारण मनुष्य को बहुत समय लग सकता है, परन्तु षोड़शी को नहीं लगा। यह मानो कोई इन्द्रजाल हो गया, इसलिए इस परिचित रास्ते के उस पार उसके भाग्य में क्या प्रतीक्षा की जा रही है उसकी कल्पना भी वह नहीं कर सकी। फाटक के बाहर, बग़ीचे के पास से, एक पगडण्डी नदी की तरफ़ गई है। थोड़ी देर आना-कानी कर वह इसी पगडण्डी पर धीरे-धीरे चलकर नदी-किनारे आ खड़ी हुई। इधर कोई बस्ती नहीं है, गाय-भैंस चराने के लिए कदाचित् किसी गड़ेरिये के लड़के के सिवा इस रास्ते में कोई नहीं आता। इसी सुनसान जगह में सन्ध्या होने की प्रतीक्षा करके, अँधेरे में छिपकर घर लौटने की आशा से, वह एक पुराने इमली के पेड़ के नीचे जा बैठी। अब तक वह जिस भँवर में फँसी हुई थी उसमें वर्तमान के सिवा और कोई चिन्ता उसके मन में नहीं थी। अब जो भविष्यत् आग्रह से उसकी राह देख रहा है, उसकी एक-एक बात वह अपने मन में विचारने लगी। उसके छोटे से गाँव में अब तक कोई बात किसी से छिपी नहीं है; ज़मींदार ने उसे पकड़वा मँगाया है, रात भर रोक रक्खा है—यह इन दो-चार दिनों के (ज़मींदार के) अत्याचार से ऐसी ही मामूली बात हो गई है कि, इसके लिए अधिक सोचने-विचारने की आवश्यकता नहीं। यहाँ तक कि, उसने किसलिए झूठ कहकर

मजिस्ट्रेट के हाथ से ज़मींदार का उद्धार किया है, इसका भेद समझने के लिए बुद्धिमानों की इस गाँव में कमी नहीं होगी। सभी समझेंगे कि यह रिश्वत का बड़ा भारी मामला है। परन्तु ख़ास झञ्झट है पिता तारादास को लेकर। दोनों का सहज सम्बन्ध भीतर ही भीतर बहुत दिनों से सड़ता जा रहा था, अब वह सम्बन्ध घृणा की वाष्प के रूप में बहुत से स्थानों में व्याप्त होकर जलता रहेगा। उसकी ज्वाला का किसी की दृष्टि से छिपना सम्भव नहीं। संसार में उस आदमी के लिए असाध्य कोई काम नहीं है। उसके बुरे कामों में रोक-टोक करने से बाप-बेटी के बीच अब तक बहुत लड़ाई-झगड़े हुए हैं; उसमें बराबर बाप को ही हार माननी पड़ी है। परन्तु कई कारणों से उसे षोड़शी की माता के सम्बन्ध में चुप ही रहना पड़ा है। आज उसने क्रोध के मारे एक बार जब उस बात को ज़ाहिर कर डाला है तब वह किसी हालत में चुप नहीं रहेगा। इस कलङ्क के प्रचार से वह अपने साथ उसका भी सत्यानाश करके इस गाँव से निकलेगा। यह मामूली बात नहीं है, यह उसके सारे भविष्यत् जीवन को अँधेरे में डाल रक्खेगा। यह भी षोड़शी को साफ़ मालूम होने लगा। परन्तु उस अँधेरे के भीतर उसके लिए कैसा परिणाम नियत है, उसका आभास तक उसे दिखाई नहीं पड़ा। दिन चढ़ने लगा, गाँव में उसकी चर्चा का अस्पष्ट कोलाहल यहीं से मानो उसके कानों में गूँजने लगा। उसी के अन्दर जीवानन्द के मुँह से

सुना हुआ 'अलका' नाम, उसका लज्जा के साथ माफ़ी माँगना और उसकी व्याकुल प्रार्थना याद कर षोड़शी के अन्तः-करण में आनन्द का आवेश होने लगा। परन्तु उस गाँव के भीतर जो सङ्कट उसकी प्रतीक्षा कर रहा है उसकी विभीषिका की तीव्र यातना काँटे की तरह उसके मन में चुभने लगी।

धीरे-धीरे सूर्यदेव आकाश के दूसरे प्रान्त में ढल गये और उन्हीं की एक दीप्त रश्मि से अपना मुँह फेर लेते ही एका-एक दूर के खेतों में से जाते हुए ज़मींदार की पालकी पर उसकी नज़र पड़ी।

इसी रास्ते से जब वे लोग गये हैं तब ज़रूर मेरे पास हो-कर ही गये होंगे, मुझे मालूम भी नहीं पड़ा। ध्यान देती तो शायद ज़रा देख भी लिया जा सकता था। अब षोड़शी के अनजान में सिर्फ़ एक लम्बी साँस निकल आई।

क्रमशः सन्ध्या और उसके बाद अँधेरा होने में देर नहीं लगी। षोड़शी उठकर जब गाँव के लिए रवाना हुई तब मैदान में एक भी आदमी नहीं था। और इस सुनसान रास्ते से होकर जब वह अपने घर के सामने आ खड़ी हुई तब रात हो चुकी थी। किसी से भेंट न होने पर भी उसके मन में अन्धड़ चल रहा था, परन्तु सदर दरवाज़े पर ताला देखकर उसे कुछ तसल्ली हुई। घूमकर पिछवाड़े के द्वार पर जाकर देखा तो उसे भी भीतर से बन्द पाया। उसको आशा भी ऐसी ही थी; परन्तु इस द्वार को बाहर से खोलने का कौशल उसे मालूम था।

थोड़ी ही देर में भीतर घुसकर उसने देखा कि तमाम कोठरियों में ताले लगे हैं, कहीं कोई नहीं है, सारे मकान में सन्नाटा है।

संन्यासिनी को बहुत उपवास करने पड़ते हैं, भोजन की उसे याद भी नहीं रही। किसी निर्जन स्थान में विश्राम करने के लिए उसका मन तरस रहा था। परन्तु जब किसी कमरे के अन्दर जाने का कोई उपाय ही नहीं है, तब वह बरामदे में एक ओर अपना आँचल बिछाकर लेट गई। तारादास घर में नहीं हैं, क्यों नहीं हैं, कहाँ गये हैं, इन प्रश्नों का अवकाश उसके क्लान्त शरीर और मन में नहीं था। वह रात भर आराम से सो सकेगी, इसी तृप्ति में वह देखते-देखते निद्रित हो गई।

सुबह नींद टूटते ही षोड़शी को सदर दरवाज़े का ताला खोलने का शब्द सुनाई दिया और साथ ही साथ वह विधवा स्त्री आकर हाज़िर हुई जो मन्दिर और मकान का काम-धन्धा करती है। षोड़शी को देखकर वह अकचकाई नहीं। उसने पूछा—माई, रात को कब आईं? क्या पिछवाड़े का दरवाज़ा खोलकर आई हो?

षोड़शी के सिर हिलाकर हाँ कहने से वह फिर बोली—सब लोग यही चर्चा कर रहे थे माजी! राजा बाबू जब शाम को चले गये तब सब लोगों ने कहा कि अब तुम्हें छोड़ देंगे। तुमने तो कुछ खाया-पिया न होगा। क्या करूँ माजी, घर की चाभी तो पण्डितजी साथ लेते गये हैं। अच्छा, मैं मोदी के यहाँ से सौदा ला देती हूँ, लकड़ी वगैरह का इन्तज़ाम किये

देती हूँ, तुम झटपट नहा-धोकर रसोई करके थोड़ा सा खा लो। फिर जो होना है, होगा।

षोड़शी ने पूछा—रानी की माई, बाबूजी कहाँ गये हैं?

रानी की माँ ने कहा—सुना है, कोई उनकी भानजो है, उसी को लाने गये हैं। अभी आ जायँगे। आज बड़े बाबू के नाती की मनौती की पूजा है। आज क्या और कहीं रहा जा सकता है? मन्दिर में तो दो घड़ी रात रहते ही धूम मची हुई है।

षोड़शी को तुरन्त याद आई कि आज मङ्गलवार है, आज जनार्दन राय के दौहित्र की मनौती की पूजा में मन्दिर में बड़ा समारोह होगा। आज तो किसी हालत में वह कहीं छिपी नहीं रह सकती। वह है देवी की भैरवी, इतने बड़े उत्सव में उसे मौजूद रहना ही होगा।

यहाँ जनार्दन राय का थोड़ा सा परिचय देना आवश्यक है। ये जैसे धनी हैं, वैसे ही भयङ्कर हैं। एक बार किसी किसान से बेगार लेने के मामले में षोड़शी से इनका झगड़ा हो गया था। वह बात अभी तक दोनों ओर किसी को भूली नहीं है। षोड़शी ही क्यों, यहाँ के सभी लोग उनसे बहुत डरते हैं। ज़मींदार भी इनकी खातिर करता है, एककौड़ी तो इनके हाथ में ही है। जिस साल किसानों से मालगुज़ारी वसूल नहीं होती उस साल सरकारी माल-गुज़ारी भेजने में ज़मींदार को यही मदद देते हैं। दो सौ बीघे खेत तो वे ख़ुद जोतते हैं, इसके सिवा अनाज का व्यापार और

महाजनी का काम भी काफ़ी है। परन्तु एक समय था जब यही बड़े बाबू बिलकुल छूँछे थे। कहा जाता है कि, यह सब इनके मँझले दामाद मिस्टर बसु का रुपया है। वे पश्चिम के किसी बड़े शहर में नामी बैरिस्टर हैं। विलायत से लौटने पर वे यथाविधि प्रायश्चित्त करके जाति में मिल गये थे। आज उन्हीं मिस्टर बसु के एकलौते पुत्र के सर्वविध कल्याण के लिए चण्डो देवी की पूजा की तैयारी हो रही है। महीने भर से गाँव में इस धूम-धाम की पूजा की बातचोत चल रही है। बड़े बाबू की जो लड़की इतने बड़े घर में ब्याही है, उस हैमवती से बचपन में षोड़शी की जान-पहचान थी। उससे हैमवती उम्र में दो-एक साल छोटो ही होगी। मन्दिर के आँगन में जो छोटी सी पाठशाला अभी तक है, उसमें सबके साथ हैमवती भी पढ़ने-लिखने आती थी। उस समय यदि किसी रोज़ षोड़शी वहाँ आती थी तो सबके साथ वह भी उसे प्रणाम करके पैरों की धूल ले लेती थी। आज वह बड़े घर की बहू है। आज शायद उसके शरीर में सौन्दर्य और ऐश्वर्य के प्राचुर्य की सीमा ही नहीं है, आज शायद वह उसे पहचान भी न सके। परन्तु एक दिन ऐसा नहीं था। उस समय रूप या वयस में उसमें कुछ अधिकता नहीं थी। ऐसा होने पर भी वह इतने बड़े घर में देवी की कृपा के कारण ही ब्याही गई है, यही सुना जाता है। किसी अमावस को कोई सिद्ध तान्त्रिक देवी के दर्शन को आये थे। राय

बाबू ने अपनी कन्या की भलाई के लिए उन्हीं से, गुप्त भाव से, कुछ अनुष्ठान करा लिया था। शायद यह पुत्र भी देवीजी की कृपा से प्राप्त हुआ है। हताश होकर हैम ने विदेश में इन्हीं देवी की मनौती करके पुत्र प्राप्त किया है।

नौकरनी काम करते हुए बोली—माजी, आज न मालूम कब मन्दिर से बुलाहट आ जाय। तब तक आप नहा धोकर तैयार हो लो न ?

षोड़शी का चित्त दूसरी तरफ़ था। मन्दिर की बुलाहट का नाम सुनकर वह चौंक उठी। परन्तु उसके लिए न सही, दिन निकलने के पहले एकान्त में नहा आना ही अच्छा समझकर वह चटपट पिछले दरवाज़े से पोखरे पर चली गई। गाँव का कोई भी प्राय: इस तालाब पर नहाने नहीं आता था, इसी लिए वहाँ किसी से उसकी भेंट नहीं हुई। घर लौटकर उसने देखा कि कपड़ा बदलने को दूसरी धोती नहीं है, देह पोंछने का अँगौछा तक बाहर नहीं है। यह देखकर रानी की मा सकुचाने लगी। वह तारादास से चिढ़ती थी। नाराज़ होकर बोली—बुड्ढा घास-फूस तक को ताले में बन्द कर गया है। मेरे घर एक टसर की धुली हुई धोती है, उसे ला दूँ ? उसमें तो कोई दोष नहीं।

षोड़शी—नहीं, रहने दे।

"गीला कपड़ा शरीर में सूखेगा। इससे माजी बीमार हो जाओगी।"

षोड़शी ने कुछ उत्तर नहीं दिया। उसके सूखे चेहरे की ओर देखकर दासी समवेदना के साथ बोली—न मालूम कितने दिनों से उपवास कर रही हो माजी; मैं जानती हूँ कि मलेच्छ आदमियों के यहाँ तुम पानी तक नहीं छुओगी। तो अब मैं कुछ सामान दूकान से या, कहो तो, अपने घर से लाकर रख जाऊँ न?

षोड़शी ने सिर हिलाकर कहा—नहीं, रानी की माँ, वह सब रहने दो।

यह नौकरनी कायस्थ की लड़की है। उसे कुछ अक़्ल थी, इसी से उसने इस बात पर वृथा ज़ोर नहीं दिया। काम-धन्धा करके जाते समय उसने पूछा—पण्डितजी मन्दिर में मिल जायँ तो क्या उन्हें एकान्त में बुलाकर यहाँ भेज दूँ?

षोड़शी ने कहा—रहने दो, आवश्यकता नहीं है।

दासी बोली—ताला बन्द करने की ज़रूरत नहीं है। दरवाज़ा आप भीतर से ही बन्द कर लें। अच्छा माजी, कोई अगर कुछ पूछे तो—

षोड़शी थोड़ी देर चुप रही, फिर सिर उठाकर बोली—"कह देना कि मैं घर में ही हूँ।" रानी की माँ के चले जाने पर वह दरवाज़ा ज्यों का त्यों खुला पड़ा रहा। षोड़शी को मालूम भी नहीं हुआ कि सामने के बरामदे में मुँह नीचा किये चुपचाप बैठे-बैठे दो-तीन घण्टे कैसे बीत गये। किसी अनजान व्यथा की तरह उसके मन में यही भाव उठ रहा था कि

अब मुझे किसी कठोर दुर्भाग्य का सामना करना पड़ेगा। मेरे सम्बन्ध में बड़ी कुत्सित चर्चा गाँव भर में चल रही होगी। परन्तु लड़ने या आत्मरक्षा के लिए उसका मन किसी तरह भी सन्नद्ध नहीं होता था, बल्कि वह उसके कानों में बार-बार यही कहने लगा कि आज तुम्हें यही सब से बड़ी बात याद रखनी होगी कि तुम संन्यासिनी हो। अपनी इच्छा से हो या अनिच्छा से, जान-बूझकर हो या अनजान में, एक रोज़ तुमने अपनी देह को देवता के कार्य में दान कर दिया था—इस सबसे बड़े सत्य को आज तुम्हें किसी हालत में भी इनकार करने से नहीं चलेगा। तुम्हें दाँव में रखकर जो लोग मिथ्या का जूआ खेल रहे हैं, वे लोग मार-काट कर मरें। तुम्हारी तो अब रिहाई है।

इसी समय मन्दिर के वृद्ध पुजारी दरवाज़े से होकर आँगन में आ खड़े हुए। उन्होंने कहा—माँ, ये लोग तुम्हें बुला रहे हैं।

"चलिए" कहकर षोड़शी उठ खड़ी हुई। उसने प्रश्न तक नहीं किया कि किसलिए, कहाँ या कौन लोग बुला रहे हैं; मानो वह इसी की प्रतीक्षा कर रही थी। उसकी आनेवाली विपत्ति के सम्बन्ध में पुजारी को कुछ इशारा करने की इच्छा थी, परन्तु भैरवी के मुँह की ओर देखकर उनके मुँह से कुछ भी नहीं निकला।

आज मन्दिर के आँगन का बड़ा फाटक खुला है। घुसते ही उसने देखा कि उस तरफ़ की दीवार के पास काले रङ्ग

के दो बकरे बँधे हुए हैं। दालान में पूजा के सामान का ढेर लगा है। वहाँ ढलती उम्र की पाँच-छः स्त्रियाँ वाक्य तथा कार्य में बड़ी उतावली दिखला रही हैं, परन्तु सबसे ज़्यादा शोर-गुल मचा हुआ है आँगन के भीतर। वहाँ राय बाबू का सुन्दर कोमल ग़लीचा बिछा हुआ है और उन्हीं को बीच में करके गाँव के मुखिया लोग, अपनी-अपनी मर्यादा के अनुसार, बैठकर सम्भवतः षोड़शी के सम्बन्ध में विचार कर रहे हैं। मालूम नहीं, अब तक कौन सुन रहा था परन्तु जिसको सुनना सबसे अधिक आवश्यक है उसके पास आकर खड़े होते ही यह सैकड़ों कण्ठों की उद्दाम वक्तृता एकाएक बन्द हो गई।

थोड़ी देर तक किसी तरफ़ से कोई प्रसङ्ग नहीं उठा। सभी आदमी उसके परिचित थे और स्त्रियाँ, जो हाथ का काम छोड़कर एक-एक करके खम्भों की ओट में आ खड़ी हुई थीं वे भी, उसकी अपरिचित नहीं थीं; केवल जो युवती सबके पीछे मन्दिर से धीरे-धीरे आकर उसके सामने-वाले खम्भे के आश्रय से चुपचाप खड़ी हो गई और उसकी ओर एकटक ताकने लगी वह अनजान होने पर भी षोड़शी को मालूम हुआ कि यही हैमवती है। यह स्त्री अपनी ससु-राल से बहुत दिन तक मैके नहीं आ सकी थी, इसलिए यहाँ इसके सम्बन्ध में तरह-तरह की अफ़वाहें उड़ रही थीं। वह अखाद्य खाना खाती है, घाँघरा और जूता-मोज़ा पहनती है, सड़कों पर पुरुषों के हाथ पकड़कर चलती है, वह एक-

दम क्रिस्तान मेम बन गई है, ऐसी ही बहुत कुछ अफ़वाहें थीं! परन्तु आज षोड़शी को उन अफ़वाहों में से एक की भी सत्यता नहीं दिखाई दी। उसकी देह पर एक क़ीमती बनारसी साड़ी और दो-एक क़ीमती ज़ेवरों के सिवा जूता-मोज़ा-घाघरा कुछ भी न था; बल्कि उसके माथे में सिन्दूर और पैरों में महावर इतना अधिक लगाया गया था कि किसी तरह मालूम नहीं होता था कि यह वेश वह सिर्फ़ आज के ही लिए बना लाई है। वह सुन्दरी है सही, परन्तु असाधारण नहीं है। रङ्ग बहुत साफ़ नहीं है, लेकिन बड़े घर की स्त्रियाँ जैसे घिस-माँजकर देह के रङ्ग को कुछ साफ़ कर लेती हैं वैसा ही इसका है—उससे अधिक नहीं। क्षण भर देखने से ही षोड़शी को मालूम हो गया कि इस धनी गृहिणी ने जैसे धन के आडम्बर से अपनी देह की, वसन-भूषणों की, दूकान नहीं सजाई है वैसे ही इसने लज्जा या निर्लज्जता किसी की भी ज़्यादती से अपने बचपन के इस गाँव को विडम्बित नहीं कर डाला है। हैमवती चुपचाप उसकी ओर देखने लगी, शायद अन्त तक इसी प्रकार चुपचाप रहेगी, परन्तु इसी के सामने अपनी होनेवाली दुर्गति की आशङ्का से लज्जा के मारे षोड़शी का सिर झुक गया।

दो-तीन मिनिट और चुपचाप बीत जाने पर वृद्ध सर्वेश्वर शिरोमणि, षोड़शी के सम्बन्ध में, अपनी राय प्रकट करके उसी के उद्देश्य से बोले—आज हैमवती अपने पुत्र के कल्याण

के लिए जो मनौती की पूजा करा रही हैं, उसमें तुम्हारा कुछ अधिकार नहीं रहेगा। उन्होंने अपनी यह सम्मति हम लोगों को जताई हैं। उनको आशङ्का है कि तुम्हारे द्वारा उनका कार्य सिद्ध न होगा।

षोड़शी का मुँह पीला पड़ गया था, परन्तु उसके स्वर में जड़ता नहीं थी। उसने कहा—बहुत अच्छा, वे वैसा ही करें जिसमें उनका काम सिद्ध हो जाय।

उसके कण्ठस्वर की स्पष्टता से सर्वेश्वर शिरोमणि अपने गले में भी ज़ोर पाकर बोले—इतना ही नहीं। गाँव के मुखियों ने निश्चय कर लिया है कि देवी का काम अब तुमसे नहीं चलेगा। कोई है? ज़रा तारादास पण्डित को बुला दे।

एक आदमी उसे बुलाने गया। षोड़शी के मुख में जो जवाब आया था वह अपने पिता के नाम से वहीं रुक गया। मुँह उठाकर एकाएक उसने पूछा—"क्यों नहीं चलेगा?" अब वह ख़ुद ही चौंक उठी। भीड़ में से किसी ने कहा—वह तुम अपने बाप के मुँह से ही सुन लेना।

षोड़शी ने इसका कुछ उत्तर नहीं दिया। देखा कि उसके पिता एक नव-दस वर्ष की लड़की को साथ लिये चले आ रहे हैं; उनके पीछे एक अधिक उम्र की स्त्री साथ-साथ आ रही है। इनमें से किसी को षोड़शी ने पहले कभी देखा नहीं था, तो भी समझ लिया कि यही फूफी हैं और यह लड़की ही उन अनजान फूफी की बेटी है।

भीतर-भीतर सभी समझते थे कि यह सब राय बाबू की ही कृपा है। षोड़शी को भी यह अज्ञात नहीं था। मौन बैठे हुए राय बाबू की दृष्टि से उत्साह पाकर भी तारादास पहले कुछ कह नहीं सका। इसके बाद रुकती आवाज़ से उसने जो कुछ कहा, उसका अधिकांश स्पष्ट नहीं हुआ। इतना ही समझ में आया कि ज़िले के मजिस्ट्रेट साहब बहुत क्रुद्ध हुए हैं और उसे भैरवी के पद से हटाये बिना अच्छा नहीं होगा।

यही यथेष्ट है। सभा में शोर-ग़ुल होने लगा। बहुतों ने राय दी कि इतने बड़े मामले में किसी को कुछ आपत्ति नहीं हो सकती। जो लोग चुप थे उन्होंने भी इसी सत्य को मान लिया। क्योंकि आपत्ति क्यों नहीं हो सकती, ऐसा प्रश्न करने का साहस किसी को नहीं था। हुआ भी वैसा ही। कोलाहल बन्द होते ही शिरोमणि महाशय इसी फैसले को और ज़रा साफ़ करके ज़ाहिर करना चाहते थे कि इतने में एक मृदु कण्ठस्वर सुनाई दिया—बाबूजी?

सब लोग मुँह उठा-उठाकर देखने लगे। राय बाबू ने भी पहले इधर-उधर देखकर अन्त में अपनी कन्या का स्वर पहचान लिया और सस्नेह स्वर से आवाज़ दी—क्यों बेटी?

हैम ने ज़रा मुँह आगे बढ़ाकर पूछा—अच्छा बाबूजी, यह कैसे मालूम हुआ कि साहब नाराज़ हैं?

कन्या की बात सुनकर बड़े बाबू पहले तो अकचकाये, फिर बोले—"मालूम क्यों नहीं होगा? अच्छी तरह से

मालूम हो गया है बेटी।'' इतना कहकर वे तारादास की ओर ताकने लगे।

हैम ने पिता की दृष्टि का अनुसरण कर कहा—परसों से हो सब सुन रही हूँ बाबूजी! इस पर भी क्या इन्हीं की बात को सत्य मानना पड़ेगा?

राय महाशय को इसका ठीक उत्तर नहीं सूझा, उन्होंने धीरे से कहा—क्यों नहीं?

तारादास के सामने की लड़की को दिखाकर हैम बोली—इसे जब ढूँढ़कर हाज़िर किया गया है तब क्या झूठ बोलना इतना कठिन काम है? सिवा इसके झूठ-सच की जाँच भी तो होनी चाहिए। इस तरह एक तरफ़ का कहना सुनकर राय तो नहीं न दी जा सकती?

बात सुनकर सब लोग अकचका गये। यहाँ तक कि षोड़शी भी अचम्भे में आकर हैम की ओर देखने लगी। सर्वेश्वर शिरोमणि ने इसका उत्तर दिया। वे हँसकर बोले—''बेटी वकील की घरनी है न, जिरह करना शुरू किया है। अच्छा, मैं देता हूँ इसका उत्तर।'' अब वे हैम की ओर देखते हुए बोले—यह देवता का मन्दिर—पीठ-स्थान है। यह तो मानती हो?

हैम ने सिर हिलाकर कहा—मानती हूँ।

''यदि ऐसा ही है तो क्या तारादास, ब्राह्मण होकर, इस देवमन्दिर में झूठ बोलते हैं पगली?'' यह कहकर शिरोमणि ठठाकर हँसने लगे।

उनकी हँसी की लहर कुछ कम होने पर हैम ने कहा—आप भी तो वैसे ही ब्राह्मण हैं ताऊजी। आपने भी तो इस देव-मन्दिर में खड़े होकर मिथ्या की वृष्टि कर दी! 'मैंने कहा है कि इनसे पूजा कराने से मेरा कार्य सिद्ध नहीं होगा' इसमें रत्ती भर भी तो सत्य नहीं है।

शिरोमणि के होश उड़ गये। राय महाशय भीतर ही भीतर जल-भुनकर रूखे स्वर से बोले—किसने तुमसे कहा है हैम, कि यह सच नहीं है?

हैम ने तनिक हँसकर कहा—"मैं कहती हूँ बाबूजी, यह सच नहीं है। क्योंकि मैंने कभी ऐसी बात न तो मुँह से निकाली है, और न मन में सोची है। मैं उन्हीं से पूजा कराऊँगी, इससे मेरे लड़के का मङ्गल हो चाहे अमङ्गल।" षोड़शी की ओर देखकर बोली—"आपने शायद मुझे नहीं पहचाना; परन्तु मुझे आपकी याद वैसी ही है। चलिए मन्दिर में, मुहूर्त्त टला जा रहा है।" अब वह क़दम आगे बढ़ाती हुई शायद उसी की ओर जा रही थीं। परन्तु अपनी लड़की के किये अपमान के अत्यन्त कठोर आघात के कारण पिता से धीरज धरते नहीं बना। वे एकाएक खड़े होकर तीव्र स्वर से बोल उठे—कभी नहीं। मैं जीते जी उसे मन्दिर में घुसने न दूँगा। तारादास, कहो तो उसकी माँ की कहानी! ज़रा सुन तो लें सब लोग। सोचा था कि उस बात के उठाने की ज़रूरत न होगी, सहज में ही काम हो जायगा।

परन्तु शिरोमणि उसी दम खड़े होकर बोले—नहीं, तारादास को रहने दीजिए। उसकी बात पर शायद आपकी लड़की को विश्वास नहीं होगा राय महाशय! वही स्वयं कहे! चण्डी की ओर मुँह करके वही अपनी माँ की कहानी कह जाय! क्या राय है आपकी चौधरी साहब? तुम क्या कहते हो जोगेन भट्टाचार्य? क्यों? वही खुद कहे।

गाँव के इन दोनों दिक्पालों के इस निर्मम अभियोग से सब लोग सन्नाटे में आ गये। षोड़शी के पीले होंठ कुछ कहने की चेष्टा से बार-बार काँपने लगे। दूसरे ही क्षण में शायद वह कुछ कह भी डालती; परन्तु हैम तेज़ी से उसके सामने आ गई और उसका हाथ पकड़कर शान्त दृढ़ स्वर से बोली—"रहने दीजिए, आप कुछ भी न कहिए।" फिर पिता के मुँह की ओर घूमकर कहा—"आप लोग इनका मामला तय करना चाहें तो स्वयं ही कर लें, परन्तु इनकी माँ की बात इन्हीं के मुँह से क़बूल करा लें, इतना बड़ा अन्याय मैं कभी न होने दूँगी।" "ये लोग जो कर सकें, करें। चलिए आप मेरे साथ मन्दिर के भीतर।" —यह कहकर हैम, किसी तरफ़ ख़याल न करके, षोड़शी को मानो उसकी अनिच्छा से ही सामने की ओर ढकेल ले चली।

८

मन्दिर के भीतर, एक तरफ़, खड़ी होकर षोड़शी ने कहा—नहीं बहिन, मैं पूजा न करूँगी।

"क्यों ?" कहकर हैम ने विस्मय के साथ देखा कि भैरवी का चेहरा उदास है, उसमें किसी प्रकार के आनन्द या उत्साह का लेश भी नहीं है। हैम के प्रश्न का उत्तर उसने सोच-विचारकर ही दिया। कहा—"इसका कारण बतलाना होगा तो तुम्हीं को बतलाऊँगी, परन्तु आज नहीं। इसके सिवा मैं रोज़ पूजा करती भी नहीं; जो नित्य पूजा करते हैं, वही करें; मैं यहाँ खड़ी-खड़ी तुम्हारे बेटे को आशीर्वाद देती हूँ, वह दीर्घजीवी होकर नीरोग हो, और आदमी बने।" अपनी सन्तान के प्रति भैरवी के इस हार्दिक आशीर्वाद से भी माँ के चित्त से असन्तोष नहीं हटा। वह मुँह ताकती हुई बड़ी नरमी से बोली—"परन्तु आज के दिन की बात ही अलग है। अगर आप अपने हाथ से पूजा नहीं करेंगी तो मुझे उन लोगों के सामने नीचा देखना पड़ेगा।" यह कहकर हैम खुले द्वार से बाहर की चञ्चल जनता की ओर देखने लगी। षोडशी ने भी उसी की दृष्टि का अनुसरण कर बाहर नज़र दौड़ाई। देखा कि सब लोग एकटक इधर ही देख रहे हैं। उनके चेहरों पर तीव्र कलह का चिह्न स्पष्ट झलक रहा है—मानो अधीर सैन्य का दल अपने सेनापति की आज्ञा न पाकर बड़ी कठिनाई से युद्ध के वेग को रोक रहा है। परन्तु राय महाशय ने कोई आज्ञा नहीं दी। वे बड़े होशियार आदमी हैं। वे उसी दम समझ गये कि इस हालत में धनी बेटी-जमाई से विरोध नहीं किया जा सकता। क्षण भर में ही

उनकी लाल आँखें नीची हो आईं। किसी से कुछ कहे-सुने बिना वे धीरे-धीरे मन्दिर के आँगन से उठ गये। दो-चार अनुगत आदमियों के सिवा और कोई उनके साथ नहीं गया। वृद्ध शिरोमणि भी बैठे रहे। और लोग यह देखने के लिए प्रतीक्षा करने लगे कि देखें इस मामले की समाप्ति कहाँ और कैसे होती है।

हैम ने विनती के साथ कहा—माता भैरवी के आशीर्वाद को हम माता-पुत्र दोनों सिर आँखों पर लेते हैं; परन्तु उस आशीर्वाद को मैं आपसे ही पक्का करा लेना चाहती हूँ। बहुत अच्छा; मैं बाट जोहूँगी। आज पूजा बन्द कराये देती हूँ। जिस दिन आपकी आज्ञा होगी उसी दिन फिर ऐसी ही तैयारी कर ली जायगी।

षोड़शी ने सिर हिलाकर कहा—बहिन, मैं यह बात आज तुम्हें बतला नहीं सकती कि ऐसा मौक़ा फिर कभी आवेगा कि नहीं।

हैम ने विस्मय के साथ पूछा—तो क्या अब आप चण्डी माता की भैरवी नहीं रहेंगी?

षोड़शी ने कहा—आज भी तो यही बात है।

"तब?" कहकर हैम ने देखा कि शिरोमणि महाशय द्वार का चौखट पकड़े खड़े हैं। आँखें मिलते ही उन्होंने दम्भ के साथ आगे बढ़कर कहा—तुम्हारे पिता और मैं दोनों यही बात तो अब तक गला फाड़कर कह रहे थे। बहुत

अच्छा, हम विलम्ब की परवा न करेंगे। कल हो, परसों हो, चाहे दस दिन बाद हो, वे पूजा करें! दें इसका उत्तर!

हैम षोड़शी का मुँह ताकने लगी, परन्तु उसने कुछ उत्तर नहीं दिया।

शिरोमणि ने भैरवी के म्लान मुख को वक्र कटाक्ष से देखकर मुस्कुराते हुए कहा—बेटी हैम, यह तो मामूली प्रश्न नहीं है! यह पीठस्थान है, देवता जाग्रत हैं। देवी की भैरवी के सिवा मामूली स्त्रियों को देवता को छूने का साहस नहीं होगा! इसके लिए हृदय का बल चाहिए। हृदय का बल हो तो रहें न यही माँ की भैरवी—हमें कोई आपत्ति नहीं। परन्तु हमें अच्छी तरह मालूम है कि यह काम इनकी सामर्थ्य के बाहर का है।

यह इशारा इतना सुस्पष्ट था कि लज्जा के मारे हैम का भी सिर नीचा हो गया। स्वयं षोड़शी भी थोड़ी देर तक बेसुध की तरह कुछ न बोली। फिर एकाएक अपने को मानो धक्का मारकर उसने सचेत कर लिया। शिरोमणि को तो उसने कुछ उत्तर नहीं दिया, परन्तु वृद्ध पुजारी को उसने हुकूमत के स्वर से कहा—"पुजारीजी, आप आगा-पीछा क्यों करते हैं? मैं आज्ञा देती हूँ कि आप रीति के अनुसार देवी की पूजा समाप्त कर अपना हिस्सा ले लीजिएगा, बाकी हिस्सा भाण्डार में बन्द करके चाभी मेरे पास भेज दीजिएगा।" हैम की ओर देखकर कहा—"बहुत तैयारी की गई है, इसे बर्बाद

करना ठीक नहीं बहिन। मैं आशीर्वाद दिये जाती हूँ, इसी से तुम्हारे पुत्र का सब तरह भला होगा। मैंने अब तक पूजा-पाठ नहीं किया है, मैं जाती हूँ। फ़ुरसत मिलेगी तो मैं फिर आ जाऊँगी।" यह कहते हुए वह वाद-विवाद किये बिना ही वहाँ से चली गई। कुछ देर के लिए किसी के मुँह से बात नहीं निकली; परन्तु दूसरे ही क्षण अपमान और अवज्ञा से बूढ़े शिरोमणि अङ्कुशाहत पशु की तरह पागल हो उठे। उनका वयसोचित मर्य्यादा-ज्ञान और नक़ली गाम्भीर्य कहीं बह गया; अनुपस्थित षोड़शी के प्रति एक अभद्र इङ्गित करके वे चिल्ला उठे—"अबकी मन्दिर में घुसेगी तो गरदनिया देकर निकाल दूँगा! कहाँ की भ्रष्ट औरत! सोचती है कि गाँव में आदमी नहीं हैं! याद रख, अभी जनार्दन राय जीते हैं, अभी तक सर्वेश्वर शिरोमणि नहीं मरा है!" इन अभियोगों और आक्षेपों का प्रतिवाद करने के लिए वहाँ कोई नहीं था; बल्कि स्त्रियों में से उन्हीं के पक्ष की किसी बड़ी उम्र की स्त्री ने झुँझलाकर कहा—"झाड़ू मारकर निकाल दो पण्डितजी इसे। बड़ा घमण्ड हुआ है, बड़ा घमण्ड! ज़मींदार के बग़ीचेवाले मकान में समूची रात और एक दिन बिताकर कहती है कि राजा बाबू बीमार हो गये थे! अगर बीमार हो ही गये थे तो तेरा क्या?" ये बातें कहते-कहते एकाएक देवी के ऊपर दृष्टि पड़ते ही उसकी ईर्ष्या-पीड़ित उच्छृङ्खल रसना क्षण भर में शान्त और संयत हो गई। उसी दम अपने कानों को दोनों हाथों से

झुककर बड़ी नरमी के साथ बोली—"माँ की भैरवी हैं। निन्दा करने से महापातक होगा। मैं निन्दा नहीं करती। परन्तु इतनी ज़्यादती अच्छी नहीं है। साहब अच्छे आदमी हैं इसी से छोड़ दिया, नहीं तो झूठी शिकायत के इलज़ाम में सगे बाप के हाथ में हथकड़ी पड़ जाती !" परन्तु इसके साथ और किसी ने सहानुभूति नहीं दिखाई ! षोड़शी कुछ भी करें, हैं तो वे चण्डी माता की भैरवी, इस सत्य का उल्लेख न किया जाता तो शायद इस ईर्ष्यामूलक निन्दा का प्रवाह एकाएक न रुकता, परन्तु शिरोमणि का क्रोध शान्त नहीं हुआ। वे फिर कुछ कहना चाहते थे किन्तु हैमवती ने धीरे-धीरे अपना उतरा हुआ चेहरा उठाकर कहा—शिरोमणि ताऊजी, वे बातें अब रहने दीजिए। कोई जल्दी नहीं है, अब मेरे बेटे की मानता की पूजा तो हो जाय।

'हाँ, हाँ, होने दो' कहते हुए शिरोमणि अपने क्रोध और चिढ़ को उस समय के लिए दबाकर चले गये और हैम एक तरफ़ बेहोश की तरह चुपचाप बैठ गई। इन अप्रिय और लज्जाजनक बातों की चर्चा इस तरह हैम ने बन्द कर दी सही, और पुजारी ने भी आडम्बर के साथ पूजा शुरू कर दी, परन्तु हैम के चित्त में चैन नहीं था। अपने पिता और अन्य आदमियों के इस तरह के बर्ताव से और सबसे अधिक इस बूढ़े ब्राह्मण की नीचता से उसको बड़ी घृणा हुई। इसी प्रकार षोड़शी के इस तरह के अनोखे आचरण से भी उसका चित्त

ग्लानि और संशय से भर गया। पुजारी का काम बे-रोकटोक कल की तरह चलने लगा। देवता की पूजा, बलि, होम आदि जो कुछ करना था सभी धीरे-धीरे समाप्त हो गया। उसके पुत्र के कल्याण के शुभकर्म में कुछ भी विघ्न नहीं हुआ; परन्तु षोड़शी लौटकर नहीं आई।

नौकरनी की गोद में लड़के को देकर हैम जब घर लौटी तब दोपहरी ढल गई थी। आकर उसने देखा कि उसके पिता या शिरोमणि ने अब तक बैठकर वृथा समय नहीं गँवाया है; बाहर की बैठक में बड़ा भारी कोलाहल मचा हुआ है। कोलाहल की प्रबलता से मालूम हुआ कि एक ही साथ अनेक वक्ता अपना-अपना मन्तव्य प्रकट करने का प्रयास कर रहे हैं। उसकी इच्छा किसी तरह छिपकर घर में घुसने की थी, परन्तु वह पिता की दृष्टि से नहीं बच सकी। उन्होंने हाथ हिला-कर पुकारा—हैम, ज़रा इधर तो आ बेटी।

क्लान्त देह और मलिन मुख लिये धीरे-धीरे सामने आकर उसने देखा कि वहाँ एक ही मनुष्य चुपचाप बैठे हुए हैं, जिन्हें श्रोता कहा जा सकता है—वह हैं उसी के पति मिस्टर एन० बसु, बैरिस्टर। वही सबकी वक्तृता के लक्ष्य हैं। दिन के डेढ़ बजे की ट्रेन से उनके आने की बात थी सही, परन्तु निश्चय कुछ नहीं था। स्वामी को सामने देखकर हैम ने सिर का घूँघट ज़रा सा और खींच लिया। वह दरवाज़े की ओट में खड़ी हो गई। उसके पिता ने सस्नेह आक्षेप के स्वर

से कहा—उस समय तो तुम बिना समझे-बूझे ही हमारी बातों से नाराज़ हो गई थीं बेटी! परन्तु अब तो अपने ही कानों सब सुन लिया न? भेद समझने में अब तो तुम्हें कुछ बाक़ी नहीं न रह गया? अब तुम्हीं कहो, ऐसी औरत को क्या देवता के स्थान में रक्खा जा सकता है? यह खेल नहीं है।

हैम ने धीरे से जवाब दिया—आप लोग जो अच्छा समझें, करें।

उसके पिता ने हँसकर कहा—"करूँगा क्यों नहीं बेटी! करूँगा क्यों नहीं। करना हो तो हम लोग चाहते थे। अब अच्छा हुआ कि निर्म्मल आ गये। अगर कोई मुक़द्दमा ही लड़ना पड़ा तो मदद मिलेगी!" उनके मन में शायद उस समय दूसरी तरफ़ ज़मींदार की मदद की आशङ्का हुई। परन्तु शिरोमणि ने एकाएक गरम होकर चिल्लाकर कहा—"गरद-निया देकर निकाल दूँगा, इसमें नालिश की क्या ज़रूरत? आपके दामाद जब स्वयं उपस्थित हैं तब वही तसफ़िया करें। वही हमारे जज, वही हमारे मैजिस्टर हैं। हम दूसरे जज-मैजिस्टर को नहीं मानते। तुम क्या कहते हो जोगेन बाबू, तुम्हारी क्या राय है मित्तिर भइया?" अब वे कई आदमियों की ओर दृष्टि डालकर एकाएक ख़ुद ही हँस पड़े। यहाँ जोगेन बाबू या मित्तिर भइया की सम्मति लेने का तात्पर्य ठीक समझ में नहीं आया; परन्तु इतना अवश्य मालूम हुआ कि धनी दानशील जामाता विचार करें या न करें, भविष्यत् में

उनके अनुग्रह को प्राप्त करने का रास्ता उन्होंने अपने लिए बहुत सुगम कर लिया।

ये दामाद बाबू पोशाक-पहनावे से, नख से शिख तक, पूरे अँगरेज़ थे। उन्होंने हँसकर जो जवाब दिया वह भी पूरे अँगरेज़ी ढङ्ग से। कहा—इन महन्त-महन्ताइनों का रहस्य सभी जानते हैं। ये जैसे असाधु हैं वैसे ही चरित्र-हीन भी। दुनिया में इनके लिए अकरणीय काम ही नहीं है। किसी कारण से भी इन्हें क्षमा न करना चाहिए। परन्तु पहले यह जान लेना आवश्यक है कि आपकी इस भैरवी ने ऐसा कुछ अपराध किया है या नहीं।

"निर्म्मल बाबू, जानने में बाक़ी कुछ भी नहीं है। कहो बेटी, अब तक क्या तुम्हें कुछ सन्देह है? इसके सिवा उसकी माँ—यही तो एक बड़ी भारी बात है।" यह कहकर शिरोमणि ने हैम की ओर ज़रा कटाक्ष किया। हैम नीचे की ओर मुँह झुकाये चुपचाप खड़ी रही। उसके सलज्ज मौन भाव से सबको मालूम हुआ कि वह भैरवी के विरुद्ध अभियोग करने में सकुचा रही है और उसके पक्ष में भी कहने को उसके पास कुछ नहीं है।

कन्या को पुकारकर जनार्दन राय ने कहा—दिन भर के उपवास से तुम्हारा चेहरा सूख गया है बेटी। जाओ, तुम भीतर जाओ। भैरवी को बुलाने आदमी भेजा गया है। उसके आने पर तुम्हें ख़बर दूँगा।

हैम चली जा रही थी कि इतने में जो आदमी बुलाने गया था, उसने आकर जो कुछ कहा उसका सारांश यह है कि भैरवी ने अपने असामी दिगम्बर और विपिन से ताले तुड़वाकर सब घरों पर दखल कर लिया है। यही नहीं, राय महाशय के हुक्म की परवा न करके वह यहाँ आने को भी राज़ी नहीं हुई। अन्त में फ़क़ीर साहब के अनुरोध से राज़ी हुई है। शायद दस-पन्द्रह मिनिट के अन्दर आ जाय।

शायद आ जाय! इतना घमण्ड! मानो जलती आग में घी की आहुति पड़ी। एक मामूली स्त्री के इस प्रकार के प्रचण्ड दुःसाहस और स्पर्द्धा से वहाँ पर उपस्थित भलेमानसों के मुँह से जिन शब्दों और वाक्यों का प्रवाह निकलने लगा उसका पूरा हाल न बताकर एक बात बता देना आवश्यक है। इस भ्रष्टा स्त्री को इसी दम गाँव से निकाल बाहर करने की ही नहीं, बल्कि इसे ताले तोड़ने और अनधिकार-प्रवेश करने के लिए पुलीस में गिरफ़्तार करवा देने की भी आवश्यकता सब लोगों ने प्रकट की। एक जमाई बाबू ही इसमें शामिल नहीं हुए। शायद वे अपने साहबी ठाट और बैरिस्टरी की मर्यादा की रक्षा के लिए ही चुपचाप बैठे रहे हों। थोड़ी देर के बाद जब कोलाहल कुछ शान्त हुआ तब जमाई बाबू ने पूछा—ये फ़क़ीर साहब कौन हैं? ये एकाएक कहाँ से आ गये?

इनके सम्बन्ध में लोग तरह-तरह के मन्तव्य प्रकट करने लगे। शिरोमणि ने सबको रोककर कहा—अच्छे हैं ख़ाक!

कहीं मुसलमान सिद्ध पुरुष हुआ है ! वह कुछ नहीं है । हाँ, यह अवश्य है कि वे किसी की बुराई नहीं करते । बारुई नदी के उस पार एक बड़ के नीचे, बहुत दिनों से, रहते हैं। बीच-बीच में कहीं चले भी जाते हैं, फिर लौट आते हैं । दो साल तक नहीं थे, सुना है कि उन्हें इस बार यहाँ आये पाँच-छः दिन हो गये । शायद उन्हों की राय से उसने ताले तोड़े हैं । कुछ कहा नहीं जा सकता ! हज़ार हो, है तो म्लेच्छ ही ।

जमाई बाबू ने पूछा—परन्तु आज कैसे आ गये ?

तारादास अब तक चुप बैठा था । अब वह बोला—उस पार के उस बरगद के पासवाली ज़मीन चण्डी माता की है । इसी सिलसिले से जान-पहचान है । फ़क़ीर साहब षोड़शी को बहुत प्यार करते हैं । वे जब वहाँ रहते हैं तब षोड़शी वहाँ जाया करती है । उनसे कुछ पढ़ती भी है ।

जमाई बाबू मुस्कुराते हुए बोले—प्यार करते हैं ! पढ़ाते-लिखाते भी हैं ! उम्र कितनी है इन फ़क़ीर साहब की ?

तारादास ने लज्जित होकर कहा—बुड्ढे आदमी हैं । उम्र साठ-बासठ से कम न होगी । षोड़शी को माता कहते हैं । एक बार षोड़शी इतनी सख़्त बीमार हो गई थी कि मरने को हो गई थी । उन्होंने उसे आराम किया था ।

जमाई बाबू ने कहा—"अच्छा, ऐसा है ! बात यह है कि उधर साधु-फ़क़ीर हैं, इधर डाकिनी-योगिनी हैं । इन भैरव-भैरवियों के दल को मैं—" वे अपनी बात पूरी नहीं कर सके ।

अचानक अपनी स्त्री के मुँह के एक अंश पर नज़र पड़ते ही वे सँभल गये। और किसी ने कुछ नहीं कहा। परन्तु शिरोमणि चुप रहनेवाले जीव नहीं हैं। वे उस अपराध का बाक़ी हिस्सा पूरा करने के लिए चिल्ला उठे—"बहुत ठीक बाबूजी, बहुत ठीक! ये भण्ड साधु और सधुआइनें जैसी दुष्ट हैं वैसी ही भ्रष्ट हैं।" अब दाहिने और बायें नज़र घुमाकर उन्होंने शायद जोगेन बाबू और मित्तिर भइया के कम से कम सिर हिलाने की भी आशा की। परन्तु अब की वे भी चुप रहे और द्वार की ओट में खड़ी हैमवती का मलिन मुख क्षण भर के लिए लाल हो उठा।

इसी समय भैरवी को साथ लिये वही मुसलमान फ़क़ीर, धीमी चाल से, आँगन के भीतर आ गये। किसी को संशय नहीं रहा कि शिरोमणि का उच्च स्वर उनके कानों तक पहुँचा है।

देखते देखते जब दोनों सामने आकर खड़े हो गये तब किसी के मुँह से आवाज़ नहीं निकली। किसी ने स्वागत नहीं किया। बैठने को कहने की मौखिक सभ्यता भी किसी में न थी। परन्तु भीतर-भीतर सभी चञ्चल हो उठे। शिरोमणि को भी मालूम हो गया कि कहीं कुछ त्रुटि रह गई है। परन्तु सब लोग वैसे ही चुपचाप बैठे रहे। बसु साहब के लिए ये दोनों ही अपरिचित थे। दो-तीन मिनिट तक वे इन दोनों को नख से शिख तक तीक्ष्ण दृष्टि से बार-बार देखने लगे। फ़क़ीर

के सिर के बाल, दाढ़ी, मूँछ सब दूध की तरह सफ़ेद हैं। वे मुसलमान फ़क़ीर की मामूली पोशाक पहने हुए हैं सही किन्तु उनकी सबल सुदीर्घ देह के ऊपर यह साधारण पोशाक साधारण की अपेक्षा कहीं अच्छी मालूम होती है; यह नहीं जान पड़ता कि इनके कपड़े बिलकुल मामूली हैं। उनकी देह का रङ्ग पानी में भींगकर और धूप से जलकर इस ढङ्ग का बन गया है जिससे यह अनुमान करना भी कठिन है कि इससे पहले असली रङ्ग क्या था। उनकी आँखों पर और चेहरे पर ज़रा सी उत्कण्ठित कौतूहल की छाया है सही, परन्तु और ज़रा ध्यान से देखने पर मालूम होता है कि इसके पीछे जो चित्त विराजमान है वह जैसा शान्त है वैसा ही उद्वेग-रहित और निडर है। षोड़शी इनके पीछे आकर खड़ी हो गई। उसकी गेरुआ रङ्ग की धोती, उसके सुन्दर सुगठित खुले सिर के रूखे केश, उसकी उपवास-कठिन यौवन-सन्नद्ध देह की सब प्रकार के बाहुल्य से वर्जित विचित्र सुषमा, सबके ऊपर उसके नत-नेत्रों की अपरिदृष्ट वेदना का अनुक्त इतिहास—इन सब ने एक साथ मिलकर बैरिस्टर साहब को क्षण भर के लिए विह्वल कर डाला।

फ़क़ीर की एक बात के धक्के से उनका यह विह्वल भाव छूट गया। साथ ही साथ अपनी दुर्बलता से लज्जित होकर उनके प्रश्न का उत्तर देने में वे अकारण कठोर हो उठे। फ़क़ीर ने अपनी क़ौम के रिवाज के मुताबिक़ सलाम करके पूछा—

"बाबू साहब, क्या आपने ही बुला भेजा था?" बाबू साहब ने उत्तर दिया—तुम्हें नहीं बुलाया, तुम जा सकते हो।

फ़क़ीर ख़फ़ा नहीं हुए। तनिक मुस्कुराते हुए वे षोड़शी को दिखाकर शान्त स्वर से बोले—लेकिन मुजरिम को मैंने ही हाज़िर किया है बाबू साहब। ये तो आना ही नहीं चाहती थीं। क़ुसूर सिर्फ़ इन्हीं का नहीं माना जा सकता, क्योंकि सब लोगों के शोर-गुल के बीच जो न्याय किया जाता है, उसमें न्याय (विचार) की अपेक्षा अविचार ही अधिक होता है। और वह भी तो आज सबेरे एक दफ़ा हो चुका था। परन्तु आपका नाम सुनकर मैंने कहा कि चलो बेटी, हम चलें। वे क़ानूनदाँ हैं, फिर बाहरी आदमी हैं। मुमकिन है, वे वाजिब फ़ैसला ही कर दें।

बैरिस्टर साहब को मालूम हो गया कि इन फ़क़ीर के सम्बन्ध में उन्होंने ठीक ही धारणा की है। ये कुछ भी क्यों न हों, मामूली गँवार भिखमङ्गे नहीं हैं। अतः जवाब में अब उन्हें कुछ भलमनसाहत दिखानी पड़ी। कहा—ये लोग तो ताला तोड़ने और अनधिकार-प्रवेश के लिए इन्हें पुलीस के सिपुर्द कराना चाहते थे। सुना है कि आपकी ही सलाह से ताले तोड़े गये हैं।

फ़क़ीर ने हँसकर कहा—बाप रे बाप! तो क़ुसूरवार वही अकेली नहीं हैं, उनके साथ एक मददगार भी है! परन्तु बाबू साहब, ताले तोड़ने की राय ही मैंने दी है, क़ानून तोड़ने

की सलाह नहीं दी। वह मकान देवोत्तर सम्पत्ति है और भैरवी ही हैं उसकी मालकिन। तारादास अगर नाहक़ ताला बन्द करने न जाते तो ऐसे अच्छे-अच्छे ताले इस तरह तोड़े न जाते। तारादास की ओर देखकर कहा—तारादास, ऐसी बुद्धि तुम्हें किसने दी थी बेटा? ख़ैर, किसी ने दी हो, अच्छी सलाह नहीं दी।

तारादास उत्तर नहीं दे सका। किसी दूसरे आदमी को भी जब कोई बात नहीं सूझी और सब लोग चुप ही रहे तब शिरोमणि ने आडम्बर के साथ खड़े होकर कहा—फ़क़ीर साहब, उसे भैरवी किसने बनाया था? इसी तारादास ने। अब वह अगर उसे भैरवी न रखना चाहे तो उसकी इच्छा। यह मेरी राय है।

फ़क़ीर साहब ने कहा—पण्डितजी, राय आपकी है सही और इच्छा भी तारादास की ही है, लेकिन सम्पत्ति तो दूसरे की है। वह दूसरा व्यक्ति इन दोनों में से किसी में भी राज़ी नहीं है। कहिए, अब आप क्या करेंगे?

उनके जवाब और कहने के ढङ्ग से बैरिस्टर साहब हँस पड़े। कहने लगे—"इन लोगों का कहना यह है कि वर्तमान भैरवी ने जो अपराध किया है उससे ये देवी की सेविका नहीं रह सकतीं। इसका कुछ जवाब है इनके पास?" अब उन्होंने षोड़शी के आनत मुख को एक बार तिरछी नज़र से देख लिया।

फ़कीर ने कहा—इन्हें अभियुक्त के रूप में आप लोगों के सामने मैंने खड़ा कर दिया है, फिर अपने को बेकुसूर साबित करने का बोझ भी इन्हीं पर लादने का ज़ुल्म मैं कर नहीं सकूँगा बाबू साहब।

बैरिस्टर साहब मन ही मन लज्जित होकर चुप हो गये। परन्तु शिरोमणि ने तीव्र स्वर से पूछा—ज़मींदार जीवानन्द चौधरी ने भैरवी को नौकरों से पकड़वा मँगाकर रात भर रोक रक्खा था, यह बात हम लोग अच्छी तरह जानते हैं, तब क्यों उसने मजिस्टर साहब के सामने कल सबेरे झूठ कहा कि वह अपनी मर्ज़ी से गई थी और ज़मींदार के बीमार होने से रात भर अपनी ही इच्छा से वहाँ रही थी? वह यदि निष्पाप है तो दे इसका जवाब!

फ़कीर ने कहा—ज़मींदार के अत्याचार से चिढ़कर वह क्रोध की झोंक में अपनी इच्छा से ही चली गई थी। यह बात तो झूठ नहीं है पण्डितजी, और ज़मींदार भी अचानक बहुत बीमार हो गये थे यह घटना भी सच ही है।

जनार्दन राय अब तक चुपचाप सबकी बातें सुन रहे थे। उनसे और सहा नहीं गया। वे कह उठे—अगर यही सच है फ़कीर साहब, तो अपने पिता के विरुद्ध खड़े होकर अत्याचारी को बचाने की क्या ज़रूरत थी? वह बीमार पड़े तो इसका क्या? बीमारी में सेवा करने के लिए बीजगाँव के ज़मींदार, पालकी भेजकर, इसे बुला तो नहीं न ले गये थे? असल बात

यह है कि इसे हम लोग अब नहीं रक्खेंगे। हमें भीतर का भेद मालूम हो गया है। इसके सिवा इसको अगर कुछ कहना है तो इसे ही कहने दीजिए। आप मुसलमान, परदेशी हैं, आपको तो हिन्दू धर्म के बीच में पड़कर पञ्च होने की ज़रूरत नहीं!

उनकी बात की तेज़ी और तीव्रता कुछ देर तक घर में गूँजने लगी। बैरिस्टर साहब को भी एक तरह की बेचैनी मालूम होने लगी। और मौन भैरवी की छाती के अन्दर से कोई उत्तर, निकल आने के लिए, बार-बार उच्छ्वसित हो रहा था। उसी के चिह्न को पल भर में षोड़शी के मुँह पर देखकर फ़क़ीर साहब थोड़ा हँसे। इसके बाद जनार्दन राय की ओर घूमकर वे हँसते हुए बोले—"राय बाबू, बहुत दिन की बात है, आपको शायद याद नहीं है। मैं उन दिनों मन्दिर के पीछे, उस पुराने नीम के पेड़ के नीचे, रहता था। षोड़शी तब छोटी सी लड़की थी, तभी से मैं उसे माई कहा करता था। मुसलमान होकर भी जो ग़लती एक बार मैंने कर डाली है उसके लिए आज मुझे माफ़ कीजिएगा। उसी माता की इतनी बड़ी विपत्ति के समय भी क्या मैं बिना आये रह सकता था? माता तो मामूली चीज़ नहीं है राय बाबू, नहीं तो आज सबेरे जब आप इन्हीं के मुँह से इनकी माता की लज्जा की बात कहलवाना चाहते थे तब अपनी इस बेटी की धमकी से आपको इतना घबराना नहीं पड़ता।" यह कहकर फ़क़ीर साहब ने द्वार से सटी खड़ी हैमवती की ओर इशारा किया।

राय महाशय को एकाएक कोई उत्तर नहीं सूझा। उन्होंने अन्त में कहा—ये सब वाहियात बातें हैं।

फ़क़ीर साहब ने वैसे ही हँसकर कहा—पका बीज भी पत्थर पर पड़ने से वाहियात हो जाता है—यह मैं अपनी इस उम्र में जानता था। मैं वाजिब बात ही कहता हूँ। मेरी माँ ने उस महापापी ज़मींदार को क्यों बचाया, यह मैं भी नहीं जानता—पूछने पर भी जवाब नहीं मिला। मुझे एतबार है कि कोई सबब ज़रूर था, लेकिन आप लोग उस सबब को बुरा समझते हैं। यहाँ मैं मातङ्गिनी भैरवी की नज़ीर दे सकता था, मगर एक की भलाई करने के लिए दूसरे की बुराई करना मेरे मज़हब में मना है। इसलिए मैं वह नज़ीर न दूँगा। मुझे आपसे बहुत कुछ कहना है राय बाबू। अगर यह झगड़ा सिर्फ़ तारादास के साथ ही होता तो मैं बीच में न पड़ता। उस बेचारे ने अपनी अक़्ल और ताक़त के मुताबिक़ अपना कर्तव्य किया है; लेकिन आप लोग—ख़ासकर आप—कमर कसकर क्यों खड़े हो गये! षोड़शी तो अकेली नहीं है, और भी बहुत सी लड़कियाँ हैं। गाँव की छाती पर बैठकर जब वह आदमी दिन-रात बहू-बेटियों की इज़्ज़त बिगाड़ रहा था तब कहाँ थे शिरोमणिजी और कहाँ थे जनार्दन राय? वह जब ग़रीबों का ख़ून चूसकर पाँच हज़ार रुपया वसूल कर ले गया तब उनकी छाती का कितना ख़ून आपने उनकी ज़मीन-जायदाद घर-द्वार रेहन रखकर भरा था? लेकिन

ज्यादा खोद-विनोद करने की अब क्या ज़रूरत ! यहाँ आपके बेटी-दामाद मौजूद हैं, उन लोगों के सामने मैं आपके महापाप का भण्डा नहीं फोड़ना चाहता।

इतना कहकर फ़क़ीर साहब चुप हो गये, परन्तु उनके इस उत्कट अभियोग के अन्तिम शब्द समाप्त हो जाने पर भी मानो घर में गूँजने लगे। किसी के मुँह से बात नहीं निकली, घर में सन्नाटा छा गया। केवल एक तीव्र कण्ठ की ध्वनि चारों ओर की दीवारों में धक्के खा-खाकर धिक्! धिक्! करने लगी।

हैम ने किसी की ओर नहीं देखा। वह चुपचाप नीचे की ओर मुँह किये वहाँ से खिसक गई। बैरिस्टर साहब वहीं, अपनी कुर्सी पर, कठपुतली की तरह चुपचाप बैठे रहे।

फ़क़ीर ने भैरवी को लक्ष्य कर कहा—"चलो बेटी, हम लोग जायँ।" अब वे उसके साथ वहाँ से चल दिये। आँगन के बाहर आकर देखा कि हैमवती फाटक के पास चुपचाप खड़ी है। उसकी आँखों में आँसू भर आये हैं। अपने वही आँसू-भरे नेत्र फ़क़ीर के मुँह पर स्थापित करके उसने कहा—बाबा, आप मेरे पति को माफ़ कीजिएगा।

फ़क़ीर ने विस्मित होकर कहा—क्यों बेटी ?

हैम ने इसका उत्तर न देकर पूछा—मैं उनको साथ लेकर आपके आश्रम में आऊँ तो आप मिलेंगे ?

अब फ़क़ीर साहब हँस पड़े; फिर स्निग्ध स्वर से बोले—क्यों नहीं मिलूँगा बेटी! तुम दोनों का नेवता है, फ़ुरसत पाते ही आना।

८

षोड़शी को अच्छी तरह मालूम था कि मन्दिर का मामला यहीं ख़तम नहीं हो गया; परन्तु विपत्ति ने उसे दुबारा जिधर से घेरा उस ओर से आक्रमण होने की उसे आशङ्का तक न थी। यहाँ रहने पर फ़क़ीर साहब ऐसे ही बीच-बीच में आया करते थे; परन्तु कल शाम को ही वह यहाँ से गये, बीच में एक ही रात बीती है, फिर आज सबेरे ही आकर हाज़िर हो जायँगे ऐसा नियम उनका कभी न था। षोड़शी अभी नहा आकर पूजा पाठ करने के लिए घर में जा रही थी कि एकाएक, असमय में, उन्हें देखकर चिन्तित हुई। तुरन्त नमस्कार कर एक आसन बिछा दिया और घबराकर पूछा—इतने सबेरे कैसे पधारे?

वे बैठकर ज़रा हँसने की चेष्टा करते हुए बोले—फ़क़ीर आदमी हूँ, दुनिया के सुख-दुःख की कुछ परवा नहीं है बेटी, तो भी कल रात को अच्छी तरह नींद नहीं आई। षोड़शी, देह धारण की ऐसी ही विडम्बना है। न मालूम यह मिट्टी के नीचे कब जायगी!

षोड़शी ने शरीर की बीमारी ही समझकर पूछा—तो क्या आपकी तबीयत कुछ ख़राब है?

फ़क़ीर ने सिर हिलाकर कहा—नहीं। तबीयत मेरी अच्छी ही है। कल शाम को ये लोग मेरे आश्रम में गये थे। साथ में जमाई बाबू साहब भी थे, एककौड़ी भी था। उसे मैं ब.खूबी जानता हूँ—उसने बहुत सी बातें बताईं। उनमें से दो-एक बातें तुमसे बिना पूछे मैं नहीं रह सका बेटी।

षोड़शी बोली—पूछिए।

फ़क़ीर ने कहा—देखो बेटी, मैं मुसलमान हूँ। तुम्हारे देवी-देवताओं के बारे में मुझे कोई आग्रह नहीं रहना चाहिए, है भी नहीं—परन्तु मैं तुम्हें माँ कहता हूँ; तो क्या तुमने कह दिया है कि अपने हाथ से फिर कभी चण्डी माता की पूजा न कर सकोगी?

षोड़शी ने गरदन हिलाकर जताया कि यह बात सत्य है।

फ़क़ीर ने कहा—"लेकिन अब तक तो तुम्हें यह रुकावट नहीं थी।" षोड़शी ने इसका कुछ उत्तर नहीं दिया। फिर उन्होंने कहा—जो लोग तुम्हें नहीं चाहते वे अगर तुम्हारे इस नये बर्ताव को बुरा समझें तो उसका तो कोई जवाब नहीं दिया जा सकता षोड़शी?

इसका भी कोई सदुत्तर देने की चेष्टा न कर षोड़शी चुपचाप खड़ी रही। तब फ़क़ीर का मुँह भी बहुत गम्भीर हो गया; वे कुछ देर तक चुप रहकर बोले—इसका सबब कहने लायक़ होता तो तुम मुझसे ज़रूर कहतीं। इसके सिवा एककौड़ी ने एक बात और भी कही है। उसने कहा कि

ज़मींदार साहब को बहुत उम्मेद थी कि तुम उनके साथ जाओगी। यहाँ तक कि एक दूसरी पालकी भी मँगा रक्खी थी और जाने के पहले तक उन्हें पूरा भरोसा था कि तुम लौट आओगी।

अबकी षोड़शी ने उत्तर दिया। कहा—उनकी उम्मेद या भरोसे के लिए भी क्या मैं ही ज़िम्मेवार हूँ?

फ़कीर ने तुरन्त सिर हिलाकर कहा—नहीं, कभी नहीं। परन्तु बात ऐसी है कि सुनने से भी बुरी मालूम होती है। अच्छा बेटी, जिस घटना से ये बुरी बातें पैदा हुई हैं उसका सबब क्या तुम मुझे भी नहीं बता सकती? उस आदमी को तुमने इस तरह क्यों बेदाग़ बचा दिया, इसकी तो कोई थाह ही मुझे नहीं लगती षोड़शी!

षोड़शी ने पहले सोचा कि इस प्रश्न का भी वह उत्तर न दे; परन्तु बुड्ढे आदमी के उद्विग्न मुख के स्नेह-करुण नेत्रों को देखकर उससे रहा नहीं गया। उसने कहा—फ़कीर साहब, क्या उस बीमार आदमी को जेल भेजना ही ठीक था?

फ़कीर साहब अकचकाये। शायद कुछ चिढ़े भी। कहने लगे—उसके निर्णय का भार तो तुम्हारे ऊपर नहीं है माँ, वह तो राजा के ज़िम्मे है। इसी लिए सरकारी जेल में भी अस्पताल है, बीमार मुजरिम का भी वहाँ इलाज कराया जाता है। लेकिन यही अगर किया हो तो कहना होगा कि तुमने बेजा किया है।

उनके मुख की ओर षोड़शी एकटक देखने लगी। फ़कीर ने कहा—जो होना था, हो गया; मगर आइन्दा यह कसर पूरी कर लेनी होगी।

उनके मुँह की ओर ताकती हुई षोड़शी बोली—इसका मतलब?

फ़कीर ने कहा—उस आदमी के ज़ुल्म और ज़्यादती की कोई हद नहीं है, यह तुम्हें मालूम है। उसको सज़ा होनी चाहिए।

अब की षोड़शी बहुत देर तक चुप रही। इसके बाद सिर हिलाकर धीरे-धीरे बोली—मैं सब जानती हूँ। उन्हें सज़ा दिलाना ही शायद आप लोगों को उचित है; परन्तु मुझे इस झमेले में डालने की ज़रूरत नहीं—उनके विरुद्ध मैं गवाही न दे सकूँगी।

फ़कीर ने पूछा—बात क्या है षोड़शी?

षोड़शी मुँह नीचे किये चुपचाप खड़ी रही। बहुत देर तक किसी के मुँह से कुछ बात नहीं निकली। नौकरनी धन्धा करने आ रही थी, दरवाज़े के पास उसे देखकर फ़कीर ने अपने को सँभालकर मृदु स्वर से कहा—तो मैं अब जाता हूँ।

षोड़शी ने ज़रा झुककर उन्हें नमस्कार किया। वे धीरे-धीरे वहाँ से चले गये।

आज दिन भर षोड़शी को फ़कीर साहब के प्रशान्त मुख की गम्भीर विषण्णता ही जब-तब नहीं याद आने लगी बल्कि जिस अनुच्चारित वाक्य को वे एकाएक पीकर चुपचाप चले

गये वह भी भिन्न-भिन्न रूपों में, भिन्न-भिन्न ढाँचों में, उसके कानों में गूँजने लगा। उसे स्पष्ट मालूम होने लगा कि इस साधु को मेरे प्रति जितनी श्रद्धा और स्नेह था उसे, मेरे विषय में ठीक-ठीक पता न मिलने पर, उनको आज बहुत कम करके ले जाना पड़ा। इस घाटे का परिमाण कितना अधिक है, इसे षोड़शी के सिवा और कोई नहीं जानता था। उस स्नेह के वापस मिलने का भी कोई रास्ता उसको नहीं सूझा। अपना बाल्य-इतिहास किसी से कहा नहीं जा सकता—यहाँ तक कि इस फ़कीर से भी नहीं। क्योंकि उससे जो पुरानी कहानियाँ प्रकट होंगी वे अपने लिए कितनी ही लज्जा की क्यों न हों, सह ली जा सकेंगी; किन्तु उसकी जो माता आज पर-लोक में है उसे भी इस धरती पर, इस सिलसिले में, खींच लाकर धूल में मिला देना होगा। इसका अन्त यहीं थोड़े हो जायगा। स्वामी का स्पर्श करना भैरवी के लिए मना है। मुद्दत से यही निष्ठुर नियम मानना पड़ रहा है। अतः भला-बुरा कुछ भी हो, जीवानन्द के बिछौने पर बैठकर एक दिन जिस हाथ से उसकी शुश्रूषा की है उसी हाथ से देवी की सेवा-पूजा नहीं की जा सकती, यह निश्चित है। फिर भी इसी देव-मन्दिर के आँगन में तारादास ने जब उसे एक अज्ञात-कुल-शील व्यक्ति के हाथ में सौंप दिया था तब उसने कोई आपत्ति नहीं की और यह सब जानकर भी, इतने दिनों तक ज़रा भी आगा-पीछा न करके, वह भैरवी का काम करती आ रही है; आज

यदि क्रुद्ध हिन्दू समाज उससे कैफ़ियत तलब करे तो नतीजा क्या होगा, यह तो उसके लिए चिन्तातीत ही है। यह तो हुई एक तरफ़ की बात; परन्तु जिधर उसका कोई बस नहीं चलता, कौन जानता है वहाँ क्या होगा? एक रोज़ जो जीवानन्द ने उसके साथ निरी दिल्लगी समझकर विवाह कर लिया था, उस इतिहास को वह अगर आज सिर्फ़ क़िस्सा बताकर उड़ा दे तो उसको प्रमाणित करने के लिए सिवा उसके और दूसरा आदमी जीवित नहीं है।

घर के काम-धन्धे के बारे में रानी की माँ के पूछने पर षोड़शी ने क्या जवाब दिया, उसका मतलब समझ में नहीं आया। मन्दिर के पुजारी ने एक विशेष आज्ञा लेने के लिए आकर अन्यमनस्क भैरवी से जो हुक्म पाया उसे वह समझ नहीं पाया। अपनी नित्य की पूजा में बैठकर आज षोड़शी किसी तरह मन को स्थिर नहीं कर सकी। दूसरी ओर जिस लिए उसका चित्त उद्भ्रान्त और चञ्चल हो रहा है उसका ठीक स्वरूप भी उसके सामने प्रकट नहीं हुआ। केवल कुछ अस्फुट और अनुच्चारित वाक्यों ने सवेरे से अर्थहीन प्रलाप के रूप में उसे आच्छन्न कर रक्खा। रसोई का सामान ज्यों का त्यों पड़ा रह गया, उसने रसोईघर में पैर तक नहीं रक्खा—यह सब उसे अच्छा नहीं लगा। उसको पता भी न लगा कि उसका सारा दिन कैसे और कहाँ बीत गया। इसी तरह शीतकाल के तीसरे पहर जब असमय

में ही अँधेरा घना होने लगा तब उससे घर के भीतर अकेले नहीं रहा गया। वह उसी दम बाहर निकल आई और फ़क़ीर साहब को याद कर नदी के उस पार उन्हीं के आश्रम की ओर चल पड़ी। कई बार ऐसा हुआ है कि ज़रा घूमकर अपने आश्रित विपिन या दिगम्बर को, उनके मकान के सामने से बुलाकर, साथ ले गई है; परन्तु आज बस्ती के भीतर उन्हें बुलाने जाने का न तो उसको साहस हुआ और न इच्छा ही हुई। वह अकेली खेतों में होती हुई नदी की ओर तेज़ी से चलने लगी। उसको याद भी नहीं हुई कि सारा मकान खुला पड़ा है।

इस रास्ते से फ़क़ीर साहब का आश्रम बहुत दूर नहीं है, शायद मील भर भी न हो और नदी में इतना पानी भी नहीं है कि सहज ही उसे पैदल पार न किया जा सके। अतः इधर चिन्ता की कोई बात न थी। केवल लौट आने की बात एक बार याद आई; परन्तु भीतर से भरोसा भी था कि यदि रात हो जायगी तो फ़क़ीर साहब कुछ उपाय करेंगे ही, उसे अकेली कभी न छोड़ देंगे। मन की इस हालत ने उसे इस सुनसान मार्ग में और उससे भी अधिक सुनसान बालुकामय नदी के तट पर सन्ध्या को आते देखकर भी आगा-पीछा करने नहीं दिया और बारुई के उस पार सीधे उस विशाल बरगद के नीचे साधु के आश्रम में लाकर पहुँचा दिया। वहाँ पहले ही जिनसे भेंट हुई वे फ़क़ीर साहब नहीं, राय महाशय के दामाद बैरिस्टर

साहब थे। इनको देखते ही षोड़शी अकचका गई। आज ये कोट-पैंट के बदले साधारण बङ्गाली भले आदमी की तरह धोती और कमीज़ वगैरह पहने हुए थे। वे भी भैरवी से मिलने के लिए तैयार नहीं थे। सोचकर कुछ कर्तव्य निश्चित न कर सकने के कारण, शायद अभ्यासवशतः, खड़े होकर उन्होंने किसी तरह नमस्कार कर डाला।

भैरवी ने चारों ओर देखकर पूछा—ये कहाँ गये?

बसु साहब ने कहा—मेरा भी प्रश्न यही है। शायद नज़दीक ही कहीं गये हों। मैं कोई घण्टे भर से इन्तज़ार कर रहा हूँ।

भैरवी ने सिर हिलाकर कहा—शाम को वे कहीं रहते नहीं हैं, शायद अभी आ जायँ।

"यहाँ पर उनका यही नियम है, यही मैं सुन आया हूँ। परन्तु शाम तो हो गई। आकाश की हालत भी अच्छी नहीं है।" कहकर बसु साहब सामने के मैदान के उस छोर की ओर देखने लगे। षोड़शी भी उन्हीं की दृष्टि का अनुसरण करके उस तरफ़ देखकर चुप हो गई। पश्चिम दिशा के प्रान्त में काले-काले बादल इकट्ठे हो रहे थे। इस सुनसान मैदान में, छायाच्छन्न वृक्ष के नीचे, अँधेरे में खड़े होकर दोनों को कोई बात नहीं सूझी, परन्तु इस बेमौक़े की हालत में खड़े होकर दोनों ही सकुचाने लगे। इस चुप्पी के सङ्कट से छुटकारा पाने के लिए ही मानो बसु साहब एकाएक बोल उठे—"कल मैं यहाँ से

चला जाऊँगा। नहीं मालूम फिर कब आना हो, परन्तु फ़क़ीर साहब से मिले बिना ही चले जाने से हैम ने रोका—इसलिए—परन्तु फ़क़ीर साहब कहीं चले तो नहीं गये?" यह कहकर वे एक क़दम आगे बढ़ गये और झोपड़ी के सामने जाकर भीतर की ओर झाँकते हुए बोले—साफ़-साफ़ दिखाई नहीं पड़ता, परन्तु मालूम नहीं होता कि कहीं कुछ है। मालूम नहीं, मुसलमान फ़क़ीर लोग धूनी जलाते हैं या नहीं, परन्तु ऐसा ही कुछ पानी से बुताया गया जान पड़ता है। आप ज़रा देखिए तो, मैं भीतर नहीं जाऊँगा। फ़िज़ूल इन्तज़ार करने में कोई लाभ नहीं—अब वे षोड़शी के पास लौट आये।

यह सुनते ही षोड़शी की छाती धड़कने लगी। फ़क़ीर के रहने न रहने की जाँच किये बिना ही उसको निश्चय हो गया कि दुनिया में उसके एकमात्र शुभेच्छु आज चुपचाप चले गये हैं। इस चुपचाप चल देने का कारण संसार में उसके सिवा और कोई नहीं जानता। षोड़शी बेबस की तरह साधु की झोपड़ी के भीतर जाकर बीच में चुपचाप खड़ी हो गई। कहीं कुछ नहीं है, भीतर घुसते ही उसको मालूम हो गया कि यह झोपड़ी आज बिलकुल ख़ाली है, परन्तु वह उसी दम बाहर नहीं निकल सकी। उसकी छाती के अन्दर यही बात अँगारे की तरह जलने लगी कि वे उसे, सचमुच दोषी समझकर ही, छोड़ गये हैं; और इसकी सूचना तक देने की आवश्यकता उन्होंने नहीं समझी। वहीं निश्चल मूर्त्ति की तरह खड़ी

हुई उसको बहुत सी बातें याद आने लगीं। फ़कीर साहब उसको कितना चाहते थे, इसको उससे अधिक और कौन जानता है? तो भी बिना जाने-बूझे वे अपराधी का पक्ष लेकर उन लोगों से लड़ने गये थे—इसी की लज्जा और पश्चात्ताप ने इस सत्याश्रयी संन्यासी को चुपचाप चले जाने के लिए बाध्य किया है—यह अनुभव उसको निःसंशय रूप से होने लगा और जिस वेदना के कारण वे चले गये हैं उस वेदना के गुरुत्व की उपलब्धि करने में भी उसको देर नहीं लगी। परन्तु यह हाल उन्हें बतलाने का मौक़ा कब मिलेगा, या कभी मिलेगा कि नहीं, यह भी भविष्यत् के गर्भ में छिपा हुआ है। इसी चिन्ता में बहुत देर हो गई। एकाएक खुले दरवाज़े से हवा का झोंका भीतर आकर उसके शरीर में लगने से उसको होश हुआ और याद आई कि बाहर एक आदमी अब तक उसी की बाट जोह रहे हैं। परन्तु इतनी ही देर में आकाश ऐसा मेघाच्छन्न तथा इतना प्रगाढ़ अन्धकार हो सकता है और हवा इतनी प्रबल होकर आँधी-पानी की सम्भावना निकट ही हो सकती है यह उसको नहीं मालूम था। बाहर आने पर उसने देखा कि वृक्ष के नीचे बसु साहब बैठे हुए हैं; उनके सफ़ेद कपड़ों के सिवा और कुछ नज़र नहीं आता। वास्तव में उन्हें इस तरह प्रतीक्षा करते देखकर षोड़शी के मन में बड़ा सङ्कोच होने लगा। बसु साहब ने खड़े होकर कहा—अभी तक तो नहीं आये, क्या आपको अभी आशा है कि वे आ सकते हैं?

षोड़शी ने मृदु स्वर से उत्तर दिया—क्या मालूम, शायद अब न आवें।

बसु साहब ने कहा—मुझे नहीं मालूम कि यहाँ फ़क़ीर साहब का असबाब वग़ैरह क्या-क्या था, परन्तु घर तो बिलकुल ख़ाली पड़ा है,—उनका यों एकाएक चला जाना क्या आपको सम्भव प्रतीत होता है?

षोड़शी धीरे-धीरे बोली—सोलहों आने असम्भव भी नहीं है। बीच-बीच में वे इसी तरह एकाएक चले जाते हैं।

"फिर कितने दिन में लौटते हैं?"

"कुछ ठीक नहीं है। अब की तो कोई तीन साल के बाद लौटे थे।"

बसु ने कहा—तो चलिए, घर लौट चलें।

"चलिए"—कहकर षोड़शी के आगे बढ़ते ही बसु ने कहा—परन्तु जाने का सुभीता तो सोलहों आने देख पड़ता है। एक तो रेती के ऊपर रास्ते का चिह्न तक नहीं है, दूसरे अँधेरा इतना गहरा है कि अपने ही हाथ-पैर नहीं सूझते।

षोड़शी चुपचाप धीरे-धीरे चल पड़ी थी, कुछ बोली नहीं। बसु ने कहा—"हवा के शब्द से मालूम नहीं होता, परन्तु पानी पड़ने लगा है। पेड़ के नीचे से निकलते ही भीगना पड़ेगा।" इस पर भी जब षोड़शी कुछ नहीं बोली तब बसु साहब ने कहा—देखिए, मैं यहाँ का रास्ता नहीं पहचानता,

इसके सिवा सुना है कि यहाँ साँप का भी भय बहुत है। इस अँधेरे में क्या—

षोड़शी रुकी नहीं; चलते-चलते ही बोली—रास्ता मैं जानती हूँ। आप मेरे पीछे-पीछे चले आइए।

बसु साहब हँस पड़े, बोले—यानी साँप डसे तो आपको ही डसे। आप संन्यासिनी हैं, आपकी तरफ़ से यह प्रस्ताव ठीक ही है, परन्तु मुश्किल यह है कि मैं भी मर्द हूँ। यह बात आप किसी से कहेंगी नहीं, मैं जानता हूँ—यहाँ तक कि हैम से भी नहीं कहेंगी—परन्तु तो भी मैं वैसा नहीं कर सकूँगा।

अब षोड़शी को रुकना पड़ा। अँधेरे में ठीक मालूम नहीं हुआ, परन्तु बसु साहब की बातें सुनने से उसके भी मुँह पर हँसी की रेखा झलक गई। दम भर चुप रहकर उसने पूछा—तब फिर क्या करना चाहिए?

साहब ने कहा—कहना कठिन है। परन्तु सलाह पक्की होने के पहले ही भीग जाना पड़ेगा। बरगद के पत्तों से अब पानी नहीं रुकता।

बात ठीक थी। क्योंकि ऊपर की जलधारा अब पत्तों के भीतर से होकर नीचे आ रही थी। षोड़शी बोली—तो आप इस झोपड़ी में थोड़ी देर ठहरिए, मैं हैम को ख़बर देकर आदमी और लालटेन भेजने का इन्तज़ाम कर दूँगी। मुझे अभ्यास है, इस पानी से मेरी कोई हानि नहीं होगी।

साहब ने कहा—प्रस्ताव बहुत ही सुन्दर है! क्योंकि साहब हो जाने से बङ्गाली क्या होते हैं, यह आपको अच्छी तरह मालूम है। परन्तु मुझमें अभी तक ज़रा सी कसर रह गई है। हैम के कारण मेरे भीतर के साथ बाहर का अभी तक पूरा मेल नहीं हो सका है। आपका यह प्रस्ताव भी अचल है—अतः चलना ही स्थिर है। चलिए।

वृक्ष की छाया को छोड़कर बाहर आने से दोनों को मालूम हो गया कि चलना प्रायः असम्भव है। क्योंकि हवा के वेग से वृष्टि की धाराएँ केवल तीर की तरह देह में चुभ ही नहीं रही हैं, बल्कि पहले जो धूल उड़कर आकाश में छा गई थी, वह जब तक जलधारा से धुलकर ज़मीन में न गिरे तब तक आँख खोलकर चलना भी दुःसाध्य है। चुपचाप चलते-चलते एकाएक, पीछे आहट पाकर, षोड़शी खड़ी हो गई। पूछा—क्या आपको चोट लगी?

वसु साहब ने किसी प्रकार अपने को सँभाल लिया और सीधे खड़े होकर कहा—हाँ, लेकिन आशा से अधिक नहीं लगी। चश्मा समेत मेरी आँखें चार हैं सही, पर देखने की शक्ति चौथाई भी होती तो कुशल थी। चलिए।

षोड़शी आगे नहीं बढ़ी। उसने पल भर चुप रहकर पूछा—क्या आपको सचमुच में ही अच्छी तरह नहीं देख पड़ता?

वसु ने "हाँ" कह दिया। इसके बाद ज़रा हँसकर कहा—बहुत सी अँगरेज़ी किताबें याद करके साहब होना पड़ा

है—उसकी दक्षिणा उन्होंने अच्छी तरह वसूल कर ली है। परन्तु अब खड़े होकर भिगाइए नहीं—चलिए। दोनों आँखें मूँदकर चलने से जितना दिखाई पड़ता है उतना मैं अवश्य देख सकूँगा—यह मैं आपको यक़ीन दिलाता हूँ!

षोड़शी का गला करुणा से कोमल हो गया। उसने कहा—तब तो नदी पार होने में आपको बड़ा कष्ट होगा।

बसु ने कहा—यह कैसे कहूँ। परन्तु नदी पार होने के पहले भी बहुत आराम नहीं मिल रहा है। खैर, इस मैदान में खड़े रहने से भी तो समस्या हल नहीं होगी।

षोड़शी ने एक क़दम आगे बढ़कर कहा "आप मेरा हाथ पकड़कर धीरे-धीरे चले आइए।" अब उसने अपना हाथ बढ़ा दिया।

इस अपरिचित नारी का आचरण और साहस देखकर वाक्पटु बैरिस्टर साहब ज़रा देर के लिए विस्मय से कुछ भी कह नहीं सके। फिर उसके फैलाये हुए हाथ का आश्रय व्यग्रता के साथ लेकर धीरे-धीरे बोले—चलिए। अब मैं सचमुच ही दोनों आँखें बन्द करके चल सकूँगा।

षोड़शी ने इसका कुछ उत्तर नहीं दिया। दोनों के धीरे-धीरे कुछ दूर बढ़ जाने पर बसु साहब एकाएक बोले—मैंने उस दिन आपके साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया। उसके लिए माफ़ी माँगता हूँ, आप मुझे क्षमा कीजिए।

षोड़शी ने इसका कुछ उत्तर नहीं दिया। वह उसी तरह धीरे-धीरे चलने लगी। बसु साहब ने कहा—"आपसे हैम की बचपन की मित्रता है। मेरा उस दिन का बर्ताव कैसा भी रहा हो, किन्तु मुझे आप शत्रु न समझें।" अब उन्होंने उसके हाथ को ज़रा सा दबा दिया।

षोड़शी बिलकुल चुपचाप थी। बसु साहब ने थोड़ी देर चुप रहकर कहा—मालूम होता है, ये लोग आपको सहज ही न छोड़ेंगे। बहुत सम्भव है, मुक़दमा भी चले। शायद फ़कीर साहब सचमुच ही चले गये हैं। शायद मैं भी चला जाऊँ—

षोड़शी ने कुछ नहीं कहा। वे थोड़ी देर में बोले—आप देवी की पूजा नहीं करेंगी—यह आपने क्या नाराज़ होकर कहा है?

इस बार षोड़शी ने उत्तर दिया—नहीं।

"तो क्या वास्तव में इसका कोई कारण है?"

षोड़शी ने इस प्रश्न का कुछ उत्तर नहीं दिया। बाद को कहा—अब हम नदी में आ गये। आप ज़रा सँभलकर उतरिएगा।

इसके बाद देर तक कुछ बातचीत नहीं हुई। षोड़शी उन्हें बड़ी सावधानी से नदी पार ले आई। आते समय साहब जूता उतारकर आये थे, परन्तु अब इस दुर्भेद्य अन्धकार में नङ्गे पैरों जाने का साहस नहीं हुआ। वे उस पार जूता

पहने हुए पहुँचे। आराम की साँस छोड़कर उन्होंने कहा—अब जी में जी आया, एक बड़ी अलफ कट गई।

बड़ी अलफ से बच जाने पर साहब बहुत निश्चिन्त हो गये। उन्होंने कहा—मन्दिर में पुजारी है सही, तो भी पूजा करना आपके कर्तव्य का ही अङ्ग है। परन्तु उस प्रश्न को आपने दबा दिया। इधर जिस दुर्दान्त शैतान ज़मींदार को बचाना आपके कर्तव्य का अङ्ग नहीं था उसे आपने जिस उपाय से बचाया है वह विचित्र ही नहीं, अपूर्व भी है। ये दोनों बातें ऐसी दुर्बोध्य हैं कि गाँव के लोगों ने नहीं समझीं, इसलिए उन पर आक्षेप नहीं किया जा सकता।

षोड़शी ने इस तुहमत का उत्तर देते हुए मृदु स्वर से कहा—मैं आक्षेप तो नहीं करती हूँ।

"आक्षेप नहीं करती हैं? यह भी एक ही कही। आपके पिता का बर्ताव और भी अनोखा है। हैम कहती है—परन्तु छोड़िए हैम की बात। मेरा कहना है कि आप सारा अपराध खोलकर इन लोगों को बतला क्यों नहीं देतीं? मैं नहीं जानता कि नतीजा क्या होगा,—परन्तु कुछ भी क्यों न हो, रमणी की आबरू भी तो अवहेला की चीज़ नहीं है!" यह कहकर उन्होंने थोड़ी देर तक उत्तर की प्रतीक्षा की; परन्तु षोड़शी ने जब कुछ भी उत्तर नहीं दिया तब एक साँस छोड़कर उन्होंने कहा—"मालूम होता है, साधारण स्त्रियों की तरह आपको अपनी इज़्ज़त या बदनामी

की कुछ परवा नहीं है ! आप साधारण स्त्री हैं भी तो नहीं ! इसके सिवा सब बातों में चुप रहने की आपकी ज़िद भी अपूर्व ही है। वास्तव में आपकी सभी बातें अनोखी हैं।" पल भर चुप रहकर वे स्वयं बोले—उस दिन मैंने आपको एक ही बार देखा था और आज हाथ पकड़कर चल रहा हूँ। जिसके आश्रय से चल रहा हूँ वह जैसे मेरे लिए अन्धकार—अज्ञेय—है, वैसे ही जिसके भीतर से चल रहा हूँ वह भी अन्धकार है। तिस पर भी निःसङ्कोच भाव से साथ चलने में कुछ रुकावट नहीं हुई। आपकी भक्ति किये बिना रहा नहीं जाता।

अब थोड़ी देर तक किसी बात की प्रतीक्षा में रहने के बाद वे एकाएक बोल उठे—आप तो संन्यासिनी हैं। मेरे ससुर आपका कुछ भी क्यों न करें, ज़मीन-जायदाद के लिए उनसे मुक़दमा लड़ने से आपको ग़रज़ क्या है?

षोड़शी ने अब कहा—कोई ग़रज़ नहीं है।

"तो?"

षोड़शी ने कहा—आप कोई शङ्का न करें। उपायहीन अबलाओं के भाग्य में बराबर जो होता आया है, वही मेरे बारे में भी होगा।

बसु साहब को इस बात से गहरी चोट लगी, परन्तु उन्होंने प्रतिवाद भी नहीं किया, और प्रतिघात भी नहीं किया। दोनों ही चुपचाप चलने लगे। आँधी या पानी कोई भी नहीं रुका, परन्तु गाँव के भीतर आने पर दोनों का ही प्रभाव कम

मालूम होने लगा। रास्ते का मोड़ घूमते ही सामने सनातन माइती की कुटी से रोशनी दिखाई पड़ी। और थोड़ी देर चलकर षोड़शी ठहर गई, बोली—अब वैसा अँधेरा नहीं है, आप इसी रास्ते सीधे चले जायँ तो राय महाशय के फाटक पर पहुँच जायँगे।

"और आप?"

"मेरा रास्ता बाईं ओर इस बगीचे के भीतर से है।"

बसु ने हाथ नहीं छोड़ा, कहा—दूसरों से सुना है कि आप अच्छी शिक्षिता हैं, ख़ुद मुझे जितना मालूम हुआ है, उसके उल्लेख की आवश्यकता नहीं। परन्तु इससे अधिक जानने का मौक़ा अगर जीवन में न आवे तो आज की इस यात्रा की याद मुझे बराबर, बड़ी श्रद्धा के साथ, बनी रहेगी।

षोड़शी ने तनिक हँसकर कहा—परन्तु इतना ही अगर किसी ने बाहर से देख लिया हो तो उसकी राय आपसे नहीं मिलेगी।

साहब मन ही मन चौंक पड़े। इसके बाद उन्होंने उस हाथ को और ज़रा सा दबाकर धीरे-धीरे छोड़ दिया। कहा—नहीं। गढ़ी हुई कहानी की तरह मालूम होगी। इसलिए इसकी चर्चा न करके चुप रहना ही अच्छा है। यही न?

इसका जवाब न देकर षोड़शी बोली—मेरे लिए इन्तज़ार करके आप बहुत भीगे हैं। आपने बहुत दुःख सहा है—अब जाइए। मैं भी जाती हूँ।

बसु ने कहा—यही बात शायद मुझे बहुत दिनों तक सोचनी पड़ेगी। कल हम जायँगे—हैम से आपको कुछ कहना नहीं है?

षोडशी ने पल भर कुछ सोचकर कहा—"नहीं। केवल उसके लड़के को आशीर्वाद देती हूँ—आप चाहें तो इतना उससे कह दीजिएगा।" अब वह किसी प्रश्न या उत्तर की अपेक्षा न करके जङ्गल के अँधेरे रास्ते से अदृश्य हो गई।

साहब कुछ देर तक वहीं विमूढ़ की तरह खड़े रहे। उन्हें नमस्कार करने तक का मौक़ा नहीं मिला। जिन फ़क़ीर साहब के लिए यह सब हुआ, उनके उद्देश्य से भी नमस्कार नहीं किया जा सका। इसके बाद उसी बताये हुए रास्ते से वे धीरे-धीरे चलने लगे।

१०

बसु साहब जब ससुराल में पहुँचे तब देखा कि मकान में उन्हीं के लिए घबराहट और हलचल मची हुई है। जहाँ जितनी टूटी या बिना टूटी लालटेनें थीं सब इकट्ठी की गईं और उन्हें इस भयावनी रात में बाहर ले जाने लायक़ करने के लिए घर के सभी मनुष्य जी-जान से कोशिश करने लगे। नौकरों-चाकरों और अनुगत-कुटुम्बियों को मिलाकर एक खासा दल तैयार किया गया, खुद राय महाशय सबकी देख-भाल करने लगे। कौन-कौन किधर जायगा, किस रास्ते में,

किस मैदान में और किस वन या बग़ीचे में खोज करनी होगी इसी का उपदेश ये बार-बार सबको देने लगे। उनके आचरण तथा कण्ठस्वर से केवल घबराहट ही नहीं बल्कि भय भी प्रकट हो रहा था। अभी उन्होंने कुछ प्रकट नहीं किया था सही पर जो भय उनके मन में झाँक रहा था वह बड़ा ही भयङ्कर था। वे जानते थे कि षोड़शी के कुछ अनुगत भूमिज असामी हैं। वे जैसे उद्दण्ड हैं वैसे ही निर्दयी हैं। डाका डालते हैं, इस-लिए पुलीस में उनका नाम पता तक लिखा हुआ है। वे लोग इस अँधेरी रात में उन्हें कहीं अकेले पाकर यदि अपनी भैरवी माता के प्रति किये गये अविचार का स्मरण कर बदला लेने के लिए एकाएक उत्तेजित हो उठें तो वहाँ सुविचार की आशा करना वृथा है। एक तरफ़ चुपचाप खड़ी होकर हैम सब देख रही थी। उसे पिता की शङ्का का भी पता लगा; परन्तु उसे तब तक भीतर की असली बात मालूम नहीं था। यह प्रकट हुआ उसकी माँ की एक बात से। वे अचानक बाहर आकर पति को दोष देती हुई बोलीं—"भला मेरे दामाद को पश्च मानने की क्या ज़रूरत थी? जिसके पीछे डाकुओं का दल है उसे कोई जीत सकता है? जहाँ से हो, मेरे निर्मल को ढूँढ़ लाओ; नहीं तो जहाँ मेरी आँखें ले जायँगी वहीं मैं, इसी अँधेरे में, निकल जाऊँगी।" अब वे रोती हुई अन्तःपुर में चली गईं। कन्या और पिता दोनों को ही काठ मार गया, कुछ देर तक दोनों ही स्तब्ध हो रहे।

जनार्दन राय अपने को सँभालकर हैम से ढाढ़स और साहस की कोई बात कहना चाहते थे कि इतने में दामाद आँगन में आकर खड़े हो गये। उनकी देह से पानी टपक रहा था; धोती, कमीज़ और जूते में कीचड़ लगी हुई थी। ससुर के मुँह की बात निकलने नहीं पाई। परन्तु दूसरे ही क्षण जिन साहब-दामाद की वे बहुत ख़ातिर करते और जिनसे दबते थे उन्हीं को, ख़ुशी के मारे, जो मुँह में आया वही कहकर धमकाने लगे।

साहब ने चुपचाप भीतर आकर हाथ की टूटी छड़ी रख दी, हाथ से खींचकर जूता उतार दिया और भीगी हुई कमीज़ उतार दी। इसी बीच छोटे-बड़े, ऊँच-नीच सभी एक साथ पूछने लगे—ऐसी हालत कैसे हुई और कहाँ हुई?

राय महाशय सावधान होकर बोले—यह सब पीछे होगा, तुम भीतर जाओ। बेटी हैम, तुम खड़ी क्या हो; उन्हें कोई सूखी धोती दो जाकर।

भीतर जाकर ससुर, सास और कुटुम्बियों के पूछने पर उन्होंने बतलाया कि उस पार फ़क़ीर साहब से मिलने गये थे, परन्तु भेंट नहीं हुई। वे वहाँ नहीं हैं।

उस पार के नाम से सभी के रोंगटे खड़े हो गये। राय महाशय ने घबराकर कहा—फ़क़ीर से मिलने गये थे! मुझसे क्यों नहीं कहा, मैं उसे बुलवा देता। परन्तु इस अँधेरे में राह पहचानकर कैसे आये?

निर्मल ने कहा—राह पहचानने की मुझे ज़रूरत नहीं हुई। ज़रूरत पड़ती तो मैं न पहचान सकता।

"परन्तु आये कैसे ?"

"किसी ने हाथ पकड़कर मुझे मकान के सामने तक पहुँचा दिया।"

चारों ओर से प्रश्न होने लगा—वह कौन है, वह कौन है, उसका क्या नाम है ?

निर्मल ने तनिक सोचकर कहा—क्या मालूम, नाम बतलाने में शायद उनको आपत्ति हो।

राय महाशय प्रतिवाद करते हुए बोले—"आपत्ति ? कभी नहीं। हमारे इस देश के आदमियों को तुम नहीं पहचानते, परन्तु कोई भी हो, उसे ख़ुश कर देना चाहिए।" अब उन्होंने नौकर को बुलाकर हुक्म दे दिया—"ऐ धर, अगर चटर्जी बाहर हो तो अभी जाकर उससे कह दे कि कल तड़के ही पता लगाकर इनाम दे दिया जाय। समूचा एक रुपया ही उसको मिलना चाहिए—उसमें से कुछ काट न लें। चटर्जी बड़ा कञ्जूस है!" अब वे उदारता के आवेग से पहले गृहिणी, उसके बाद बेटी और जामाता की ओर सदय दृष्टि से देखने लगे।

रात को भोजन के बाद पति को एकान्त में पाकर हैम ने कहा—बाबूजी ने तो इनाम की घोषणा कर दी, पूरा रुपया देने की चेष्टा भी शायद कुछ हो, परन्तु फल नहीं होगा।

निर्मल ने कहा—हाँ, असामी नहीं मिलेगा।

हैम हँसकर बोली—परन्तु आपने उस दयालु मनुष्य को क्या पुरस्कार दिया ?

निर्मल ने कहा—तुम्हारी समझ में 'देना' क्या इतना सहज काम है ? वह क्या दाता की मर्ज़ी पर ही निर्भर है ?

"तो दे नहीं सके ?"

"नहीं, देने की कोशिश भी नहीं की।"

पति के मुँह की ओर पल भर ताकती हुई हैम बोली—परन्तु मेरा कर्तव्य है। बाबूजी उन्हें ढूँढ़ न सकेंगे, पर मैं ढूँढ़ लूँगी।

निर्मल ने सन्देह प्रकट कर कहा—मैं समझता हूँ कि अपने बाबूजी की तरह तुम भी उन्हें ढूँढ़ नहीं सकोगी।

हैम ने कहा—अगर ढूँढ़ निकालूँ तो मुझे भी कुछ इनाम देना। परन्तु मैंने उन्हें पहचान लिया है। क्योंकि जो तुम्हारे ऐसे अन्धे मनुष्य को इस घोर अन्धकार में आसानी से नदी पार कराके घर के सामने पहुँचा दे और अपना नाम तक ज़ाहिर न करना चाहे, उसे पहचान लेना बहुत कठिन काम नहीं है। इसके सिवा मैं शाम को अँधेरे में छिपकर एक बार उन्हें देखने गई थी। वहाँ देखा कि घर-दुआर सब खुला पड़ा है; वे नहीं हैं, परन्तु तारादास पण्डित ने सब पर दख़ल कर लिया है। मैं तुरन्त छिपकर लौट आई। रास्ते में जान-पहचान का एक आदमी मिल गया। उससे मालूम हुआ कि षोड़शी को उसने नदी की ओर जाते

देखा है। अब समझ गये, जिस दयालु मनुष्य ने तुम्हें घर पहुँचा दिया है उसे मैं पहचानती हूँ। परन्तु क्या सचमुच हाथ पकड़कर ही तुम्हें पहुँचा दिया है ?

निर्मल ने क्षण भर सोचकर कहा—हाँ, यही बात है। जब वे समझ गईं कि मैं अन्धे के समान हूँ तब तुरन्त हाथ बढ़ाकर कहा कि मेरा हाथ पकड़कर चले आइए। परन्तु दूसरे के लिए यह काम तुम न कर सकतीं।

हैम ने सहज भाव से स्वीकार कर "नहीं" कहा।

उसके पति ने कहा—"मैं जानता हूँ।" इसके बाद सिलसिले से सब हाल बतलाकर कहा—इसके सिवा मेरे लिए दूसरा उपाय ही न था। उधर उनकी विपत्ति के गुरुत्व को भी सोचो। मुझे उन्होंने एक ही बार देखा था, मेरे बारे में उनकी धारणा भी अच्छी नहीं थी। तो भी मुझे उस सूनसान अँधेरे रास्ते में से ले आईं, इसका दायित्व कितना भद्दा, कितना भयङ्कर है! वास्तव में रास्ता चलते-चलते कई बार मुझे डर लगा कि अगर किसी के सामने पड़ जाऊँ तो उसकी नज़र में कैसा मालूम होगा? देखो हैम, चण्डी देवी की इस भैरवी को मैं पहचान नहीं सका हूँ सही, परन्तु आज इतना मैं अवश्य समझ गया कि साधारण नियम से इनका विचार नहीं किया जा सकता। या तो सतीत्व इनके सामने कोई चीज़ ही नहीं, तुम लोगों की नज़र में सतीत्व का जो मूल्य है उसकी इन्हें परख ही नहीं; अथवा

इज्ज़त-आबरू या बदनामी का ख़याल इन्हें स्पर्श तक नहीं कर सकता।

हैम ने तनिक ठहरकर कहा—क्या तुम ज़मींदार की घटना याद कर यह सब कह रहे हो ?

निर्मल ने कहा—सम्भव है। मैं नहीं जानता कि यह स्त्री अच्छी है या बुरी; परन्तु यह बात मैं हलफ़ उठाकर कह सकता हूँ कि यह जैसी गम्भीर है वैसी ही शिक्षिता है और वैसी ही निडर है। शास्त्र में लिखा है कि सात पग एक साथ चलने से मित्रता होती है। इतने बड़े सूनसान रास्ते में, ऐसे घोर अन्धकार के भीतर, उन्हीं के भरोसे सैकड़ों पग हम एक साथ चले आये हैं; एक-एक करके मैंने अनेक प्रश्न किये। परन्तु कल की तरह आज भी ये रहस्य में ही छिपी रहीं।

हैम ने कहा—तुम्हारी जिरह भी नहीं टिकी, तुम्हारी मित्रता भी स्वीकार नहीं की ?

निर्मल ने कहा—नहीं, कुछ भी नहीं हुआ।

अब हैम हँस पड़ी, बोली—ज़रा भी नहीं ? तुम्हारी तरफ़ से भी नहीं ?

"इतनी बड़ी बात को तुम योंही, धोखा देकर, पूछ लेना चाहती हो ? परन्तु अपने को जानने के लिए भी तो समय लगता है, हैम।"—इतना कहकर निर्मल रुक गये। उन्होंने देखा कि हैम उन्हीं की ओर एकटक देख रही है।

उसके मुख का भाव दीपक के हलके उजेले से स्पष्ट प्रतीत नहीं हुआ। वे स्वयं अपने पूर्व कथन के सिलसिले में क्या कहेंगे, इसका निश्चय करने के पहले ही हैम धीरे-धीरे बोली—"वह ठीक है। तो भी पुरुषों को समझने में शायद विलम्ब होता है, किन्तु स्त्रियों को ऐसा अभिशाप है कि उनकी सारी ज़िन्दगी अपने भाग्य की चिन्ता में ही बीत जाती है। अच्छा, अब तुम सोओ, मैं अभी आती हूँ।"—वह कोई बात होने के पहले ही उठकर सावधानी से किवाड़ लगा करके बाहर चली गई।

निर्मल ने उसका हाथ नहीं पकड़ा—रहस्य की ओट में स्त्री के इस अर्थहीन संशय और अविचार की वेदना ने मानो उन्हें क्रोध से चञ्चल कर दिया। सामने की घड़ी में बड़ी दुखदायी मिनिट की सुई टिक-टिक करते हुए नीचे लटक गई, परन्तु तब तक जब हैम लौटी नहीं तब अकेले बिस्तरे पर पड़े रहने में असमर्थ होकर उन्होंने धीरे-धीरे किवाड़ खोले और बाहर आकर देखा कि अँधेरे बरामदे में, एक खम्भे के पास, हैम चुपचाप बैठी हुई है। पास आ करके सिर पर, शरीर पर, हाथ फेरने से मालूम हुआ कि बारिश से सब भीग गया है। उन्होंने हाथ पकड़, घर के भीतर लाकर, कहा—तुम क्या पागल हो गई हो हैम?

इससे अधिक और कुछ उनसे कहते नहीं बना, कहने का प्रयोजन भी उन्होंने नहीं समझा। दीपक के उजेले में

हैम के मुँह की ओर देखा। आँसुओं का आभास अभी तक उसकी आँखों से अदृश्य नहीं हुआ था।

११

सवेरे उठकर हैम अपने रात्रि के बर्ताव को याद कर बहुत शर्माई। निर्दोष और चरित्रवान् स्वामी के ऊपर इस प्रकार के अकारण आक्षेप के झञ्झट को उसने उस आँधी-पानी और दुर्योग की रात में उनके एकाएक निरुद्दिष्ट होने के आतङ्क के सिर मढ़कर मन ही मन हँसना चाहा; परन्तु जो दिल खोलकर हँसने की उसको आदत थी, उसके पास तक आज उसकी पहुँच किसी तरह नहीं हुई। किरकिरी निकल जाने पर भी मानो अबोध आँखों की शङ्का नहीं गई। शिरोमणिजी ने स्वयं आकर मुहूर्त बतला दिया है—साढ़े दस किसी तरह बीतने न पावे। माँ भण्डार में यात्रा की तैयारी और रसोईघर में खाने के इन्तज़ाम की उलझन में हैं, उन्हें तनिक भी फ़ुरसत नहीं है। इतने में बाहर से आवाज़ आई—'राय बाबू बेटी को बुला रहे हैं।' हैम ने बाहर आकर देखा मानो कोई उत्सव हो रहा है। पिताजी बीच में फ़र्श पर चाँदी-मढ़ा हुआ हुक्क़ा पी रहे हैं। शिरोमणि हैं, ज़मींदार का गुमाश्ता एककौड़ी नन्दी है, तारादास है, और गाँव के भी कई मुखिया हैं, उसके पति भी एक ओर चुपकी साधे बैठे हुए हैं। उत्साह और आनन्द की उमङ्ग में सब लोग एक ही

साथ हैम को संवाद सुनाने लगे, परन्तु पहले कुछ भी समझ में नहीं आया। शिरोमणि के मुँह में एक भी दाँत नहीं है पर आवाज़ ख़ासी है—उस आवाज़ की प्रबल शक्ति ने क्षण भर में सबको रोककर जो प्रकट किया वह इस प्रकार है, कल भयानक दुर्योग की रात में बड़ी सफलता प्राप्त हुई है; शत्रुपुरी पर सहज ही क़ब्ज़ा हो गया है। भैरवी घर में नहीं थी, जासूस से ख़बर पाकर तारादास ने उस लड़की के साथ जाकर इस मौक़े पर सब पर दख़ल कर लिया है। झगड़ा करना तो दूर रहा, डर के मारे षोड़शी ने एक बात तक नहीं कही। मामूली सा सामान लेकर वह उस रात को ही घर से निकल गई। चहारदीवारी के बाहर, मन्दिर से सटे हुए, जिस खपरैले में यात्री लोग दूर से आकर रसोई बनाते-खाते हैं, उसी में उसने आश्रय लिया है। इसे चण्डी माता की कृपा ही समझो। इस कृपा का परिमाण यदि और थोड़ा सा बढ़ जाय तो उसे गाँव से निकाल देने में भी विलम्ब नहीं होगा।

प्रसन्न तारादास ने ऊपर की ओर देखकर विनय के साथ हँसते-हँसते कहा—यह सब देवी की इच्छा है। जो कुछ करना था, सब उन्होंने कर लिया है; नहीं तो उतनी बड़ी बाघिन क्या भेड़ बन जाती? मैं तमाखू भरकर फूँक रहा था और लड़की पास बैठकर चाय बना रही थी, इतने में कहीं से भीगती-भीगती षोड़शी आ गई। हम लोगों को देख-कर वह डर के मारे काठ हो गई। थोड़ी देर के बाद धीरे-

धीरे बोली—बाबूजी, मैंने तो कभी कहा नहीं कि तुम चले जाओ या यहाँ मत रहो। ख़ुद ही क्रोध के मारे चले गये और न जाने कितना कष्ट सहा!

मैंने 'हूँ' कहा।

दरवाज़े के सामने आकर उसने पूछा—इस घर में तुमने ताला लगा दिया है, बाबूजी?

मैंने कहा—हाँ, लगा दिया है। जो करना हो सो कर ले।

तनिक चुप रहकर उसने कहा—तुम्हारे साथ मैं कुछ झगड़ा नहीं करूँगी बाबूजी, तुम्हीं लोग रहो। घर को ज़रा खोल दो, मैं अपनी दो धोतियाँ ले लूँ।

"मैंने ताला खोल दिया। माता चण्डी की कृपा से उसने फिर कोई झगड़ा नहीं किया। पहनने की दो धोतियाँ, एक कम्बल और लोटा लेकर उसी अँधेरे में भीगते-भीगते चली गई। देवी को प्रणाम कर मैंने कहा—माँ, लड़के पर ऐसी ही दया रहे, तेरा नाम लिये बिना मैं पानी तक नहीं पीता हूँ।"

शिरोमणि हाथ हिला-हिलाकर कहने लगे—रहेगी, रहेगी, मैं कहता हूँ तारादास, तुम्हारे ऊपर माँ की कृपा बनी रहेगी। नहीं तो उनका जगदम्बा नाम ही वृथा है।

एककौड़ी ने कहा—परन्तु पण्डितजी, आप कुछ भी कहें, माँ की गद्दी ख़ाली नहीं रह सकती। अब उस नई लड़की को भैरवी बनाने में देर करने से भी नहीं चलेगा।

राय महाशय जला हुआ हुक्क़ा पास के आदमी के हाथ में थमाकर बड़ी गम्भीरता के साथ बोले—"हाँ हाँ, सब हो जायगा। मैं सब प्रबन्ध कर लूँगा। तुम लोग घबराओ मत।" दामाद की ओर देखकर कहा—लौंडी से एक सतर लिखा भी तो लेना चाहिए न? वह भी हो जायगा—बुलाकर, डाँट-डपटकर वह भी कर लूँगा। परन्तु तुमसे यह भी कहे देता हूँ तारादास, कदमतल्ले की उस ज़मीन के लिए फिर झगड़ा न करना। ग़ल्ले की आढ़त को अब सामने न हटा लाऊँ तो मैं सब ओर नज़र नहीं रख सकता! षोड़शी की तरह, मेले के नाम से, झगड़ा करने से—

बात पूरी नहीं हो पाई। बहुत लोग तारादास की ओर से राज़ी हो गये और वह स्वयं भी जीभ काटकर गद्गद कण्ठ से बोला—"यह बात कहने की भी ज़रूरत नहीं है राय महाशय, सभी आपका है! हाथी के साथ मच्छड़ का झगड़ा! क्यों बेटी?" यह कहकर उसने कोई भली बात, ज़रा सिर हिलाना या ऐसा ही कुछ सुनने की आशा से हैम के मुँह की ओर ताका; उसी के साथ बहुतों की दृष्टि उसी के ऊपर जा पड़ी। हैम ने कुछ नहीं कहा; परन्तु उसके चेहरे से षोड़शी का, पहले दिन का, विचार-दृश्य सबके सामने प्रकट हो पड़ा। इससे क्षण भर के लिए घर के अन्दर निरुत्साह के मेघ ने आकर छाया फैला दी—परन्तु क्षण भर के लिए ही। राय महाशय सीधे बैठकर बोले—बेटा निर्मल, यात्रा

का मुहूर्त शिरोमणिजी ने दस बजे के अन्दर ही देख दिया है—स्त्रियों का झञ्झट है—ज़रा जल्दी तैयारी न की जायगी तो ठीक समय पर निकलना मुश्किल हो जायगा।

सिर हिलाकर निर्मल उठ खड़े हुए। और कोई बात-चीत होने के पूर्व ही हैम चुपचाप वहाँ से चली गई।

मुँह-हाथ धोने से नहाना तक समाप्त करने में बसु साहब को अधिक विलम्ब नहीं लगा। भीतर घुसते ही सास का उच्च कण्ठ रसोईघर से सुनाई दिया, वे लड़की के पीछे पड़ी हैं। न मालूम वह घर के भीतर से निकलती क्यों नहीं। निर्म्मल ने भीतर घुसकर देखा कि हैम फ़र्श पर चुपचाप बैठी हुई है। उन्होंने आश्चर्य में आकर पूछा—बात क्या है, तुम्हारी माँ बहुत घबरा रही हैं। फिर समय भी तो अधिक नहीं है।

हैम ने कहा—बहुत समय है, आज हम लोग जा नहीं सकते।

"क्यों ?"

हैम ने कहा—'क्यों' क्या ? षोड़शी की इतनी बड़ी विपत्ति में उनसे बिना मिले ही चली जाऊँ ?

निर्म्मल ने कहा—अच्छी बात है! उनसे मिल क्यों नहीं आतीं। उसके लिए तो अभी समय है।

हैम ने कहा—और तुम भी एक बार बिना मिले कैसे जाओगे ?

यह पिछली रात्रि की प्रतिक्रिया है, यह मन में समझकर निर्म्मल ने कहा—कोशिश करूँ तो वह भी हो जायगा। यह

कुछ कठिन काम नहीं है। परन्तु मालूम नहीं होता कि मेरे एक बार मिल लेने से ही उनका उपकार होगा।

हैम ने ज़ोर से सिर हिलाकर कहा—नहीं, ऐसा नहीं हो सकता।

"क्यों नहीं हो सकता? उसके सिवा मेरा वही सैदा-बाद का चमड़े का मुक़दमा है—"

"रहने दो अपना चमड़े का मुक़दमा। एक तार दे दो। आज तुम जा नहीं सकते।"

"अच्छी बात है। तो चलो दोनों ही जाकर मिल आवें। अभी तो काफ़ी समय है।"

हैम ने मुँह उठाकर हँसते हुए कहा—नहीं, ऐसा तुम्हारे वहाँ हो सकता है; यहाँ नहीं। इतने आदमियों के सामने तुम्हारे साथ जाने से बाबूजी क्या समझेंगे? रात को हम लोग छिपकर जायँगे।

निर्म्मल का वास्तव में बहुत ही ज़रूरी मुक़दमा था। और किसी बहाने इस तरह जाना रोका जा सकता है, यह उन्होंने नहीं सोचा था। ख़ासकर ससुर के साथ इससे विच्छेद हो जाने की भी आशङ्का है। सोचकर उन्होंने कहा—यह नहीं हो सकता हैम, आज ही जाना होगा। और सम्भव है कि हमारे बीच में पड़ने से उनकी विपत्ति और बढ़ जाय। मेरा कहना मानो, चलो। इस तरह अपने आप मध्यस्थ बनने से कल्याण की अपेक्षा अकल्याण ही अधिक होता है।

पति के मुँह की ओर दृष्टि करके हैम कुछ देर चुपचाप बैठी रही, फिर बोली—मुझे तो तुम पहचानते हो, आज मैं किसी हालत में नहीं जा सकती। अगर कल के अपराध के लिए मुझे सज़ा देना चाहो तो छोड़कर चले जाओ। मैं नहीं रोकूँगी।

निर्म्मल और कुछ न कहकर बाहर चले गये। "तबीयत अच्छी नहीं है, आज जाना नहीं होगा।" यह सुनकर सास को आश्चर्य हुआ, वे घबरा गईं और उससे भी अधिक प्रसन्न हुईं; परन्तु बाहर के कमरे में बैठे हुए ससुर एक बार "हूँ" कहकर तमाखू पीने लगे। उनको न तो आश्चर्य हुआ, और न घबराहट हुई। जिसे ज़रा भी अक़्ल है वह उनका मुँह देखकर ख़ुशी की बात को मुँह से भी नहीं निकालेगा।

मुक़दमे का इन्तज़ाम करने के लिए निर्म्मल ने तार दे दिया। यह काम उन्हें वृथा ही नहीं, बुरा भी मालूम होने लगा। परन्तु उसी दिनान्त की वे आग्रह के साथ प्रतीक्षा करने लगे। यद्यपि आज दिन भर में अनेक बार उनके मन में हुआ कि गत रात्रि का हैम का रोना कितनी हँसी का, कितना असम्भव से भी असम्भव था, तो भी वह एक बिन्दु आँसू आज मानो किसी तरह सूखना नहीं चाहता था, बल्कि प्रतिक्षण वह ऐसे एक अपूर्व रहस्य की सृष्टि करने लगा जो एक साथ माधुर्य और तिक्तता से मिलकर एकाकार हो उठा।

रात के अँधेरे में पिता की आँखों को धोखा देना असम्भव जानकर हैम, पति और अपने नौकर के साथ, जब षोड़शी

की झोपड़ी के सामने पहुँची तब शाम होने में विलम्ब था। षोड़शी एक कम्बल पर बैठी एकाग्र चित्त से किसी ग्रन्थ को पढ़ रही थी। सामने जूते की आहट पाकर उसने आँख उठाकर देखा और खड़े होकर कहा—"आइए। आओ बहिन, आओ।" उसने लपेटे हुए कम्बल को बिछा दिया।

आसन पर बैठकर पति-पत्नी दोनों ही कुछ देर तक चुपचाप देखते रहे, अन्त में हैम ने कहा—"बहिन के इस नये घर में और चाहे जो दोष हो किन्तु इसमें अपव्यय का अपवाद शिरोमणिजी या मेरे पिताजी तक नहीं दे सकते। इस अद्भुत वस्तु के देखने का लोभ देकर ही आज मैंने इन्हें रोक रक्खा है, नहीं तो मुझे साथ लेकर अब तक ये दोपहर की गाड़ी से यहाँ से चले गये होते।" पति से कहा—क्यों, यह बिना देखे चले जाते तो पीछे पश्चात्ताप करना पड़ता न?

निर्म्मल ने कहा—देखने पर भी पश्चात्ताप कुछ कम करना होगा, ऐसा भी तो मालूम नहीं होता।

पति के मुँह की ओर देखकर हैम बोली—"वह ठीक है। शायद आँखों से न देखना ही अच्छा था।" अब षोड़शी के शान्त मलिन मुख पर अपनी स्निग्ध कोमल दृष्टि जमाकर बोली—"हमने सब सुना है। परन्तु ऐसा पागलपन करने की क्या ज़रूरत थी? इस घर में तो तुम रह नहीं सकोगी बहिन।" आवेग और करुणा से उसका गला अन्तिम शब्द कहते समय काँप गया। परन्तु षोड़शी के गले से इसकी

प्रतिध्वनि नहीं निकली। उसने सहज भाव से कहा—अभ्यास हो जायगा। इससे भी बुरी हालत में कितने ही आदमियों को रहना पड़ता है। इसके सिवा पिताजी को बहुत कष्ट हो रहा था।

हैम ने पूछा—तो क्या तुमने सब कुछ छोड़ दिया?

इसका उत्तर दिया उसके पति ने। उन्होंने कहा—"इसके सिवा और उपाय ही क्या था? सारे गाँव से एक अबला स्त्री कहाँ तक लड़ सकती है?" षोड़शी से कहा—यही अच्छा है। अगर अपनी इच्छा से यहीं रहने का आपने निश्चय कर लिया हो, और विश्वास हो कि इस झोपड़ी में रहने का अभ्यास हो जायगा तब तो संसार में कुछ भी त्याग करना आपके लिए कठिन न होगा।

षोड़शी चुपचाप बैठी रही। उसके चेहरे से भी उसके मन की बात समझ में नहीं आई। हैम बोली—तुम संन्यासिन हो, धन-सम्पत्ति छोड़ना तुम्हारे लिए कोई कठिन काम नहीं है। मैं मानती हूँ कि इस झोपड़ी में भी तुम रह सकोगी; परन्तु इसके साथ जो झूठी बदनामी लगी रह गई क्या उसे भी सह लोगी बहिन?

षोड़शी मुसकुराती हुई दम भर चुप रही, फिर बोली—बदनामी अगर झूठी ही हो तो सहूँगी क्यों नहीं? हैम, संसार में झूठी बातों की कमी नहीं है, परन्तु उसका प्रतिवाद करने में जो झूठे कार्य किये जाते हैं उन्हीं का बोझ सहना कठिन है।

हैम ने कहा—परन्तु एककौड़ी नन्दी जिस बात और काम का झूठा ढिंढोरा पीट रहा है, वह तो स्त्रियों के लिए असह्य है।

षोड़शी तनिक भी उत्तेजित नहीं हुई। उसने धीरे-धीरे कहा—मैंने जहाँ तक सुना है, एककौड़ी ने झूठ तो कुछ अधिक नहीं कहा है। ज़मींदार बाबू एकाएक बहुत बीमार हो गये थे, घर में और कोई नहीं था—मैंने उनकी सेवा की थी। यह तो झूठ नहीं है।

हैम उद्दीप्त हो उठी। दूसरी की धीरता की तुलना में उसका कण्ठस्वर बहुत ही तीखा मालूम हुआ; उसने कहा—सब काम तो सब लोग कर नहीं न सकते बहिन। फिर रोगी की सेवा करने का भी कोई तरीक़ा है?

षोड़शी उसी तरह मृदु स्वर से बोली—"है क्यों नहीं! परन्तु स्थान और काल को न समझकर बाहर से ही यह तरीक़ा बतलाया नहीं जा सकता हैम। आपकी क्या राय है?" यह कहकर वह निर्म्मल की ओर देखकर ज़रा हँसी।

निर्म्मल ने इस इशारे को अच्छी तरह समझकर ही कहा—कम से कम मैं तो इनकार नहीं कर सकता। इसके सिवा काम करने का तरीक़ा सबका एक सा है भी नहीं—यही जैसे संन्यासिनी का।

पति की इस बात को हैम ने दूर तक सोचकर नहीं देखा, कहा—भले ही संन्यासिनी हो, परन्तु क्या उनका कोई धर्म

नहीं है? क्या वे स्त्री नहीं हैं? आपको वह ले तो गया घर से पकड़वाकर और आपने अपनी मर्जी से जाना स्वीकार कर लिया! इस मिथ्या की आवश्यकता क्या थी? उसकी बीमारी तो उसी की करतूत से है। तो भी ऐसे घोर पापी को बचाने का आपको क्या प्रयोजन था? इस पर अगर लोग सन्देह करें तो उनका क्या दोष है?

स्त्री की बात सुनकर निर्म्मल को क्षुब्ध और लज्जित होना पड़ा। उनको मालूम था कि तुहमत लगाने के लिए हैम घर से नहीं आई थी—मकान पर चढ़ आकर अपमान करने लायक़ क्षुद्र और ओछी वह नहीं थी, बल्कि कृतज्ञता जताकर वह इन्हें अच्छी तरह भरोसा देने के लिए ही आई थी; परन्तु बात ही बात में उसके मुँह से यह कैसी बात निकल गई! वह आत्मविस्मृत होकर और भी न कुछ कह बैठे, इस डर से घबराकर वे कुछ कहना चाहते थे, परन्तु आवश्यकता नहीं हुई। षोड़शी हँसकर बोली—"तुम्हारे पति ने कहा है कि संन्यासिनी का धर्म असंन्यासिनी से नहीं भी मिल सकता; यही जैसे इस झोपड़ी के अन्दर धूल और कूड़े के ऊपर तुम निराश्रय अकेली न रह सकोगी।" अब वह फिर हँसकर बोली—वास्तव में मुझे घर से घसीटकर कोई पकड़ नहीं ले गया था, मैं क्रोध के मारे स्वयं ही निकल पड़ी थी।

निर्म्मल ने कहा—परन्तु आपको भी क्रोध है, ऐसा तो नहीं मालूम होता।

षोड़शी ने हँसी दबाकर केवल "है क्यों नहीं" कहा। हैम से कहा—मैं उस पर तर्क नहीं करती; मैंने सचमुच झूठ कह दिया था। परन्तु क्या घोर पापी को भी बचाने का किसी को अधिकार नहीं है? तुम्हारे पति वकील हैं, किसी समय उनसे पूछ लेना।

निर्म्मल ने कहा—किसी समय साधारण बुद्धि से कुछ जवाब दे भी सकता हूँ, पर वकीली बुद्धि से तो कुछ भी नहीं सूझता।

षोड़शी ने कहा—सिवा इसके ऐसा भी तो हो सकता है कि वे होश में बहुत से काम करते ही नहीं—

हैम ने बात काटकर कहा—इसी लिए क्या अपने बाप के भी विरुद्ध हो जाना पड़ेगा? यह भी क्या संन्यासिनी का धर्म है?

षोड़शी ने क्रोध नहीं किया, मुसकुराकर कहा—संन्यासिनी का धर्म हो या न हो, परन्तु संसार में स्त्रियों की कम से कम ऐसी चीज़ रह सकती है जो बाप से भी बढ़कर है। अगर ऐसा न होता तो क्या तुम्हारे चरणों की रज इस टूटी झोपड़ी में पड़ती?

हैम ने घबराकर, सिर झुकाकर, उन्हीं की चरण-रज माथे में लगा ली और कहा—ऐसी बात मुँह से न निकालो बहिन। मेरे ससुर को किसी राजा ने एक तलवार ख़िलअत में दी थी। मैं बचपन में उसे निकाल-निकालकर अकसर देखती थी। उसकी मियान धूल चढ़ जाने से मलिन हो गई है परन्तु असली चीज़ में ज़रा भी मैल नहीं बैठा है। वह जैसी सीधी है,

वैसी ही कठिन है और वैसी ही असली है—तुम्हारी ओर ताकते ही मेरे मन में उसकी याद आ जाती है। मालूम होता है कि देश भर के लोग ग़लती कर रहे हैं, कोई कुछ नहीं जानता। तुम चाहो तो पल भर में उस मियान को निकाल-कर अलग फेंक सकती हो। क्यों नहीं फेंक देती हो बहिन ?

उसके दाहिने हाथ को अपने हाथ में लेकर कुछ देर तक षोड़शी चुपचाप बैठी रही, फिर बोली—आज तुम लोग जाने-वाले थे न, क्यों नहीं गये ! शायद कल जाओगे ?

अपने पति को दिखाकर हैम बोली—"कल रात को इन्हें किसी ने हाथ पकड़कर, नदी-वन-मैदान पारकर, घर के सामने पहुँचा दिया था। बाबूजी ने उन्हें पूरा एक रुपया इनाम देने को कहा है; परन्तु वह रुपया उनके हाथ नहीं लगेगा क्योंकि वे उन्हें ढूँढ़ नहीं सकेंगे। इस अन्धे मनुष्य को उस तरह अगर पहुँचाया न गया होता तो नतीजा क्या निकलता, वह भली भाँति मैं ही जानती हूँ; और पहुँचानेवाले का नाम भी मैं ही जानती हूँ। परन्तु रुपया-पैसा तो उन्हें दिया नहीं जा सकेगा, इसी कारण केवल चरण छूकर हृदय की कृतज्ञता जतलाने के लिए—" कहकर उसके अपना हाथ खींच लेने की चेष्टा करते ही षोड़शी अपनी मुट्ठी को कड़ी करके मुसकुराई।

बाँयें हाथ से अपनी आँखें पोंछकर हँसती हुई हैम बोली—चरण-रज नहीं देना बहिन, ज़रा मुट्ठी तो ढीली कर दो, मेरा हाथ टूटा जा रहा है। तुम्हारे मन की अपेक्षा

हाथ क्या कम सख़्त है। फ़ौलाद की तलवार क्या ऐसे ही याद आती है! परन्तु इतनी बात आज कह दो बहिन कि अगर कभी अपने आदमी की ज़रूरत पड़े तो इस प्रवासी छोटी बहिन को याद करोगी।

षोड़शी उसके हाथ पर धीरे-धीरे अपना हाथ फेरने लगी, कुछ बोली नहीं।

हैम ने पूछा—तो वचन नहीं देना चाहती हो?

षोड़शी ने कहा—बहन, मैं ऐसा काम कैसे करूँगी जिसमें मेरे कारण बाप-बेटी में झगड़ा हो?

निर्म्मल ने कहा—वैर-विरोध न करके भी तो बहुत काम किये जा सकते हैं।

षोड़शी बोली—मेरा कहना है कि ऐसा काम करने की चेष्टा की भी आपको आवश्यकता नहीं। परन्तु इसलिए मैं अपनी इस प्रवासी बहिन को कभी भूलूँगी नहीं। मेरा समाचार आपको मिलेगा।

नौकर अब तक बाहर चुपचाप बैठा था। उसने कहा—कल की तरह आज भी आँधी-पानी का डर है माजी! बादल उमड़ रहा है।

बाहर झाँककर देखते ही हैम ने प्रणाम किया। अब की पैरों की धूल माथे में लगाकर वह खड़ी हो गई। निर्म्मल ने हाथ उठाकर नमस्कार करते हुए कहा—मैं तो ऋणी ही रह गया, उऋण होने का कोई उपाय नहीं। अदालती आदमी

हूँ, ज़मीन-जायदादवाली भैरवी के काम में आ भी सकता था, पर झोपड़ी की संन्यासिनी हमारे हाथ के बाहर है। सब छोड़ने के सिवा कोई उपाय नहीं था; परन्तु भरोसा नहीं होता कि छोड़ने पर भी कोई उपाय होगा।

षोड़शी खड़ी होकर बोली—किसने कहा, मैंने सब छोड़ दिया है? मैंने तो कुछ भी नहीं छोड़ा है।

निर्म्मल और हैम दोनों ही विस्मित होकर एक ही साथ बोल उठे—नहीं छोड़ा है? किसी स्वत्व को भी नहीं छोड़ा है?

षोड़शी वैसे ही शान्त भाव से बोली—नहीं, कुछ भी नहीं। मैं अबला स्त्री, निरुपाय हूँ सही, परन्तु मेरा भैरवी का अधिकार तनिक भी शिथिल नहीं हुआ है। वे मर्द हैं, उनमें बल है, परन्तु उस बल को जब तक वे सोलहों आने प्रमाणित न कर लेंगे तब तक मेरे हाथ से कुछ भी पाने का उन्हें अधिकार नहीं है—मिट्टी का एक ढेला तक नहीं। निर्म्मल बाबू, मैं स्त्री हूँ, परन्तु इसी को जिन लोगों ने संसार में सबसे बड़ा अपराध मान रक्खा है उन्होंने भूल की है। इस भूल का उन्हें संशोधन करना पड़ेगा।

बात सुनकर दोनों ही सन्नाटे में आ गये। घर में दिया नहीं जलाया गया था। इससे अँधेरे में उसकी क्षीण देह की ऋजुता के सिवा उसकी आँखें या मुख कुछ भी दिखाई नहीं पड़ा। परन्तु उन दोनों के अन्तःकरण में जाकर यह बात बैठ गई कि उस शान्त और दृढ़ कण्ठ से यह निरी धमकी नहीं निकली है।

थोड़ी दूर पर, रास्ते के मोड़ के पास, शोर-गुल सुनाई दिया। आगे और पीछे कई लालटेनों के साथ दो पालकी की सवारियाँ जा रही थीं।

अँधेरे में तीक्ष्ण दृष्टि से देखकर निर्म्मल ने कहा—मालूम होता है, ज़मींदार बाबू आज ही पधारे हैं।

षोड़शी अचम्भे में आकर भीतर से बोल उठी—"ज़मींदार बाबू? क्या उनके आने की ख़बर थी?" अब वह दरवाज़े के पास आ खड़ी हुई।

निर्म्मल ने कहा—हाँ, उनके नदी-किनारे के नरककुण्ड की सफ़ाई हो रही थी। एककौड़ीकहता था कि हवा-पानी बदलने के लिए हुज़ूर एक ही दो दिन के अन्दर अपने राज्य में पधारेंगे। हुआ भी वही।

षोड़शी चुपचाप वहीं खड़ी रही। बिदा लेकर निर्म्मल धीरे-धीरे बोले—"हम कितनी ही दूर क्यों न रहें, आप अपने को एकदम निरुपाय या निराश्रय न समझें।" अब वे हैम का हाथ पकड़कर अँधेरे में आगे बढ़ गये। षोड़शी वैसी ही चुपचाप खड़ी रही। उसने इस बात का भी कुछ उत्तर नहीं दिया।

१२

बड़े भारी मन्दिर की प्राचीर के नीचे जीवानन्द चौधरी की दोनों पालकियाँ पल भर में अदृश्य हो गईं। उस घने अँधेरे में दो-एक लालटेनों के उजेले से मनुष्य को कुछ भी

नहीं सूझता, परन्तु षोड़शी को ऐसा मालूम हुआ, मानो उसने उस आदमी को दिन की तरह स्पष्ट देख लिया। और अकेला वही नहीं, किन्तु उसके पीछे जो ग़िलाफ़ से ढकी हुई पालकी गई है उसके भीतर जो बैठी हुई है उसकी भी साड़ी का काला चौड़ा किनारा खुले द्वार से लटक रहा है, ऐसा उसे प्रत्यक्ष सा दिखाई देने लगा। उसके हाथ के कङ्गन की सुनहरी किरण लालटेन के उजाले से झलक गई, इसमें भी उसको संशय नहीं रहा। उसके कानों में हीरा-जड़े करनफूल झिलमिला रहे हैं। उसकी उँगली की अँगूठी में हरा नग चमक रहा है—सहसा उसकी कल्पना बाधा पाकर रुक गई। उसको याद पड़ा कि यह सभी पहने उसने अभी हैम को देखा है। याद पड़ते ही वह इस अँधेरे में लज्जा से संकुचित हो उठी। चण्डी माता! चण्डी माता! कहकर उसने चौखट में सिर लगा करके मन्दिर के उद्देश्य से प्रणाम किया और सारी चिन्ताओं को ज़बर्दस्ती हटाकर खपरैल के भीतर आते ही और दो मनुष्यों की चिन्ता से उसका हृदय पूर्ण हो गया। थोड़ी देर पहले, बातचीत के अन्दर, आँधी-पानी की सम्भावना सुनकर उसका चित्त चञ्चल हो उठा था। ऊपर के बिखरे हुए काले-काले बादलों ने आकाश को घेर लिया, शायद अभी अन्धड़ बहने लगे और पानी बरसना शुरू हो जाय। कल की रात का आधा दुःख तो उसके सिर पर से ही बीता है, बाक़ी पिछली रात भी उसने मन्दिर के बन्द द्वार के पास खड़े

होकर ही बिताई है। इस तरह का शारीरिक क्लेश सहने का उसको अभ्यास नहीं था—देवी की भैरवी को यह सब भोगना भी नहीं पड़ता था—तो भी कल उसे इसका दुःख मालूम नहीं पड़ा। जो मकान, जो घर-द्वार अपनी इच्छा से वह अभागे पिता को दे आई है उसके बारे में आज दिन भर में कभी उसके मन में चिन्ता नहीं हुई, परन्तु अब एकाएक उसका मन घबराने लगा। गाँव के बाहर, इस सुनसान स्थान में, टूटे-फूटे सीलयुक्त घर के भीतर वह अकेली किस तरह रात बितावेगी ? उसने अपने चारों ओर नज़र घुमाकर देखा। टिमटिमाते दीपक के उजेले से घर के कोने-कोने का अँधेरा नहीं हटा है, वहाँ मूसों के बिल मानो काली काली आँखें खोलकर देख रहे हैं। इन्हें बन्द करना होगा। सिर के ऊपर, छप्पर में, सैकड़ों छेद हैं, थोड़ी देर में बारिश होते ही उनमें से लगातार पानी गिरने लग जायगा। खड़े होने को ज़रा सी जगह तक न रहेगी। आदमी बुलाकर इसकी मरम्मत करानी होगी। किवाड़ का ब्योंड़ा सड़ गया है, इसको बदलवाना सबसे ज़रूरी है; परन्तु दिन रहते इन पर ध्यान ही नहीं दिया, यह याद पड़ते ही वह चौंक उठी। इस अरक्षित, ख़ाली पड़ी हुई पर्णकुटी में—आज ही नहीं—सदा रहना पड़ेगा। उसको याद आई कि अभी, बिदा के पहले क्षण में, निर्म्मल के प्रश्न के उत्तर में कुछ कहा नहीं गया है। शायद उनसे जल्दी भेंट भी न हो। मुझे उन्होंने भरोसा

दिया है कि अपने को मैं बिलकुल असहाय न समझूँ। शायद हज़ारों कामों के अन्दर उन्हें यह बात याद भी न आवे। बहुत दूर पश्चिम के किसी शहर में रहकर वे मदद ही कैसे करेंगे और उस मदद को लेने का ही क्या अधिकार है? फिर हैम याद पड़ी। जाते समय उसने एक भी बात नहीं कही, परन्तु पति के बुलाने से जब वह उनका हाथ पकड़कर आगे बढ़ने लगी तब मानो वह उनकी हरेक बात का चुपचाप अनुमोदन करती गई। इसलिए अगर पति भूल भी जायँ, तो भी स्त्री उन बातों को नहीं भूलेगी। इसका विश्वास षोड़शी को भीतर ही भीतर हो गया।

षोड़शी के साथ उसका परिचय बहुत दिन का नहीं है, ज़्यादा घरौवा भी नहीं। तो भी जब वह किसी प्रकार किवाड़ बन्द कर, कम्बल बिछाकर, धरती पर बैठी तब इसी लड़की की बात बार-बार सोचने लगी। पहले ही दिन उसने अयाचित भाव से मेरे दुःख का अंश लेकर गाँव भर की विरुद्ध शक्ति के विरुद्ध, अपने पिता के विरुद्ध, शायद और भी एक आदमी के विरुद्ध गुप्त रूप से लड़ाई की थी, उसके चले जाने पर कल मेरे पास खड़े होने लायक़ कोई भी न रहेगा; दिन पर दिन प्रतिकूलता बढ़ती ही जायगी, ज़रा सा ढाढ़स देने के लिए भी आदमी न मिलेगा; और यह पता ही नहीं कि यह बखेड़ा कहाँ जाकर ख़तम होगा। ऐसे ही इस सुनसान झोपड़े में चारों ओर के घोर अँधेरे के बीच चुपचाप

अकेली बैठकर वह जल्द ही अपने ऊपर आनेवाली निश्चित विपत्ति के चित्र को छान-बीनकर देखने लगी; परन्तु किसी नये भाव की तरङ्ग उसके सारे उपद्रव की आशङ्का को हटाकर उसके चित्त के भीतर उमड़ने लगी—यह उसको मालूम भी न हुआ। अब तक उसने अपने जीवन को जिस तरह से पाया उसी तरह से बिताया। वह है चण्डी की भैरवी; उसकी ज़िम्मेवरी है, कर्तृत्व है, सम्पत्ति है, विपत्ति है; स्मरणातीत काल से इस मन्दिर की अधिकारिणियों के चलने-फिरने से जो राह बन गई है, वह कहीं तङ्ग है, कहीं चौड़ी है; राह में कोई अधिकारिणी तो सीधी चली है और किसी का टेढ़ा-मेढ़ा पदचिह्न परम्परागत इतिहास के अङ्क में विद्यमान है। इस इतिहास के अलिखित पन्ने कहीं तो लोगों की कही हुई सदाचार की पुण्य कहानी से उज्ज्वल हैं और कहीं व्यभिचार की ग्लानि से मलिन हैं, तो भी भैरवी-जीवन की निर्दिष्ट धारा कहीं तनिक भी नहीं टूटी है। सहज और सुगम, दुर्गम और जटिल अनेक तरह की राहों से उन्हें गुज़रना पड़ा है, उसमें सुख और दुःख का पचड़ा भी थोड़ा नहीं है; परन्तु क्यों, किसके लिए—यह प्रश्न भी शायद किसी ने आज तक नहीं किया या इस प्रचलित मार्ग को छोड़कर कोई नया रास्ता ढूँढ़ने के लिए भी किसी ने चेष्टा नहीं की। भाग्य-निर्दिष्ट इस परिचित मार्ग से ही षोड़शी के जीवन के ये बीस वर्ष बीत गये, इसी को वह भैरवी-जीवन निःसन्देह मानती आई है;

उसने एक दिन के लिए भी अपने जीवन को नारी-जीवन नहीं माना है। दूर और समीप के बहुत से गाँवों और नगरों के असंख्य नर-नारी उसे चण्डी की सेविकारूप से ही पहचानते हैं। छोटी, बड़ी या समान उम्र की कितनी ही स्त्रियों के तरह-तरह के सुख-दुःख की, तरह-तरह की आशा-आकांक्षाओं और विफलताओं की, वह निर्वाक् और निर्विकार साक्षी बनी है;—देवी की कृपा प्राप्त करने के लिए बहुत दिनों से कितनी ही बातें इन स्त्रियों ने उसके सामने मृदु कण्ठ से प्रकट की हैं, दुःखी जीवन की दैन्य दशा के चित्र उसकी आँखों के सामने प्रकट कर प्रसाद—आशीर्वाद—की प्रार्थना की है—यह सभी उसको मालूम है; उसे यही मालूम नहीं हुआ है कि रमणी-हृदय के किस अन्तरतम प्रदेश से इन करुण अभावों और अभियोगों की वाणी इतने दिनों तक उसके कानों में आकर पहुँचती रही है। इनकी बनावट और प्रकृति ऐसे किसी पृथक् जगत् की चीज़ है जिसके जानने या पहचानने का हेतु अथवा प्रयोजन कभी उसको नहीं हुआ। उसी प्रयोजन का प्रथम आघात आज इस सुनसान अँधेरे घर में उसको मालूम होने लगा। कल रात में उसने आँधी-पानी के भीतर निर्म्मल को हाथ पकड़कर घर पहुँचा दिया था, शायद दो आदमियों के सिवा और किसी को यह बात मालूम ही न थी और अभी जो उस स्वल्प-दृष्टि मनुष्य के बुलाते ही हैम चुपचाप चली गई, यह भी शायद इन दो-तीन आदमियों के सिवा और कोई नहीं

जानेगा; परन्तु कल और आज के इस एक ही प्रकार के कार्य में कितना अन्तर है !

फिर एक बार उसकी आँखों के ऊपर हैम की साड़ी के काले किनारे से लेकर उसकी उँगली की हरी अँगूठी और उसके कानों के हीरे के करनफूल तक सब चमक गया और उस दुर्भेद्य अन्धकार को चीरकर उसकी अभ्रान्त अतीन्द्रिय दृष्टि, दृष्टि से ओझल, उस रमणी का अनुसरण कर चलने लगी। उसने देखा कि स्वामी का हाथ छोड़कर अब उसे छिपकर घर में घुसना होगा; वहाँ उसे चिन्तित और व्याकुल माता-पिता के सैकड़ों तिरस्कार तथा कैफ़ियत का बिना ही कुछ उत्तर दिये चुपचाप सिर झुकाये अपने कमरे में जाकर आश्रय लेना पड़ेगा; वहाँ शायद उसका लड़का नींद से जागकर बिस्तरे पर बैठा रो रहा होगा, उसे शान्त कर फिर से सुलाना होगा; परन्तु क्या यहीं छुट्टी मिल जायगी ? तब भी कितने ही काम रह जायँगे। छिपकर पति के भोजन पर नज़र रखनी होगी ताकि कुछ कसर न रह जावे। लड़के को उठाकर दूध पिलाना होगा—कहीं वह भूखा न रह जाय;—फिर स्वयं भी थोड़ा सा खाकर किसी तरह बाक़ी रात बिता करके सवेरे उठकर जाने की तैयारी करनी पड़ेगी। उसे तरह-तरह का प्रयोजन है, सामान सहेजना-समझाना है। उसके पति, पुत्र, नौकर-चाकर सब लोग उसी के भरोसे रवाना होंगे। लम्बे सफ़र में किसको क्या चाहिए, वह उसी को देना होगा,

सब चीज़ बटोरकर साथ लेनी पड़ेगी। षोड़शी ने कभी किसी के साथ अपने जीवन की तुलना करके नहीं देखा था, उसकी आलोचना करने की कभी आवश्यकता ही नहीं हुई, तो भी न मालूम कब किसने गृहिणी का सारा दायित्व, जननी का सब कर्तव्य उसके हृदय के भीतर सुनिपुण हाथ से सजा दिया है। इसी से कुछ न जानकर भी वह सब जानती है; कभी कुछ न सीखकर भी वह हैम के सब काम उसी की तरह, बिना ही भूल किये, कर सकती है, यही उसको मालूम हुआ।

कोने में एक लकड़ी के ऊपर रक्खा हुआ मिट्टी का दिया टिमटिमा रहा था, उसे ज़रा उसकाते ही षोड़शी को एकाएक याद पड़ी कि वह चण्डीगढ़ की भैरवी है। इतनी बड़ी सम्मानिता और गरीयसी नारी इस प्रदेश में और कोई नहीं है। उसने एक मामूली स्त्री की तरह साधारण गृहस्थी की तुच्छ आलोचना में अपने को क्षण भर के लिए विह्वल कर लिया था, यह सोचकर वह लज्जा से सिकुड़ गई। यही कुशल है कि घर में और कोई नहीं था, क्षण भर की इस दुर्बलता को संसार में और कोई नहीं जान सकेगा। चण्डी माता के उद्देश्य से उसने हाथ जोड़े हुए सिर झुकाकर प्रार्थना की—माँ, वृथा चिन्ता में समय बीत गया, तुम क्षमा करना।

मालूम नहीं कि रात कितनी बीत चुकी है। अटकल से समझा कि आधी रात बीती होगी। अब कम्बल को और ज़रा सा फैला करके तथा दिया में और थोड़ा सा तेल डाल-

कर वह लेट गई। थकावट के कारण नींद आने में विलम्ब न होता, परन्तु द्वार के पास बाहर किसी की आहट पाते ही वह चौंककर बैठ गई। हवा भी ज़रा ज़ोर से चलने लगी थी। शायद कुत्ता बिल्ली हो, तो भी थोड़ी देर कान खड़े रखकर उसने डरते-डरते पूछा—कौन है?

बाहर से आवाज़ आई—डरो नहीं माँजी, तुम सो रहो, मैं सागर हूँ।

"इतनी रात में तू क्यों आया रे?"

सागर ने कहा—हर चाचा ने कह दिया कि ज़मींदार आये हैं, रात की हालत भी ठीक नहीं। माँ जी अकेली हैं। जा सागर, लाठी लिये हुए वहाँ जाकर थोड़ी देर बैठ। तुम लेट जाओ माँ जी, पव फटने के पहले मैं यहाँ से हटूँगा नहीं।

षोड़शी आश्चर्य के साथ बोली—अगर ऐसा ही हो तो तू अकेला क्या करेगा बेटा?

बाहर का आदमी तनिक हँसकर बोला—अकेला क्यों हूँ माँ जी, आवाज़ देकर चाचा को बुला लूँगा। चचा-भतीजे के हाथ में लाठी रहने से—जानती हो न माता? परन्तु क्या करूँ, उस दिन की शर्म से ही मरा जा रहा हूँ—अगर ज़रा हुक्म भेज देतीं माजी!—

इन दोनों चचा-भतीजे—हरिहर और सागर—को एक बार डकैती के इलज़ाम में दो साल की सज़ा हुई थी। जेल के

भीतर इनकी हालत कुछ अच्छी भी थी, परन्तु वहाँ से रिहाई पाने पर एक तरफ़ ज़मींदार के और दूसरी ओर पुलीस-कर्मचारियों के अत्याचार का अन्त न था। कहीं कुछ होता तो दोनों ओर की खींचा-तानी से बेचारों के प्राण आफ़त में पड़ जाते थे। न तो बाल-बच्चों को लेकर ये लोग शान्ति से रह सकते और न देश छोड़कर कहीं भाग ही सकते थे। इस तरह के अकारण अत्याचार और पीड़न से षोड़शी ने इनकी थोड़ी सी रक्षा की थी। बीजगाँव की ज़मींदारी से हटवाकर उसने इन्हें अपनी ज़मीन में बसाया था और पुलीस को भी हर तरह से प्रसन्न कर लिया था जिससे इनका जीवन अब ज़रा सुख से बीतने लगा था। उस दिन से डकैती के लिए बदनाम ये दोनों परम भक्त षोड़शी की सब तरह की आपत्ति-विपत्ति में सहायक हैं। नीच जाति और अछूत होने के कारण वे सङ्कोच के मारे दूर-दूर ही रहते थे; षोड़शी ने भी कभी पास बुलाकर हेल-मेल बढ़ाने का प्रयत्न नहीं किया था। उसने बराबर अनुग्रह ही किया है, कभी उनसे कुछ एहसान नहीं लिया, शायद उसकी ज़रूरत भी नहीं हुई। आज इस सुनसान रात के अँधेरे में, संशय और सङ्कट के भीतर, उनके इस आडम्बरहीन स्नेह और निःशब्द-सेवा की चेष्टा से षोड़शी की आँखों में आँसू भर आये। आँसू पोंछकर उसने पूछा—सागर, तुम्हारी जाति में भी शायद मेरे बारे में कुछ चर्चा चलती है। कौन क्या कहता है?

बाहर से सागर ने तमककर जवाब दिया—क्या, हमारे सामने! एक झापड़ मारूँगा तो बेईमानों को भागने के लिए जगह न मिलेगी।

षोड़शी को लज्जा मालूम होने लगी कि इस आदमी से ऐसा प्रश्न करना ठीक नहीं था। इसलिए इस बात को और न बढ़ाकर वह चुप हो रही। परन्तु नींद भी नहीं आती थी। बाहर एक आदमी बादलों के गहरे जमघट के नीचे ऐसी अँधेरी रात में अकेला उसी के पहरे पर बैठा है, यह जानने से ही आराम से सोने की सुविधा नहीं होती। इसलिए थोड़ी देर चुप रहकर वह फिर बोली—अगर पानी बरसने लगे तो तुझे बड़ी तकलीफ़ होगी सागर! यहाँ तो ठहरने को जगह भी नहीं है।

सागर ने कहा—नहीं है तो न सही माँजी। रात ज़्यादा नहीं है। पानी में पहर दो पहर भीगते रहने से हम लोगों को कुछ भी नहीं होता।

वास्तव में इसका कुछ उपाय नहीं था। इसलिए और थोड़ी देर चुप रहकर षोड़शी ने दूसरी चर्चा छेड़ी। कहा—अच्छा, क्या तुम लोगों ने सचमुच विश्वास कर लिया कि, ज़मींदार के आदमी मुझे उस दिन घर से ज़बरदस्ती पकड़ ले गये थे?

सागर ने पश्चात्ताप के स्वर में कहा—क्या करोगी माँजी, तुम अकेली औरत हो। यहाँ मर्द भी तो कोई नहीं है। उस

दिन हम दोनों चचा-भतीजे तब तक हाट से नहीं लौटे थे। नहीं तो किसकी मजाल थी कि तुम्हारे शरीर पर हाथ उठाता।

षोड़शी ने सोचा कि यह चर्चा भी ठीक नहीं हो रही है। बात ही बात में न मालूम कौन सी बात सुननी पड़े। परन्तु रुक भी नहीं सकी, बोली—उनके आदमी बहुत से थे, तुम दोनों उन्हें कैसे रोकते?

बाहर से सागर ने मुँह से एक तरह की अस्फुट ध्वनि करके कहा—क्या कहूँ माँजी, मन का दुःख ही बढ़ेगा। हुजूर आ गये हैं, हम भी सब जानते हैं। माता की कृपा से अगर फिर कभी मौक़ा मिले तो उसका जवाब दूँगा। तुम यह न समझो माँजी कि हर चचा बुड्ढे हो गये हैं तो मर ही गये हैं। उनकी ताक़त मालूम थी मातु भैरवी को और मालूम है शिरोमणि महाराज को। माना कि ज़मींदार के आदमी बहुत हैं, और ग़रीब देखकर उन्होंने हम लोगों पर .ज़ुल्म भी कम नहीं किया, वह भी याद है—हम लोग छोटे आदमी हैं, अपने लिए फ़िक्र नहीं है—परन्तु तुम्हारा हुक्म हो जाय तो भैरवी के बदन पर हाथ उठाने का मज़ा चखा दे सकते हैं। गले में रस्सी डालकर रातों-रात हुजूर को देवी के सामने लाकर बलिदान कर सकते हैं, किसी माई के लाल की मजाल नहीं कि रोक सके।

षोड़शी भीतर ही भीतर काँप उठी, बोली—तू क्या कहता है रे सागर? तुम लोग इतने निर्दय, इतने भयङ्कर हो सकते

हो ? इतनी सी बात के लिए तुम्हें एक आदमी की हत्या करने की इच्छा होती है ?

सागर ने कहा—इतनी सी बात! इतनी सी बात के लिए ही तुम्हारी यह दशा हुई है! ज़मींदार के आने की ख़बर सुनकर चचा आग की तरह जलने लगे। तुम घबराओ नहीं माँजी, फिर कभी कुछ होगा तो वह इतने से में रुका नहीं रहेगा।

षोड़शी ने पूछा—"अच्छा सागर, तूने कभी गुरुजी की पाठशाला में पढ़ा था ?" बाहर बैठकर सागर मानो शर्मा गया, बोला—तुम्हारी कृपा से थोड़ा-थोड़ा रामायण, महाभारत पढ़ सकता हूँ। पर यह बात क्यों पूछी माँजी ?

षोड़शी ने कहा—तुम्हारी बातों से मालूम होता है कि तुम्हारे चचा शायद न भी समझें, परन्तु तुम समझ सकोगे। उस दिन मुझे कोई पकड़ नहीं ले गया था, किसी ने मेरे शरीर पर हाथ नहीं उठाया था; ग़ुस्से के मारे मैं ख़ुद ही चली गई थी।

सागर ने कहा—हम लोगों ने भी यही सुना है। पर रात भर जो घर नहीं लौटीं, वह भी क्या ग़ुस्से के ही मारे ?

षोड़शी ने इस प्रश्न का ठीक उत्तर न देकर कहा—परन्तु जिससे तुम लोगों को इतनी नाराज़ी है वह अपनी दशा मैंने अपने आप कर ली है। मैं तो अपनी ही इच्छा से मकान पिताजी को देकर यहाँ रहने लगी हूँ।

"परन्तु इतने दिन तक तो इस खपरैले में आश्रय लेने की इच्छा नहीं हुई थी माँजी।" ज़रा चुप रहकर एकाएक

सागर का स्वर बहुत तीखा और तेज़ हो उठा। उसने कहा—न तो हमें तारादास महाराज पर ही गुस्सा है, और न हम राय बाबू से ही कुछ कहेंगे, परन्तु ज़मींदार को हम लोग मौक़े से पा जायँगे तो छोड़ेंगे नहीं। तुम नहीं जानती हो माँजी, विपिन की उसने क्या गत की है? वह घर में नहीं था—ज़मींदार के आदमी उसके घर में घुसकर—

षोड़शी ने उसे तुरन्त रोककर कहा—रहने दे सागर, वह ख़बर मुझे मत सुना।

सागर चुप हो गया। षोड़शी ने भी देर तक और कुछ नहीं पूछा। 'फिर सागर जब बोला तब षोड़शी ने उसके कण्ठस्वर में गूढ़ आश्चर्य के आभास का स्पष्ट अनुभव किया। सागर ने कहा—माँजी, हम लोग तुम्हारी प्रजा हैं। हमारा दुःख तुम न सुनोगी तो कौन सुनेगा?

षोड़शी ने कहा—सुनकर भी उतने बड़े ज़मींदार के विरुद्ध मैं कुछ प्रतिकार न कर सकूँगी बेटा!

सागर ने कहा—एक बार तो किया था। फिर ज़रूरत हो तो तुम्हीं कर सकोगी। तुम न कर सको तो हमारी रक्षा करनेवाला और तो कोई नहीं है माँजी।

षोड़शी ने कहा—अगर कोई नई भैरवी हो तो उसी को तुम अपना दुःख बतलाना।

सागर ने चौंककर कहा—"तो क्या तुम सचमुच हमें छोड़कर चली जाओगी माँजी? गाँव के सभी तो यही

बातचीत कर रहे हैं—" वह एकाएक रुक गया। परन्तु षोड़शी से इस प्रश्न का कोई उत्तर तुरन्त देते नहीं बना। थोड़ी देर के बाद षोड़शी धीरे-धीरे बोली—देखो सागर, तुम्हारे सामने यह बात कहने में लज्जा से मेरा सिर कटा जाता है। पर मेरे बारे में तो तुमने सब कुछ सुन लिया है। गाँव-वालों की तरह तुम लोगों ने भी, देखती हूँ, विश्वास कर लिया है,—उसके बाद भी क्या मुझे ही तुम लोग भैरवी बनाये रखना चाहते हो ?

बाहर बैठे-बैठे सागर ने धीरे-धीरे उत्तर दिया—बहुत सी बातें सुनता हूँ माँजी, और आदमियों की तरह हमें भी मालूम नहीं होता कि, उस दिन तुम घर क्यों नहीं लौटीं और किस-लिए सवेरे साहब के हाथ से तुमने ज़मींदार को बचा लिया। ख़ैर, जाने दो उस बात को माँजी। हम दो-चार घर के छोटे आदमियों ने तुम्हीं को अपनी माँ समझ रक्खा है, जहाँ कहीं तुम जाओ वहीं हम लोग भी साथ चलेंगे। परन्तु जाने के पहले अच्छी तरह बतला जायँगे।

षोड़शी ने कहा—परन्तु तुम लोग मेरी प्रजा नहीं हो, तुम तो माँ चण्डी की प्रजा हो। देवी की दासियाँ, मेरी ऐसी, कितनी ही हुई हैं और कितनी ही होंगी। उसके लिए तुम लोग क्यों घर-द्वार छोड़कर जाओगे, और किसलिए उपद्रव मचाओगे ? यह भी तो हो सकता है कि ख़ुद मुझी को यह सब अच्छा नहीं लग रहा है।

सागर ने अकचकाकर पूछा—अच्छा नहीं लगता ?

षोड़शी ने कहा—आश्चर्य की क्या बात है सागर! मनुष्य का मन क्या बदल नहीं जाता ?

इस बार वह सिर्फ़ "हूँ" कहकर चुप हो गया। फिर थोड़ी देर के बाद बोला—पर अब रात ज़्यादा नहीं है माँजी! आकाश भी साफ़ हो रहा है, अब तुम ज़रा सो जाओ।

ख़ुद षोड़शी को भी यह चर्चा अच्छी नहीं लग रही थी, इसके सिवा वह बहुत थक भी गई थी। सागर के कहने पर वह चुपचाप आँखें मूँदकर लेट गई। परन्तु जब तक नींद नहीं आई तब तक सागर की ही बात घूम-फिरकर याद आने लगी। यह जो आदमी रात भर जागता हुआ बाहर बैठा है, इसे वह बचपन से ही देखती आई है। अन्त्यज होने के कारण अब तक उससे तुच्छ और नीच काम ही लिया गया है, किसी दिन कोई सम्मान का स्थान उसको नहीं दिया गया। उसके साथ बैठकर समान रूप से बातचीत करने की कल्पना भी अब तक किसी को नहीं हुई; परन्तु आज इस दुःख की रात्रि में बहुत सी बातें जान-बूझकर ही उसके मुँह से निकल गई हैं और शायद परिणाम में इसकी भलाई-बुराई का हिसाब लगाने की भी आवश्यकता हो सकती है। परन्तु श्रोता की हैसियत से इस आदमी को वह आज बहुत नीच न समझ सकी।

दूसरे दिन नींद टूटते ही किवाड़ खोलकर बाहर आई तो उसने देखा कि दिन चढ़ आया है; और थोड़ी दूर पर बहुत

से आदमी उसी के बन्द दरवाज़े की ओर टुकुर-टुकुर देखते हुए किसी तमाशे की प्रतीक्षा कर रहे हैं। कहीं ज़रा सी ओट या पर्दा नहीं है। एकाएक उसके मन में आया कि अभी किवाड़ न लगा लूँ तो इन लोगों की उत्सुक दृष्टि से अपने को बचा नहीं सकूँगी। यह छोटा सा खपरैला कितना ही जीर्ण और कितना ही टूटा-फूटा क्यों न हो, परन्तु अपने बचाव के लिए इसके सिवा संसार में और दूसरा स्थान नहीं है।

इतने में षोड़शी ने देखा कि भीड़ में से निकलकर एक-कौड़ी नन्दी उसके सामने आ खड़ा हुआ। उसने बिनती के साथ कहा—गाँव में हुज़ूर पधारे हैं, आपने सुना होगा।

ज़मींदार के गुमाश्ते इस एककौड़ी ने इससे पहले कभी षोड़शी को 'आप' नहीं कहा था। उसका यह विनय, उसके सम्भाषण का यह ढङ्ग षोड़शी को बहुत अखरा। परन्तु कुछ उत्तर पाने के पहले ही उसने फिर सम्मान के साथ कहा—हुज़ूर ने आपको एक बार याद किया है।

"कहाँ?"

"यहीं कचहरी में। सवेरे से ही आकर किसानों की नालिश सुन रहे हैं। आज्ञा हो तो पालकी भेज दूँ।"

सब लोग विस्मित होकर सुन रहे थे; षोड़शी ने समझा कि मानो ये लोग इसी बात पर हँसी दबाने की चेष्टा कर रहे हैं। उसका हृदय आग की तरह जलने लगा, पर उसी दम

अपने को सँभालकर उसने पूछा—एककौड़ी, यह उन्हीं का प्रस्ताव है या तुम्हारी बुद्धिमानी है ?

एककौड़ी अदब के साथ बोला—मैं तो नौकर हूँ, यह ख़ुद हुज़ूर की आज्ञा है।

षोड़शी ने हँसकर कहा—तुम्हारे हुज़ूर की तक़दीर अच्छी है। इससे जेल में कोल्हू पेलने के बदले न केवल स्वयं पालकी पर सवार हो सैर कर रहे हैं, बल्कि दूसरे के लिए भी उन्होंने उसका इन्तज़ाम किया है। कह दे जाकर एककौड़ी, मुझे पालकी पर चढ़ने की फ़ुरसत नहीं है—मुझे बहुत काम हैं।

एककौड़ी ने कहा—तीसरे पहर या कल सवेरे भी क्या ज़रा सी फ़ुरसत न होगी ?

षोड़शी ने कहा—नहीं।

एककौड़ी ने कहा—परन्तु फ़ुरसत होती तो अच्छा होता। और भी दस असामियों की नालिश है।

षोड़शी ने कड़े स्वर से उत्तर दिया—"फ़ैसला करने लायक़ बुद्धि हो तो वे अपने असामियों के झगड़े फ़ैसला करें। मैं तो तुम्हारे हुज़ूर की असामी नहीं हूँ। मेरे फ़ैसले के लिए सरकारी अदालत है।" अब वह हाथ का अँगौछा कन्धे पर रखकर तेज़ी से तालाब की तरफ़ चल पड़ी।

१३

ज़मींदार के इस निर्जन निकेतन को झाड़-पोंछकर सजाने में तीन-चार दिन लग गये। लोग कहते हैं कि इस बार

हुजूर दो महीने तक चण्डीगढ़ में ठहरेंगे। आज सवेरे से ही उत्तर की ओर के बड़े कमरे में मजलिस बैठी है। फ़र्श कार्पेट से मढ़ा है, उस पर जाजम बिछी हुई है, बीच-बीच में इधर-उधर दो-चार मोटे-मोटे तकिये पड़े हैं। कमरे में एक तरफ़ गाँव के प्रधान लोग क़तार बाँधे बैठे हैं—ज़मींदार के पास उनकी बड़ी भारी एक नालिश है। राय महाशय हैं, शिरोमणि हैं, जोगेन बाबू और मित्तिर भइया हैं, यहाँ तक कि तारादास चक्रवर्ती भी उन्हीं की ओट में, सिर झुकाये, पर कान खड़े किये, सावधानी से बैठा हुआ है। और भी जो लोग थे उनमें यद्यपि नाचीज़ एक भी आदमी नहीं था तो भी उनके नाम-धाम का विवरण न जानने से पाठकों का जीवन दुर्वह नहीं होगा अत: उनके बतलाने की आवश्यकता नहीं। जो हो, इन लोगों की समवेत चेष्टा से मामले की भूमिका किसी प्रकार ख़तम होने पर भी असल बात उठती नहीं थी—ठीक मुँह पर आने पर भी किसी के मुँह से निकलती नहीं थी। जीवानन्द चौधरी उपस्थित थे। सबके साथ रहकर भी, थोड़ी दूर पर, एक तकिये के सहारे बैठे मानो एकाग्रचित्त से सब सुन रहे थे। मुख प्रफुल्ल था, पूरा स्वाभाविक न होने पर भी उनके चेहरे पर एकदम बनावटीपन भी नहीं देख पड़ता था। शायद शराब के नशे ने अभी तक उनके सारे दिमाग़ पर दख़ल नहीं किया है। सामने के बड़े-बड़े खुले दरवाज़ों से बारुई नदी की सूखी बालू और गीली मिट्टी की बू, हवा

के साथ, घर के भीतर आ रही थी; पास के कमरे में शायद रसोई हो रही थी, उससे एक प्रकार की आवाज़ और महक बीच-बीच में हवा के साथ आकर लोगों के कान और नाक में पहुँच रही थी; वह व्यक्ति-विशेष को उपादेय और रुचिकर होने पर भी शिरोमणिजी उससे बड़े चञ्चल हो उठे। वे एका-एक एक-दो बार खाँसकर अँगौछे से नाक पोंछते हुए वहाँ से उठकर एक किनारे जा बैठे। देखकर जीवानन्द ने मुस्कुराते हुए कहा—पण्डितजी को 'घ्राणे चार्द्धभोजनं' हो गया है क्या ?

बहुत लोग हँस पड़े। शिरोमणि का, नाक की तरह, चेहरा भी लाल हो उठा। जीवानन्द ने हँसकर कहा—डरने की बात नहीं है पण्डितजी, जाति नहीं जायगी। वह आपकी ही चण्डी देवी का महाप्रसाद है। परन्तु जो रसोई पका रहा है, उसका गोत्र मुझे ठीक मालूम नहीं—शायद आपके गोत्र से न भी मिले।

शिरोमणि ने अपने को थोड़ा सा सँभालकर कहा—कोई बात नहीं, कोई बात नहीं। रसोइया ब्राह्मण है—ग़रीब होने पर भी गोत्र कोई न कोई अवश्य होगा।

जीवानन्द ने ज़ोर से क़हक़हा मारकर हँसते हुए कहा—"मालूम नहीं, वह बला उसको है या नहीं। परन्तु सँड़सी, करछुल आदि के साथ मिलकर सोने की चूड़ियों की आवाज़ मुझे बहुत मीठी मालूम होती है। और उसी हाथ से परोसने पर—ख़ैर, आपको निमन्त्रण देने पर भी तो—"इतना कह-

कर जीवानन्द ने फिर ठठाकर हँसी से घर भर दिया। शिरोमणि ने सिर झुका लिया, और भीतरी भेद यद्यपि सभी को मालूम था तो भी इस तरह प्रकाश्य रूप से निर्लज्जता ज़ाहिर करने के कारण उसकी ओर सहसा कोई ताक नहीं सका।

हँसी बन्द होने पर कहा—सदालाप तो बहुत हुआ और ऐसे ही बीच-बीच में आप लोग कृपा करके आवें तो और भी बहुत हो। परन्तु आप लोगों को शिकायत किस बात की है, ज़रा कहिए तो?

परन्तु उत्तर में किसी के मुँह से बात नहीं निकली। सब लोग जैसे के तैसे चुपचाप बैठे रहे।

जीवानन्द ने कहा—कहने में क्या आप लोगों को शर्म लगती है?

अबकी राय महाशय ने मुख उठाकर देखा; कहा—नन्दीजी तो सब जानते हैं। क्या उन्होंने हुज़ूर से निवेदन नहीं किया है?

जीवानन्द ने कहा—शायद किया हो, परन्तु मुझे याद नहीं है। इसके सिवा उसके निवेदन करने पर विश्वास न रखकर आप ही लोग फ़रमाइए। द्विरुक्ति दोष हो सकता है, परन्तु क्या किया जाय? ज़मींदार का गुमाश्ता है न। ज़रा सामना करा रखना अच्छा है। ठीक है न?

प्रभु के मुँह से एककौड़ी की यह प्रशंसा सुनकर राय महाशय मन में बड़े प्रसन्न हुए। परन्तु बाहर चञ्चलता

प्रकाशित न करके परम गम्भीरता के साथ बोले—हुज़ूर सब कुछ जानते हैं। नौकर के बारे में अपनी इच्छा के अनुसार सम्मति प्रकट कर सकते हैं, परन्तु हम लोगों का अभियोग—

"क्या अभियोग ?"

जनार्दन राय ने कहा—हम लोग गाँव के छोटे-बड़े ऊँच-नीच सभी लोग मिलकर—

जीवानन्द ने ज़रा हँसकर कहा—"सो तो देख ही रहा हूँ। वही न बैठे हैं भैरवी के पिता तारादास चक्रवर्ती ?" अब ज़मींदार ने उनकी ओर उँगली से इशारा किया। तारादास ने कुछ उत्तर नहीं दिया। वह जाजम के एक अंश पर दृष्टि जमाये चुपचाप बैठा रहा, और राय महाशय के अवनत मुख पर भी ज़रा फीकी छाया पड़ी। परन्तु सँभाल लिया शिरोमणिजी ने। उन्होंने विनय के साथ कहा—राजा के सामने प्रजा सन्तान की तरह है। वह दोष करे तो भी सन्तान है, और न करे तो भी सन्तान ही है। और बात एक तरह से उसी की है। उसी की लड़की षोड़शी के सम्बन्ध में हम लोगों ने निश्चय किया है कि उसे अब देवीजी की भैरवी नहीं रक्खा जा सकता। हमारी प्रार्थना है कि हुज़ूर उसे इस पद से हटा देने की आज्ञा दे दें।

ज़मींदार ने चौंककर पूछा—क्यों ? क्या अपराध है उसका ?

दो-तीन आदमियों ने प्रायः एक ही साथ उत्तर दे डाला—अपराध बहुत भारी है।

जीवानन्द ने एक-एक करके उन लोगों की ओर देखकर अन्त में जनार्दन राय से पूछा—अकस्मात् उन्होंने ऐसा कौन सा अपराध कर डाला राय महाशय, जिसके लिए उन्हें भगाना आवश्यक है ?

जनार्दन के मुँह उठाकर शिरोमणि को आँख से इशारा करते ही जीवानन्द ने रोककर कहा—नहीं नहीं, उन्होंने बहुत परिश्रम किया है; बुड्ढे आदमी को अधिक कष्ट देने की आवश्यकता नहीं। आप ही कहिए क्या बात है।

राय महाशय के चेहरे पर दुविधा और सङ्कोच दिखाई पड़ा; उन्होंने मृदु स्वर से कहा—ब्राह्मण की लड़की है—ऐसी आज्ञा मुझे न दीजिए।

जीवानन्द ने हँसते-हँसते कहा—देवता-ब्राह्मण पर आपकी अचला भक्ति की बात इस प्रान्त में किसी से छिपी थोड़े है। परन्तु आप जब स्वयं इतने छोटे-बड़े आदमियों के साथ यहाँ पधारे हैं, तो मुझे अब इसमें संशय नहीं रहा कि अपराध उनका गुरुतर है। परन्तु मैं उसे आपके ही मुँह से सुनना चाहता हूँ।

परन्तु जनार्दन राय इतनी जल्दी भूलनेवाले मनुष्य नहीं थे। उन्होंने शिरोमणि की ओर क्रोधभरी दृष्टि से देखकर कहा—हुजूर जब स्वयं सुनना चाहते हैं तब डर क्या है पण्डितजी ? कह न दीजिए।

चोट खाकर वृद्ध शिरोमणि ने घबराकर कह दिया—सच बात कहने में डर क्या है जनार्दन ? तारादास की लड़की

को अब हम लोग भैरवी नहीं रक्खेंगे हुज़ूर! उसका चरित्र बहुत ही भ्रष्ट हो गया है, यह हम आपको बतला देते हैं।

जीवानन्द का परिहास-दीप्त प्रफुल्ल मुख अकस्मात् गम्भीर और कठोर हो उठा; पल भर चुप रहकर उन्होंने धीरे-धीरे पूछा—तो उनका चरित्र भ्रष्ट होने की ख़बर आप लोगों को निश्चित रूप से मालूम हो गई है?

उसी दम एक साथ कई आदमी बोल उठे—"इसमें किसी को कोई संशय नहीं है—यह बात गाँव के सभी लोग जान गये हैं।" जनार्दन मुँह से कुछ न कहने पर भी चुपचाप सिर हिलाने लगे। जीवानन्द ने थोड़ी देर चुप रहकर उन्हीं की ओर देखते हुए कहा—इसी से निपटारा कराने के लिए और आदमी न देखकर एकदम भीष्मदेव के पास आये हैं। राय महाशय! सुफल होने की आशा नहीं मालूम होती।

शायद यह इशारा सब लोगों ने नहीं समझा, पर जनार्दन और शिरोमणि समझ गये। जनार्दन चुप हो रहे, परन्तु शिरोमणि ने जवाब दिया—आप देश के राजा हैं, सुविचार हो या अविचार, करना होगा आपको ही। हम लोग उसी को मान लेंगे। सारा चण्डीगढ़ तो आपका ही है।

यह सुनकर जीवानन्द के चेहरे का भाव कुछ सहज हो आया; उन्होंने मुस्कुराकर कहा—देखिए पण्डितजी, अति विनय दिखाकर आप लोग सिर नीचा न करें। अति गौरव

से मुझे भी आसमान पर चढ़ाने की ज़रूरत नहीं। मैं यही जानना चाहता हूँ कि क्या यह अभियोग सत्य है ?

आग्रह से राय महाशय का मुख आशान्वित हो उठा; शिरोमणि ने तो एकदम चञ्चल होकर कहा—अभियोग ? सत्य है या नहीं ?—अच्छा हम तो बाहरी आदमी हैं, परन्तु तारादास, तुम्हीं बोलो न ! राजद्वार है, धर्म से कहना।

तारादास का चेहरा एक बार पीला, और एक बार लाल होने लगा, परन्तु सबकी एकाग्र दृष्टि मिलकर उसे उत्तेजित करने लगी। उसने एक बार घूँट निगलकर, एक बार गले को साफ़ कर, अन्त में कह डाला—हुज़ूर—

पलक मारते ही जीवानन्द ने हाथ के इशारे से उसे रोककर कहा—नहीं। वे अपने मुँह से अपनी लड़की की कहानी धर्म की रू से कहेंगे, तो भी मैं नहीं सुनूँगा। हाँ, आप लोगों में अगर कोई कह सकें तो धर्म की रू से कहें।

सभा में फिर सन्नाटा खिंच गया, परन्तु अबकी बार उस सन्नाटे के बीच में से अस्फुट उद्यम के परिस्फुट होने का लक्षण दिखाई दिया। पास का दरवाज़ा खोलकर नौकर ने शीशे के गिलास में ह्विस्की और सोडा भरकर प्रभु के हाथ में दिया। उन्होंने उसे एक ही घूँट में पीकर नौकर के हाथ में लौटाते हुए कहा—"ओह, अब जी में जी आया।" ज़रा हँसकर कहा—आज सवेरे से ही आप लोगों की वाक्य-सुधा पीने से

प्यास के मारे छाती जकड़ गई थी। पर सब चुपचाप क्यों हैं? क्या हुआ आपके धर्म की रू का?

शिरोमणि ने घबराकर कहा—मैं कहता हूँ हुजूर, मैं धर्म की रू से ही कहूँगा।

जीवानन्द ने सिर हिलाकर कहा—सम्भव है। आप शास्त्रज्ञ प्रवीण ब्राह्मण हैं, परन्तु एक स्त्री के भ्रष्ट चरित्र की कहानी उसकी अनुपस्थिति में कहने से उसके अन्दर धर्म की रू की 'रू' शायद रह भी जाय, पर क्या 'धर्म' रहेगा? मुझे कोई ख़ास आपत्ति नहीं है। मुद्दत हुई, धर्माधर्म की बला मेरे पास से हट गई है। तो भी, ख़ैर, उसको जाने दीजिए। बल्कि मैं जो पूछता हूँ उसका जवाब दीजिए। वर्तमान भैरवी को आप निकाल देना चाहते हैं, यही न?

सब लोगों ने एक ही साथ सिर हिलाकर जवाब दिया—जी हाँ।

"इनसे अब काम नहीं चल रहा है?"

जनार्दन ने प्रतिवाद के ढङ्ग से सिर उठाकर कहा—काम चलने न चलने की बात नहीं है हुजूर, गाँव की भलाई के लिए आवश्यक है।

जीवानन्द ने हँसते हुए कहा—यानी गाँव की भलाई-बुराई की आलोचना न करके भी यह मान लिया जा सकता है कि इसमें आपकी निजी भलाई-बुराई कुछ न कुछ अवश्य है। मुझे मालूम नहीं कि भैरवी को निकाल देने का अधिकार

मुझको है या नहीं; परन्तु मुझे कोई आपत्ति नहीं है। पर क्या कोई दूसरा इल्ज़ाम नहीं लगाया जा सकता? ज़रा कोशिश कीजिए न। हमारे इस एककौड़ी को भी साथ ले लीजिए, इस विषय में इसका खासा नाम है।'

यह बात सुनकर सब दङ्ग रह गये। हुज़ूर ने ज़रा सा रुककर कहा—"भैरवियों के सतीत्व की कहानी बहुत प्राचीन है और प्रसिद्ध है। उसकी चर्चा करने से कुछ लाभ नहीं। भैरवी रहने से ही भैरव आ जाते हैं—भैरवियों का काम भैरवों के बिना नहीं चलता, यही सनातन प्रथा है; केवल इसी से हटाना आसान नहीं होगा। देश भर के भक्तों का दल बिगड़ जायगा, शायद देवी स्वयं भी प्रसन्न न होंगी—अजब नहीं कि कुछ उपद्रव मच जाय। मातङ्गी भैरवी के पाँच भैरव थे और उनके पहले जो भैरवी थी, सुना है कि, उनके भैरवों की गिनती ही न थी। क्यों पण्डितजी, आप ही कहिए, आप तो यहाँ के सबसे बूढ़े हैं, आपको तो सब मालूम है न?" अब हुज़ूर ने शिरोमणि की अपेक्षा खासकर राय महाशय की ओर ही कटाक्ष किया। इस प्रश्न का किसी को कोई उत्तर नहीं सूझा, सब लोग भौंचक्के से रह गये। किसी की समझ में न आया कि ज़मींदार का कण्ठस्वर टेढ़ा है या सीधा, उसका कहना सत्य है या मिथ्या और उसके तात्पर्य में दिल्लगी है या धमकी।

सामने के बरामदे का चक्कर लगाकर एक भद्र वेशधारी शौक़ीन युवक कमरे के भीतर आया। उसके हाथ में कई

एक बँगला और अँगरेज़ी के समाचारपत्र तथा कुछ खुली हुई चिट्ठियाँ थीं। जीवानन्द ने देखकर कहा—क्यों प्रफुल्ल, यहाँ भी डाकखाना है क्या?' न मालूम यह सब कब बन्द होगा!

प्रफुल्ल ने सिर हिलाकर कहा—वह ठीक है। बन्द हो जाने से आपको आराम होता। परन्तु वह जब नहीं हुआ है तब क्या इन सबके देखने का आपको अब अवकाश होगा?

जीवानन्द ने ज़रा भी आग्रह न दिखाकर उत्तर दिया—नहीं, अभी नहीं होगा, दूसरे वक़् भी नहीं। परन्तु बहुत सा बाहर से ही अनुभव हो रहा है। उस चिट्ठी पर तो हीरा-लाल-मोहनलाल की दूकान की मुहर देखता हूँ—क्या वह वकील के पास से या सीधो अदालत से आई है? वह लिफ़ाफ़ा तो सलोमन साहब का मालूम होता है। विलायती सुधा की महक मानो काग़ज़ फोड़कर निकली आ रही है। क्या कहते हैं साहब? डिगरी जारी करेंगे या इस राजवपु पर ही खींचातानी शुरू कर देंगे? ओह, अगर उस ज़माने का ब्राह्मण्य तेज रत्ती भर भी बाक़ी रहता तो इस यहूदी को तो भस्म ही कर देता! शराब का देना चुकाना न पड़ता।

प्रफुल्ल ने घबराकर कहा—"क्या कहते हैं भाई साहब? रहने दीजिए, दूसरे समय इसकी चर्चा की जायगी।" अब उसके लौट जाने के लिए तैयार होते ही जीवानन्द ने हँसते हुए कहा—लज्जा किस बात की भइया, ये लोग तो अपने ही आदमी हैं, सब ज्ञाति-बन्धु हैं। यहाँ तक कि हीरा-जवाहिरात

का इधर और उधर का भाग कहने से भी अत्युक्ति न होगी। इसके सिवा तुम्हारा बड़ा भाई तो कस्तूरी-मृग है; उसकी सुगन्ध को कितने दिन तक छिपा रक्खोगे भइया? रुपया! रुपया! रुपया! इसकी नालिश और उसकी नालिश! फलाने की डिगरी और ढिकाने की क़िस्त चूक गई! अजी तारादास, उस दिन का मौक़ा तुम्हारे हाथ से निकल गया, पर घबराओ नहीं पण्डितजी, नौबत यहाँ तक पहुँची है कि तुम्हारी मनोकामना पूरी होने में अब देर नहीं लगेगी। प्रफुल्ल, नाराज़ न होना भइया, अपने आदमियों में किसी को नहीं छोड़ा, परन्तु इस चालीस वर्ष की आदत को छोड़ना भी मेरे लिए मुश्किल है; बल्कि किसी ऐसे आदमी को ढूँढ़कर ला सकते जो जाली नोट-फोट बना सकता तो—

बहुत चिढ़ जाने पर भी प्रफुल्ल हँसकर बोला—देखिए, आपकी बातों को सब लोग समझ नहीं सकेंगे। सच समझकर यदि कोई—

जीवानन्द ने गम्भीर होकर कहा—यदि कोई ढूँढ़ लावे? तब तो बन जाऊँ। राय महाशय, आप तो बड़े प्रवीण सुने जाते हैं। आपकी जान-पहचान में ऐसा कोई आदमी—

राय बाबू का चेहरा उतर गया। एकाएक खड़े होकर उन्होंने कहा—देर हो रही है, आज्ञा हो तो हम लोग अब जायँ।

जीवानन्द ने ज़रा लज्जित होकर कहा—बैठिए, बैठिए, नहीं तो प्रफुल्ल का हौसला बढ़ जायगा। इसके सिवा भैरवी

की बात भी तो ख़तम हो जाय। हाँ, मेरे 'जाओ' कह देने से ही क्या वह चली जायगी?

राय महाशय ने बैठकर संक्षेप में उत्तर दिया—उसका भार हमारे ऊपर है।

"परन्तु और किसी को तो नियुक्त करना होगा। वह पद तो ख़ाली नहीं रह सकता।"

इस बार बहुतों ने ज़वाब दिया—इसका जिम्मा भी हम लेते हैं।

जीवानन्द ने साँस छोड़कर कहा—ख़ैर, कुछ चिन्ता नहीं, अब उसे जाना ही पड़ेगा। इतने आदमियों के निःश्वास के बोझ को अकेली भैरवी की तो बात ही नहीं, स्वयं चण्डी देवी भी सँभाल नहीं सकेंगी—यह समझ में आ गया। अपना हानि-लाभ आप ही जानते हैं, परन्तु मेरी हालत ऐसी है कि रुपया मिल जाय तो किसी बात में भी मुझे आपत्ति नहीं है। नये इन्तज़ाम में मुझे कुछ मिलना चाहिए। ख़ैर, कोई देख तो रे, एककौड़ी है या चला गया? परन्तु गला तो यहाँ सूखकर मरुभूमि हो चला।

प्रभु के व्यग्र हाथ में भरा हुआ प्याला देते हुए नौकर बोला—"वे दफ़्तर में खाता लिख रहे हैं।" प्रभु की बुलाहट से थोड़ी देर के बाद एककौड़ी आकर अदब के साथ एक ओर खड़ा हो गया। जीवानन्द ने सूखे गले को तर करके पूछा—उस दिन जो भैरवी को तलब किया था उसकी ख़बर किसी ने उन्हें दी थी?

एककौड़ी बोला—मैंने ख़ुद दी थी हुज़ूर।

"वे आई थीं?"

"जी नहीं।"

"क्यों?"

एककौड़ी सिर झुकाये चुपचाप खड़ा रहा। जीवानन्द ने उत्सुक होकर पूछा—कुछ बतलाया, वे कब आयेंगी?

एककौड़ी वैसे ही, सिर झुकाये हुए, अस्फुट स्वर से बोला—मैं इतने आदमियों के सामने उस बात को हुज़ूर से निवेदन नहीं कर सकता।

जीवानन्द ने हाथ के ख़ाली गिलास को नीचे रखकर एकाएक कठोर स्वर से कहा—एककौड़ी, इस गुमाश्तागिरी के क़ायदे को ज़रा छोड़ो। वे आयेंगी या नहीं?

"नहीं।"

"क्यों?"

इस बार भी उत्तर में एककौड़ी ने ज़मींदारी क़ायदा नहीं छोड़ा, बल्कि सब लोगों को सुनाई दे ऐसे स्पष्ट शब्दों में कहा—वे आ नहीं सकेंगी, यह बात वहाँ जितने आदमी खड़े थे सब ने सुनी है। उन्होंने कहा कि अपने हुज़ूर से कहना एककौड़ी, उनको झगड़े तय करने लायक़ बुद्धि हो तो अपनी प्रजा का करें, मेरे मुक़दमे के लिए अदालत खुली है।

एकाएक मालूम पड़ा कि ज़मींदार की अब तक की इतनी दिल्लगी, इतनी सरल उदारता, हँसमुख चेहरा और तरल

कण्ठस्वर पल भर में ग़ायब होकर मानो अँधेरा हो गया। क्षण भर के बाद उन्होंने धीरे-धीरे कहा—हूँ। अच्छा तुम जाओ। प्रफुल्ल, किसी चीनी की कम्पनी ने हज़ार बीघा ज़मीन माँगी थी न? उसको कुछ जवाब दिया था?

"जी नहीं।"

"तो उसे लिख दो कि ज़मीन मिलेगी। देर न करो।"

"बहुत अच्छा, लिखे देता हूँ।" कहकर वह एककौड़ी को साथ ले चला गया। फिर थोड़ी देर के लिए कमरे में सन्नाटा छा गया। शिरोमणि ने खड़े होकर आशीर्वाद देते हुए कहा—तो आज हम लोग जायँ?

"पधारिए।"

राय महाशय ने झुककर प्रणाम करते हुए कहा—आज्ञा हो तो फिर किसी दिन आपके दर्शन करने आऊँगा।

"बहुत अच्छा, आइएगा।"

सब लोग धीरे-धीरे चले गये। बाहर आने पर उनको ज़मींदार की आवाज़ सुनाई दी—ख़िदमतगार।

रास्ते में दूर तक किसी से किसी की बातचीत नहीं हुई। अन्त में शिरोमणि से नहीं रहा गया। उन्होंने राय महाशय को एक तरफ़ खींच ले जाकर कान में कहा—जनार्दन, तुम्हें ज़मींदार कैसा मालूम हुआ भइया?

जनार्दन ने संक्षेप में उत्तर दिया—मालूम तो कई तरह का हुआ।

"महा पापी—लाज शर्म बिलकुल नहीं है।"

"हाँ।"

"परन्तु एकदम सरल है, कपट का नाम नहीं। मत-वाला है न? देखा, ऋण में चोटी तक डूबा हुआ है—वह भी कह डाला।"

जनार्दन ने "हूँ" कहा।

शिरोमणि ने कहा—परन्तु कुछ भी नहीं बचेगा, तुम देख लेना सब सत्यानाश हो जायगा।

जनार्दन ने कहा—सम्भव है।

"शायद अधिक दिन जियेगा भी नहीं।"

"हो सकता है।"

थोड़ी देर चुपचाप चलकर शिरोमणि ने फिर कहा—जैसा समझा था, शायद वैसा नहीं है; बिलकुल सीधा सादा तो नहीं मालूम हुआ। तुम्हारी क्या राय है?

जनार्दन ने जवाब दिया—नहीं।

"परन्तु बड़ा मुँहफट है। मान्य व्यक्ति के मान का ज्ञान नहीं है।"

जनार्दन ने कुछ उत्तर नहीं दिया। जवाब न मिलने पर भी शिरोमणि कहने लगे—परन्तु देखा तुमने बोलने का ढङ्ग। आधे का तो मतलब ही समझ में नहीं आता। सच बोलता है, या हम लोगों को नचा रहा है—समझना कठिन है। सब कुछ जानता है, क्यों?

राय महाशय ने फिर भी कुछ मन्तव्य प्रकट नहीं किया, वैसे ही चुपचाप चलने लगे। परन्तु मकान के पास आकर शिरोमणि कौतूहल को रोक नहीं सके। धीरे-धीरे बोले—तुम तो बड़े उदास मालूम होते हो भइया। सुफल होने की आशा नहीं होती क्या?

राय बाबू ने इच्छा न रहने पर भी ज़रा ठहरकर कहा—देवी की इच्छा है।

शिरोमणि ने गर्दन हिलाकर कहा—इसमें सन्देह क्या है! परन्तु मामला सब गड़बड़ हो गया मालूम होता है। न इसको पकड़ सके और न उसको मारने में ही समर्थ हुए। तुम्हारा क्या है भइया, रुपये का ज़ोर है—परन्तु शेर की माँद के सामने फन्दा फैलाने जाकर कहीं मैं न मारा जाऊँ।

जनार्दन ज़रा रूखे स्वर से बोले—आप क्या डर गये?

शिरोमणि ने कहा—नहीं नहीं, डरा तो नहीं हूँ, डरने की कोई बात नहीं है; परन्तु तुम्हारे चेहरे से ऐसा भी मालूम नहीं होता कि तुम बहुत भरोसा पाकर आये हो। ज़मींदार साहब तो अजब ढङ्ग के आदमी हैं। बातों में जैसी पहेलियाँ हैं, काम भी वैसे ही अद्भुत हैं। यही आश्चर्य है कि उसने गला दबाकर ज़बरदस्ती शराब नहीं पिला दी! एककौड़ी के मुँह से गोसाइँन की धमकी भी सुनी न? मैं तो अंड-बंड बहुत बक आया, अच्छा नहीं किया। कहीं एककौड़ी भीतर

ही भीतर सब पोल न खोल दे। वही मसल हो कि "लड़ैं लोह-पाहन दोऊ बीच रुई जरि जाय।"

जनार्दन ने उदास भाव से कहा—सभी चण्डो माता की इच्छा है। धूप चढ़ आई है—एक बार तीसरे पहर आइएगा।

"अच्छा आऊँगा।"

गली का मोड़ घूमने पर बाईं ओर पेड़ों के भीतर से मन्दिर का शिखर दीखते ही वृद्ध शिरोमणि ने हाथ जोड़कर प्रणाम किया, कान और नाक में हाथ लगाया, परन्तु यह सुनाई नहीं दिया कि अस्फुट स्वर से क्या प्रार्थना की। इसके बाद वे धीरे-धीरे घर लौट गये।

१४

और-और स्थानों की तरह चण्डीगढ़ में भी दिन आते हैं, और चले भी जाते हैं, बाहर से कोई विशेषता नहीं मालूम पड़ती। देवी की सेवा पूजा समान रूप से हो रही है। आस पास के गाँवों से यात्री आकर भीड़ लगाते हैं, चले जाते हैं, मनौती करते हैं, पूजा कराते हैं, बकरा काटते हैं, प्रसाद के हिस्से के लिए पुजारी से पहले की ही तरह लड़ते-झगड़ते हैं और उसी तरह मुक्तकण्ठ से अपनी प्रशंसा तथा पड़ोसियों की निन्दा कर शरीर और मन के स्वास्थ्य तथा स्वाभाविकता का प्रमाण दे रहे हैं। वास्तव में कहीं कुछ उलट-पलट नहीं हुआ है; परदेशी समझ नहीं सकते कि इस दर्मियान में हवा बदल गई है और

आँधी आने के पूर्व क्षण की तरह प्रकृति थोड़ी देर के लिए स्तब्ध हो गई है। मालूम नहीं होता कि इस गाँव के किसानों और मज़दूरों ने निश्चय करके कुछ समझ लिया है; परन्तु षोड़शी के सम्बन्ध में गाँव के मुखियों का मनोभाव कुछ भी क्यों न हो, ये दीन दरिद्र लोग जैसे उसकी भक्ति करते हैं वैसे ही उसको चाहते भी हैं। एककौड़ी नन्दो के अत्याचार से बचने का वही एक उपाय था। जब और कहीं थोड़ा-बहुत ऋण न मिलता तब भैरवी के सामने जाकर हाथ फैलाने में वे ज़रा भी न हिचकते थे। उसके मकान छोड़ देने के कारण वास्तव में इन लोगों को कोई दुश्चिन्ता न थी; वे जानते थे कि बाप-बेटी का मेल एक न एक दिन हो ही जायगा। षोड़शी की बदनामी की बात भी छिपी हुई नहीं थी; केवल उसी के लिए यह ढिंढोरा न पीटा जाता तो अच्छा था। क्योंकि भैरवियों के चाल-चलन के बारे में माथा-पच्ची करने की किसी ने आज तक आवश्यकता नहीं समझी—बहुत दिनों के अभ्यास से यह बात इतनी तुच्छ हो गई थी। परन्तु षोड़शी को उपलक्ष बनाकर देवी के मन्दिर के सम्बन्ध में जो मामला खड़ा किया गया है; अधिकारी लोग तारादास को साथ लेकर सुबह-शाम हुज़ूर के दरबार में हाज़िरी देकर कोई उलट-फेर करने के लिए मनसूबा गाँठ रहे हैं और एक अनजान छोटी लड़की को न जाने कहाँ से लाकर किसलिए रख छोड़ा है—ऐसी अनेक आशङ्काओं के कारण उन लोगों के चित्ताकाश में

इस प्रकार के भावों का मेघ, क्रोध और क्षोभ की तरह, उमड़ने लगा कि इससे देश की भलाई नहीं होगी।

उस दिन अष्टमी थी। मन्दिर के आँगन में आदमियों का जमाव कुछ अधिक था। देवी के पास बैठकर षोड़शी आरती का उपकरण सजा रही थी, इतने में तारादास और उस लड़की को साथ लिये एककौड़ी आया। षोड़शी उसी तरह काम करने लगी, उसने मुँह उठाकर ताका तक नहीं। एककौड़ी ने कहा—माँ मङ्गला, अपनी चण्डी माता को प्रणाम करो।

पुजारी कुछ कर रहा था, वह सम्मान के साथ उठ खड़ा हुआ। षोड़शी ने बिना ही आँख उठाये देख लिया। लड़की ज्योंही प्रणाम करके खड़ी हुई त्योंही पुजारी ने कहा—देवी की सन्ध्या-आरती देखना चाहो तो दाहिनी ओर वह जो आसन बिछा हुआ है उस पर जा बैठो।

एककौड़ी ने कनखियों से षोड़शी को देखकर हँसते हुए कहा—ये अपनी जगह को स्वयं पहचान लेंगी। पण्डितजी, आपको उसके लिए कष्ट न उठाना पड़ेगा, परन्तु देवी की चीज़-वस्तु जो कुछ है वह एक-एक करके दिखा तो दीजिए।

पुजारी ने तनिक लज्जित होकर कहा—ज़रूर, ज़रूर। एक-एक करके सब दिखा दूँगा। फ़िहरिस्त के साथ सब चीज़ों का मिलान कर लिया है, कोई चिन्ता नहीं। वह जो बड़ा सन्दूक़ दिखाई देता है उसमें पूजा के पात्र तथा पीतल

और काँसे के बड़े-बड़े बर्तन बन्द हैं; भण्डारा आदि बड़े कामों में ही वे निकाले जाते हैं। और लकड़ी के इस छोटे सन्दूक़ में मख़मल का चँदोवा, झालर वग़ैरह हैं। उस कोठरी में दरियाँ, ग़ालीचे, पर्दे, बैठने के आसन—यही सब—

एककौड़ी ने कहा—और—

पुजारी ने कहा—और वह जो पूरब की दीवार में बड़े-बड़े ताले लटक रहे हैं, वह लोहे का सन्दूक़ है। मन्दिर के साथ जड़ा हुआ है। उसमें देवी का सोने का मुकुट, रामपुर की महारानी की दी हुई मोतियों की माला, बीजगाँव के ज़मींदार के दिये हुए सोने के बाज़ूबन्द, हार और कितने ही भक्तों के दिये हुए तरह-तरह के सोने-चाँदी के ज़ेवर हैं। इसके सिवा रुपया-पैसा, दस्तावेज़, सोने-चाँदी के बर्तन—अर्थात् जितनी क़ीमती चीज़ें हैं, सब उस सन्दूक़ में हैं।

एककौड़ी ने कहा—मैं नया आदमी नहीं हूँ पण्डितजी, सब जानता हूँ। परन्तु वह सब तुम्हारे मुँह में ही है या सन्दूक़ टटोलने पर भी कुछ मिलेगा? वहीं तो वे बैठी हुई हैं, ज़रा ताली माँगकर खोल करके दिखाइए न? आपने सुना नहीं कि गाँव के मुखियों की प्रार्थना मंज़ूर करके हुज़ूर ने क्या हुक्म दिया है? चैत्र संक्रान्ति के पहले सभी चीज़ें एक बार मिला लेनी होंगी।

पुजारी वज्राहत की तरह चुपचाप खड़ा रहा। मन्दिर से अब षोड़शी का प्रभुत्व उठ गया है यह उसे मालूम है;

और यह भी वह जानता है कि नन्दीजी का प्रत्यक्ष आदेश न माना जायगा तो उसका नतीजा कैसा भयानक होगा। परन्तु वह जो भैरवी समीप ही बैठी देवी का काम करती हुई सब अपने कानों से सुनकर भी कुछ जवाब नहीं दे रही है, उसके सामने जाकर सुनाने का साहस पुजारी को नहीं हुआ। उसने डरती आवाज़ से कहा—पर उसकी तो अभी देर है नन्दीजी। इधर सन्ध्या हो आई है—

तारादास ने अब तक कुछ नहीं कहा। और सङ्कोच तथा भय का चिह्न अकेले पुजारी के ही चेहरे पर थोड़े झलक रहा था। धीरे-धीरे उसने कहा—मिला लेने में बहुत विलम्ब लगेगा नन्दीजी! किसी दूसरे दिन ज़रा जल्दी आकर यह काम कर लिया जायगा। क्यों?

एककौड़ी ने सोचकर उत्तर दिया—"अच्छा, यही सही।" पुजारी से कहा—परन्तु याद रहे पण्डितजी, इसी शनिवार को संक्रान्ति है। गाँव के आदमियों की सोलहों आने पञ्चायत इस आँगन में होगी। हुज़ूर भी आवेंगे। उत्तरी हिस्से में क़नात लगाकर मख़मल का ग़ालीचा बिछवा दीजिएगा। बत्ती का इन्तज़ाम भी कर रखिएगा।

एककौड़ी ज़रा ज़ोर से बोल रहा था, इसलिए कौतूहल-वश बहुत आदमी बरामदे के नीचे इकट्ठे हो गये थे कि देखें क्या हो रहा है। उसने ज़रा और ज़ोर देकर उन लोगों को सुनाते हुए पुजारी से कहा—"उस दिन भीड़ मामूली न होगी,

मामला भी पेचदार है।" मङ्गला लड़की को ज़रा प्यार करते हुए कहा—"क्यों जी नन्हीं भैरवी, समझ-बूझकर सब चला सकोगी न? हम लोग तो हई हैं, हुज़ूर भी अब से ख़ुद नज़र रक्खेंगे; क्योंकि काम मामूली नहीं है। इसे चलाने के लिए काफ़ी अक़्ल चाहिए।" इतना कहकर उसने षोड़शी की ओर तिरछी नज़र से देखा कि वह पहले की ही तरह पूजा के कार्य में लवलीन है। तारादास की ओर ताककर उसने हँसते हुए कहा—क्यों पण्डितजी, नये अभिषेक के मुहूर्त का कुछ निश्चय हुआ है, सुना? लोग इतना दिक़ कर रहे हैं कि मुझे नहाने-खाने की फ़ुरसत नहीं देते।

तारादास ने अस्फुट स्वर से जो उत्तर दिया वह समझ में नहीं आया। वे लोग फाटक से बाहर निकल गये। पीछे-पीछे और बहुत आदमी भी चले गये; परन्तु चण्डी माता की आरती की प्रतीक्षा में जो लोग रह गये वे षोड़शी के अवनत मुख की ओर चुपचाप ताकने लगे। किसी को हिम्मत न हुई कि पास जाकर कुछ पूछे।

ठीक समय पर देवी की आरती हुई। प्रसाद लेकर लोग अपने-अपने घर चले गये। इसके बाद जब नौकर दरवाज़ा बन्द करने आया तब षोड़शी ने पुजारी को एकान्त में बुलाकर पूछा—पण्डितजी, देवी की सेविका मैं हूँ या एककौड़ी नन्दी?

पुजारी ने लज्जित होकर कहा—तुम्हीं हो माता, तुम्हीं तो देवी की भैरवी हो।

षोड़शी ने कहा—परन्तु आपके बर्ताव से आज दूसरा ही भाव प्रकट हुआ है। जब तक मैं हूँ, ज़मींदार के गुमाश्ते की अपेक्षा मेरा सम्मान मन्दिर के भीतर अधिक रहना चाहिए। ठीक है न?

पुजारी ने कहा—इसमें क्या सन्देह माजी! परन्तु—

षोड़शी बोली—मेरे यहाँ रहने तक आपको उस परन्तु को छोड़कर चलना पड़ेगा।

यह शान्त मृदु कण्ठ पुजारी के लिए सुपरिचित था; वह सिर झुकाये हुए चुपचाप खड़ा रहा। षोड़शी ने और कुछ नहीं कहा। मन्दिर के दरवाज़े पर ताला लगने पर चाबियों का गुच्छा आँचल में बाँधते हुए वह धीरे-धीरे बाहर चली गई।

दूसरे दिन प्रातःकाल नहाकर आते हुए षोड़शी ने दूर से देखा कि इतनी ही देर में उसकी झोपड़ी के चारों ओर बहुत से आदमियों की भीड़ लगी है। पास आने पर सब लोगों ने प्रणाम कर ज्योंही पाँव की धूल लेने के लिए एक साथ पचीसों हाथ फैलाये त्योंही षोड़शी ज़रा पीछे हटकर हँसते हुए बोली—उतनी धूल मेरे पाँवों में नहीं है। मुझे दुबारा मत नहलाओ; मन्दिर में जाने को देर भी हो रही है। बोलो क्या बात है?

ये लोग प्रायः सभी उसकी प्रजा हैं; उन्होंने हाथ जोड़कर कहा—माजी, हम लोग मारे जाते हैं। हमारा सर्वनाश हो रहा है!

उन लोगों का चेहरा बहुत उदास और फीका था। कोई-कोई तो रात भर सो ही नहीं सका। उनके मुँह की ओर देख-कर उसका हँसी-भरा मुँह भी पल भर में मलिन हो गया। हालत और उम्र में बुड्ढा विपिन माइती सबसे बड़ा है; इसी को लक्ष्य कर षोड़शी ने पूछा—क्या सर्वनाश हो रहा है विपिन?

विपिन ने कहा—किसी मन्द्राजी साहब को दक्षिण का सारा मैदान ज़मींदार की तरफ़ से बेचा जा रहा है। हमारी सारी जायदाद वही है। ऐसा होगा तो कोई नहीं बचेगा माजी, सब भूखों मर जायँगे।

बात ऐसी असम्भव थी कि षोड़शी हँसकर बोली—तो तुम लोगों का भूखों मरना ही अच्छा है। जाओ, घर जाओ; मेरा सवेरे का समय वृथा न गँवाओ।

परन्तु उसकी हँसी में कोई शामिल नहीं हो सका, सभी ने एक साथ कहा—नहीं माजी, यह बात सच है।

षोड़शी को विश्वास नहीं हुआ; उसने कहा—"नहीं रे, यह कभी सच नहीं हो सकता। तुम्हारे साथ किसी ने दिल्लगी की है।" उसके विश्वास न करने का विशेष कारण था। एक तो उन खेतों का उपयोग वे लोग मौरूसी रूप से करते आ रहे हैं; दूसरे सारा मैदान केवल बीजगाँव की सम्पत्ति भी नहीं है। इसका कुछ अंश चण्डी माता का है और कुछ राय बाबू का ख़रीदा हुआ है; इसलिए जीवानन्द चाहें तो अकेले इसे हस्तान्तरित नहीं कर सकते। परन्तु वृद्ध विपिन माइती

जब सारी घटना का वर्णन कर गया कि कल कचहरी में बुला-कर नन्दीजी ने अपने मुँह से सबको सुना दिया और वहाँ जनार्दन और तारादास दोनों ही मौजूद थे, देवी की तरफ़ से तारादास ने ही दस्तावेज़ पर दस्तख़त कर दिया है तब असीम क्रोध और आश्चर्य से षोड़शी बहुत देर तक स्तब्ध हो रही। अन्त में धीरे-धीरे बोली—अगर ऐसा ही हुआ हो तो तुम लोग अदालत में जाकर नालिश कर दो।

विपिन ने हताश होकर कहा—यह कैसे हो सकता है माजी? राजा के साथ क्या लड़ाई की जा सकती है? पानी में रहकर मगर से वैर करने से तो घर-दुआर जो कुछ है वह भी न रहेगा!

षोड़शी ने कहा—तो बपौती जायदाद तुम लोग चुपचाप छोड़ दोगे?

विपिन ने कहा—अगर तुम कृपा करके हम लोगों को बचा दो तो हम बच जायँ माजी! नहीं तो बाल-बच्चों को लेकर हमें भीख माँगना पड़ेगा। इसी लिए तो तुम्हारे पास हम सब दौड़े आये हैं।

षोड़शी ने एक-एक करके सबके मुँह की ओर ताका। इनमें से कोई भी कुछ कर नहीं सकता; इस कारण ऐसी विपत्ति में पड़कर सबके सब दूसरे की कृपा माँगने आये हैं। इन उद्यम-हीन मनुष्यों की करुण प्रार्थना से उसकी छाती के अन्दर आग जल उठी। उसने कहा—तुम इतने मर्द मिलकर अपना

बचाव नहीं कर सकते और मैं औरत होकर तुम्हें बचा सकूँगी ? नाराज़ मत होना विपिन, परन्तु मैं पूछती हूँ कि इस ज़मीन के बदले अगर तुम्हारी घरवाली को इसी तरह से ज़मींदार ज़बरदस्ती किसी के हाथ बेंच डालते, और वह उस पर दख़ल करने आता तो तुम क्या करते बेटा ?

षोड़शी की इस अनोखी उपमा से बहुतों के मुख दबी हँसी से उज्ज्वल हो उठे; परन्तु वृद्ध की आँखों से आग की चिनगारियाँ निकलने लगीं। उसने अपने को सँभालकर कहा—मैं तो अब बुड्ढा हो चला माजी, मेरी बात जाने दो; परन्तु मेरी घरवाली के पाँच-पाँच जवान बेटे हैं। वे उस वक्त़ जेल तो क्या फाँसी से भी नहीं डरेंगे, यह बात मैं तुमसे देवी की सौगन्द खाकर कहे देता हूँ।

वह और भी कुछ कहना चाहता था परन्तु षोड़शी ने रोककर कहा—अगर यह बात सत्य है विपिन, तो अपने उन पाँच-पाँच जवान बेटों से कहना कि यह पुश्तैनी जायदाद उनकी बूढ़ी माँ से तिल भर भी कम नहीं है। ये दोनों ही समान रूप से उनका पालन करती आई हैं।

वृद्ध पलक मारते ही सीधा खड़ा होकर बोला—ठीक है माजी ! हमारी माँ ही तो हैं। मैं अभी जाकर लड़कों से कहता हूँ, परन्तु तुम सहायक रहना।

षोड़शी सिर हिलाकर बोली—"एक मैं ही क्यों विपिन, चण्डी माता तुम्हारी सहायता करेंगी ! परन्तु मेरा पूजा करने

का समय बीता जा रहा है, मैं चलती हूँ।" अब वह तेज़ी से अपनी झोपड़ी के भीतर चली गई। बाहर विपिन की गम्भीर आवाज़ उसको सुनाई दी। वह सबसे पुकारकर कह रहा है—तुम लोगों ने सुन लिया न। सिर्फ़ गर्भधारिणी ही माँ नहीं हैं, बल्कि जो पालती है वह भी माँ है। कुछ परवा नहीं, अपनी माँ को हम किसी हालत में दूसरे के हाथ नहीं सौंप सकेंगे।

१५

चैत्र की संक्रान्ति समीप आ गई। 'चड़क पूजा' और 'गाजन' उत्सव की उमङ्ग में देश भर के किसान उन्मत्त से हो उठे हैं—उनके लिए इतना बड़ा त्योहार दूसरा नहीं है। क्या स्त्री क्या पुरुष सभी ने महीने भर उपवास कर संन्यास का व्रत किया है, उनकी धोती तथा चद्दर के गेरूए रङ्ग से मानो हवा पर भी वैराग्य का रङ्ग चढ़ गया है। रास्ते में 'शिव-शम्भु' ध्वनि का विराम नहीं है, चण्डी माता के मन्दिर में उनकी आवाज़ ही समाप्त नहीं होती—आँगन के शिवमन्दिर के चारों ओर चक्कर लगाकर उनके सेवक लोग ताण्डव नृत्य कर रहे हैं। पूजा करने, तमाशा देखने और ख़रीदने-बेचने के लिए यात्री लोग आ रहे हैं। बाहर दूकानदारों ने जगह के लिए झगड़ना शुरू कर दिया है। चण्डीगढ़ में इस ओर से उस छोर तक इस महोत्सव के लक्षण दिखाई दे रहे हैं। हृदय की

अशान्ति को दबाकर षोड़शी पिछले वर्षों की तरह काम में लग गई है—सब ओर नज़र रखने के कारण सुबह से रात तक उसको मन्दिर छोड़ने की फ़ुरसत नहीं है। तीसरे पहर वह मन्दिर के बरामदे में बैठी बही-खाते का हिसाब देख रही थी, तरह-तरह के शब्द उसके कानों में आकर गूँज रहे थे, परन्तु भीतर जाकर उसकी एकाग्रता में विघ्न नहीं डाल सकते थे; इतने में एकाएक चारों ओर के सन्नाटे ने मानो धक्का मारकर उसे सचेत कर दिया; उसने आँख उठाकर देखा कि स्वयं जीवानन्द चौधरी मौजूद है। उसके दाहिने, बाँये और पीछे परिचित-अपरिचित बहुत आदमी हैं। राय महाशय, शिरोमणि जी, तारादास, एककौड़ी तथा और भी गाँव के बहुत से आदमी उपस्थित हैं। और भी तीन-चार आदमी थे जिन्हें वह पहचान नहीं सकी; परन्तु पोशाक की परिपाटी से मालूम हुआ कि ये लोग कलकत्ते से बाबू के साथ आये हैं। शायद दिहात की विशुद्ध हवा तथा प्रकृति के सौन्दर्य से लाभ उठाना ही इन लोगों का उद्देश्य हो। चार-पाँच भोजपुरी पियादे भी हैं। उनके सिरों पर रङ्गीन साफ़े और कन्धों पर बाँस की लम्बी लाठियाँ हैं। थोड़े दिन पहले हुई होली के चिह्न उनके कपड़ों पर अब तक विद्यमान हैं। प्रभु की शरीर-रक्षा तथा गौरववृद्धि करना ही उनका उद्देश्य है। षोड़शी पल भर के लिए आँख उठाकर फिर हिसाब के बही-खाते को देखने लगी; परन्तु पहले की तरह मन नहीं लगा सकी।

जीवानन्द पहले कभी यहाँ आया नहीं था; वह आग्रह के साथ एक-एक करके सब देखने लगा और सबसे प्रवीण शिरोमणिजी अपनी अनेक वर्षों की अभिज्ञता से जहाँ जो कुछ है—उसका इतिहास, प्रवाद-वाक्य—सभी इस नये ज़मींदार को सुनाते हुए साथ-साथ चलने लगे। इस तरह कोई आधे घण्टे तक घूम-फिरकर सब लोग मन्दिर के फाटक के पास आकर खड़े हो गये। इसके दो ही मिनट बाद पुजारी ने षोड़शी के पास आकर कहा—माँजी, बाबूजी ने नमस्कार कहकर ज़रा वहाँ चलने के लिए आपसे अनुरोध किया है।

षोड़शी सिर उठाकर ज़रा सोच लेने के पश्चात् बोली—"अच्छा, चलो, आती हूँ।" अब वह पुजारी के पीछे-पीछे ज़मींदार के सामने आ खड़ी हुई। जीवानन्द ने दो-चार मिनट चुपचाप उसको नख से शिख तक बार-बार देखकर अन्त में धीरे-धीरे कहा—सबके अनुरोध से मैंने तुम्हारे बारे में जो हुक्म दिया है वह सुना है?

षोड़शी सिर हिलाकर बोली—नहीं।

जीवानन्द ने कहा—तुम्हें अलग कर दिया गया, और उस छोटी लड़की को नई भैरवी बनाकर मन्दिर के सब कामों का भार सौंपा गया है। अभिषेक का दिन अभी निश्चित नहीं हुआ है, पर जल्दी ही हो जायगा। कल सवेरे राय बाबू वगैरह यहाँ आवेंगे। उन्हें देवी की तमाम अस्थावर

सम्पत्ति सहेज देना और मेरे गुमाश्ते को सन्दूक़ की ताली दे देना। इस सम्बन्ध में तुम्हें कुछ कहना है ?

षोड़शी ने बहुत पहले से ही अपने को सँभाल लिया था। इसी से उसकी आवाज़ में कोई उत्तेजना प्रकट नहीं हुई। उसने सहज कण्ठ से उत्तर दिया—मेरे कहने से क्या आप लोगों को कुछ प्रयोजन है ?

जीवानन्द ने कहा—नहीं। परन्तु परसों शाम को यहाँ एक सभा होगी। चाहो तो दस आदमियों के सामने अपना दुःख प्रकट कर सकती हो। हाँ, सुना है कि तुम मेरे विरुद्ध मेरे किसानों को उभाड़ने की चेष्टा कर रही हो ?

षोड़शी बोली—यह तो मालूम नहीं। परन्तु अपने किसानों को आपके अत्याचार से बचाने की चेष्टा ज़रूर कर रही हूँ।

जीवानन्द ने दाँतों से होंठ दबाकर कहा—बचा सकोगी ?

षोड़शी ने कहा—यह तो माता चण्डी के हाथ में है।

जीवानन्द ने कहा—वे मारे जायँगे।

षोड़शी ने कहा—वे जानते हैं कि मनुष्य अमर नहीं है।

क्रोध और अपमान से तमाम आदमियों का चेहरा लाल हो उठा। एककौड़ी ऐसा भाव दिखा रहा था मानो उसने बहुत कोशिश करके अपने को सँभाल रक्खा है।

जीवानन्द ने दम भर चुप रहकर कहा—तुम्हारे किसान तो अब कोई नहीं हैं। वे जिनके किसान हैं, उन्होंने स्वयं दस्तावेज़ पर दस्तख़त कर दिया है। उसे कोई रोक नहीं सकता।

षोड़शी ने मुँह उठाकर पूछा—आपका और कोई हुक्म है?

जीवानन्द को स्पष्ट प्रतीत हुआ कि कहते समय उसके होंठ उपेक्षा के आभास से मानो फड़क उठे; परन्तु संक्षेप से जवाब दिया—नहीं, और कुछ नहीं।

षोड़शी ने कहा—तो कृपया अब मेरा कहना सुन लीजिए।

"कहो।"

षोड़शी ने कहा—कल देवी की अस्थावर सम्पत्ति सहेजने की मुझे फ़ुरसत नहीं है और परसों मन्दिर में कहीं सभा-समिति करने को स्थान भी नहीं होगा। यह सब बन्द रखना होगा।

शिरोमणि ने अब तक सह लिया था, अब नहीं सहा गया। अचानक चिल्लाकर कहा—कभी नहीं! किसी हालत में नहीं। यह चालाकी हम लोगों के साथ नहीं चलेगी, यह मैं कहे देता हूँ।

एक जीवानन्द को छोड़कर बाक़ी जितने आदमी वहाँ थे सभी ने इसकी प्रतिध्वनि की।

जनार्दन राय ने अब तक कुछ कहा नहीं था; कोलाहल बन्द होने पर वे एकाएक उत्तेजित स्वर से बोल उठे—बतलाओ, तुमको फ़ुरसत क्यों नहीं है और मन्दिर के भीतर स्थान क्यों नहीं होगा?

इस प्रश्न के आख़िरी हिस्से में ताना समझकर भी षोड़शी ने सहज कण्ठ से उत्तर दिया—आप तो जानते ही हैं राय बाबू कि अब चड़क संक्रान्ति का समय है। यात्रियों की

भीड़ है; संन्यासियों का जमघट है, मुझे ही .फ़ुरसत कहाँ और उन लोगों को ही कहाँ हटा दूँ ?

वास्तव में बात ऐसी ही है। जीवानन्द ने भी समझ लिया कि इस निवेदन में रत्ती भर भी अत्युक्ति नहीं है; परन्तु जो लोग मुखिया हैं, वे दृढ़प्रतिज्ञ होकर आये थे इसलिए इस नम्र निवेदन को उपहास समझकर एकदम जल उठे। जनार्दन राय अपने को भूलकर चिल्ला उठे—"सभा तो होगी ही, मैं कहता हूँ अवश्य होगी।" भीड़ में से किसी ने एक सख़्त बात तक कह डाली।

वह षोड़शी को स्पष्ट सुनाई दी और साथ ही साथ उसका चेहरा बहुत कठोर और गम्भीर हो उठा। पल भर चुप रह-कर उसने ख़ासकर जीवानन्द को लक्ष्य करके कहा—झगड़ा करने में मुझे घृणा मालूम होती है। उसके लिए अभी मौक़ा भी नहीं है—यह बात अपने अनुचरों को समझा दीजिएगा। मुझे .फ़ुरसत कम है, आप लोगों का काम हो गया हो तो मैं अब जाती हूँ।

इस मुँह, इस कण्ठस्वर और इस प्रकार की अवहेला से जीवानन्द को भी बहुत चोट लगी और उसका कण्ठस्वर भी तीक्ष्ण हो उठा। उसने कहा—परन्तु मैं हुक्म दिये जाता हूँ, कल ही यह सब होगा और होना ही चाहिए।

"ज़बरदस्ती ?"

"हाँ, ज़बरदस्ती।"

"सुविधा-असुविधा कुछ भी क्यों न हो ?"

"हाँ, सुविधा-असुविधा की कुछ परवा नहीं।"

षोड़शी ने अब तर्क नहीं किया। पीछे ताककर इशारे से एक आदमी को बुलाकर पूछा—सागर, तुम्हारी तैयारी है न ?

सागर विनय के साथ बोला—हाँ माजी, तुम्हारे आशीर्वाद से किसी बात की कमी नहीं है।

षोड़शी ने कहा—बहुत अच्छा। ज़मींदार के लोग कल यहाँ बलवा करना चाहते हैं, परन्तु मैं यह नहीं चाहती। मेरी इच्छा नहीं है कि इस उत्सव के समय यहाँ किसी तरह का ख़ून-ख़राबा हो; परन्तु ज़रूरत पड़ी तो सब कुछ करना होगा। तुम लोग इन आदमियों को पहचान लो, इनमें से कोई भी कल मन्दिर के आसपास न आने पावे! एकाएक मार-पीट नहीं करना, सिर्फ़ गर्दनियाँ देकर निकाल देना।

अब वह किसी तरफ़ न देखकर धीरे से मन्दिर के भीतर चली गई। षोड़शी को लोग बीस वर्ष से देखते आये हैं। किसी को मालूम भी नहीं था कि उसको जानने में कुछ भी बाक़ी है, परन्तु आज उसके स्वभाव के इस असाधारण अंश का प्रथम परिचय पाकर हुज़ूर से लेकर सिपाही तक सभी मानो पत्थर की मूर्त्ति की तरह स्तब्ध हो गये।

१६

चैत्र की संक्रान्ति का उत्सव निर्विघ्न हो गया, कोई उपद्रव नहीं हुआ। यात्री लोग घर लौट गये, दूकानदार दूकान उठाने

लगे, गेरुआधारी बनावटी संन्यासी लोग भी 'शिव-शम्भु' का चिल्लाना छोड़कर गृहस्थी के काम में मन लगाने की आवश्यकता समझने लगे, आबोहवा का वही पुराना अभ्यस्त झरना बहने लगा, केवल चण्डीगढ़ की भैरवी के शरीर में न मालूम किस रोग ने घर कर लिया कि उसका वह पहले का चेहरा फिर नहीं लौटा; न जाने किस भय से उसका मन दिन-रात चौकन्ना रहने लगा।

षोड़शी को आशा थी कि उत्सव में कोई विघ्न नहीं होगा क्योंकि देवता के क्रोध के दायित्व को दूसरा कोई सिर पर ले भी सकता है किन्तु जनार्दन राय नहीं लेंगे—यह वह निश्चित रूप से जानती थी। परन्तु अब ?

तो भी दिन इस तरह बीतने लगे मानो कोई झंझट नहीं है, सब शान्त हो गया है। परन्तु वास्तव में शान्त कुछ भी नहीं हुआ था। एक षोड़शो क्यों, प्रायः सभी के मन में यह आशङ्का थी कि भीतर ही भीतर गुप्त रूप से कोई कठिन षड्-यन्त्र चल रहा है। उस मैदान से सम्बन्ध रखनेवाले किसानों के पास आज उसने खबर भेज दी थी कि वे लोग देवी की सन्ध्या-आरती के बाद मन्दिर के आँगन में इकट्ठे होंगे। आरती समाप्त हो गई। रात के आठ के बाद नव, नव के बाद दस बजने को हुए, परन्तु किसी के दर्शन नहीं हुए। जो लोग नित्य प्रणाम करने आते हैं वे प्रसाद लेकर एक-एक करके चले गये। पुजारी भी सटक गये और मन्दिर का नौकर द्वार बन्द करने की आज्ञा माँगने लगा। अब प्रतीक्षा करने से कोई

लाभ नहीं है, अवश्य ही कोई दूसरी घटना हुई है, परन्तु क्या हुआ है, यह ठीक-ठीक समझ न सकने के कारण उसके मन में बड़ी बेचैनी मालूम होने लगी। इसी समय सागर धीरे-धीरे आया। उसे अकेला देखकर षोड़शी ने व्यग्र भाव से पूछा—इतनी देर क्यों हुई सागर? और कोई क्यों नहीं आया? क्या उन लोगों को ख़बर नहीं मिली?

सागर ने कहा—ख़बर ज़रूर मिली है माजी। मैं ख़ुद घर-घर जाकर तुम्हारी इच्छा जता आया हूँ।

षोड़शी ने शङ्कित भाव से कहा—तो?

सागर ने कहा—आज शायद किसी को फ़ुरसत नहीं मिली। हुज़ूर की कचहरी में गाँव भर के आदमियों की पञ्चायत थी, वह अभी ख़तम हुई है। पञ्चू, अनाथ, राममय, नवकुमार, अक्षय माइती, यहाँ तक कि हमारे बुड्ढे विपिन चाचा भी अपने जवान बेटों के साथ वहाँ मौजूद थे। एक भी आदमी बाक़ी नहीं था। मैं भी एक नींबू के पेड़ के नीचे दीवार की ओट में खड़ा था।

षोड़शी ने कहा—अच्छा नहीं किया सागर, अगर कोई देख लेता तो—

सागर हँसकर बोला—"मैं अकेला नहीं गया था माँजी, यह साथ में थी—" यह कहकर उसने बाँये हाथ की लम्बी और मज़बूत बाँस की लाठी को बड़े प्यार के साथ दाहिने हाथ में ले लिया।

षोड़शी ने कहा—परन्तु पञ्चायत तो यहीं होने को थी ?

सागर ने कहा—हाँ। हु.जूर के भोजपुरी दरवानों की इच्छा भी थी; परन्तु गाँव का कोई आदमी राज़ी नहीं हुआ। वे इधर के आदमी हैं—हम चचा-भतीजे को शायद जानते हैं।

षोड़शी ने थोड़ी देर चुप रहकर पूछा—सभा में क्या निश्चय हुआ ?

सागर ने उत्तर दिया—निश्चय अच्छा ही है। इसी मङ्गल को मङ्गला माँजी का अभिषेक होगा। तुमको भी कोई चिन्ता नहीं है—काशीवास करने की प्रार्थना करने से सौ रुपये के लगभग मिल सकेगा।

षोड़शी ने कहा—प्रार्थना किससे करनी होगी ?

सागर ने कहा—शायद हु.जूर से ही।

षोड़शी ने पूछा—और उन लोगों का क्या हुआ, जिनकी ज़मीन छीन ली गई है ?

सागर ने जवाब दिया—डरो मत माँजी, बराबर जो होता आया है वही होगा। उस दिन जो किसानों की ओर से पाँच हज़ार रुपया नज़राने का दाखिल हुआ था उसके दस्तावेज़ वगैरह राय बाबू के सन्दूक़ में ही तो रक्खे हैं—नहीं तो उनका ज़रा सा हुक्म पाते ही सब लोग भीड़ लगाकर क्यों पहुँचते ?

षोड़शी थोड़ी देर चुप रहकर बोली—और तुम दोनों का क्या हुआ ?

सागर ने कहा—"हम चचा-भतीजे का ?" ज़रा हँसकर फिर कहा—"उसका इन्तज़ाम भी उन्होंने कर लिया है। सात-आठ दिन तक चुप नहीं बैठे थे। दारोगा पुलिस सब हाथ में ही हैं, आस-पास में कहीं डाका पड़ने भर की देर है। जानती हो न माँजी, एक बार दो-दो साल की सज़ा काट चुके हैं। अबकी दस साल के लिए निश्चिन्त ! चचा इतने में ही चल बसेंगे, मेरी उम्र अभी कम है। शायद फिर एक बार देश का दर्शन मिल जाय।" यह कहकर वह हँसने लगा।

षोड़शी ने डरती आवाज़ से पूछा—अरे, क्या सचमुच ही इसे तू सच समझता है ?

सागर ने कहा—समझना क्या है माँजी, यह तो आँख के सामने साफ़ दिखाई दे रहा है। ज्यादा नहीं, महीने दो महीने की ही देर है। शायद अपनी आँखों देखकर जा सकोगी माँजी।

षोड़शी ने कहा—और जो लोग वहाँ गये हैं उन लोगों का क्या हाल है ?

सागर ने कहा—उनकी हालत हमसे भी बदतर है। जेलखाने में खाने को तो देते हैं। सो हमें वहाँ खाने को मिल जायगा, पर इन्हें वह भी न मिलेगा। नालिशों की डिगरी होने की देर है। बस, उसके बाद राय बाबू के जोत में मज़दूरी करके एक टुकड़ा मिल जाय तो अच्छी बात, नहीं तो आसाम का चाय-बग़ीचा है ही। क्यों माँजी, तुम्हें याद नहीं पड़ता,

उस बनियों की बस्ती में हमारे ही बहुत से 'बाउरी' रहते थे, परन्तु आज वे कहाँ हैं ? उनमें से कितने ही तो चले गये कोयला खोदने और बाकी भेज दिये गये चाय-बग़ीचों में। परन्तु मैंने बचपन में देखा है कि उनके खेत थे, उनके हल-बधों सब-कुछ था। गुज़ारे भर की खेती उनमें से सभी के पास थी। आज उसका आधा हिस्सा एककौड़ी नन्दी के और आधा हिस्सा राय बाबू के पेट में समा गया है।

षोड़शी चुपचाप खड़ी-खड़ी सारी घटना के गुरुत्व का अनुभव करने लगी। अभी उस दिन जो लोग दल बाँधकर उसी से आश्रय माँगने आये थे वही लोग आज असमर्थ जानकर, प्रबल के इशारे से, उसी के विरुद्ध सलाह करने के लिए एकत्र हुए हैं। कहाँ बह गये उस दिन के उनके सारे सङ्कल्प ! जो प्रबल है, जो धनवान् और धर्मज्ञानहीन है, उसके अत्याचार से बचने का कोई उपाय दुर्बल के पास नहीं है। कहीं इसकी नालिश नहीं चलती, इसका फ़ैसला करनेवाला भी कोई नहीं है—ईश्वर सुनते ही नहीं—संसार में चिरकाल से बेरोक-टोक यही होता आया है। आज जो इतने आदमी केवल एक प्रबल मनुष्य के चरणों में अपने विवेक-धर्म-मनुष्यत्व आदि सभी की तिलाञ्जलि देकर किसी तरह जीते रहने का ज़रा सा आश्वासन पाकर घर लौट आये, इसकी लज्जा, इसका दैन्य, इसकी व्यथा कितनी ही बड़ी क्यों न हो, जहाँ तक मालूम होता है, इन दुखियों के इस क्षुद्र कौशल के सिवा दुनिया में

और कुछ भी नज़र नहीं आता! जिस अन्याय ने इतने मनुष्यों को मनुष्यत्वहीन बना दिया, उसको रोकने की शक्ति इतने बड़े ब्रह्माण्ड में कहाँ है? इसी सागर सरदार ने उस दिन पीड़ितों का पक्ष ले लिया था—दुर्बल होकर इतनी बड़ी स्पर्द्धा करने के अपराध का उससे सैकड़ों गुना अधिक दण्ड उसके लिए रख लिया गया है—इससे छुटकारा पाने का कोई रास्ता नहीं है। वह एकाएक पूछ बैठी—अच्छा सागर, तुमने यह सब सुना किसके मुँह से?

सागर ने उत्तर दिया—ख़ुद हुज़ूर के मुँह से।

"तो यह उन्हीं की चाल है?"

सागर ने ज़रा सोचकर जवाब दिया—क्या मालूम माँजी, शायद राय बाबू भी शामिल हों।

षोड़शी पल भर स्थिर रहकर बोली—अच्छा सागर, तुम जानते हो कि ज़मींदार मेरे ऊपर अत्याचार क्यों नहीं करते? मैं तो टूटी झोपड़ी में अकेली रहती हूँ—जब चाहें तभी तो कर सकते हैं।

सागर हँस पड़ा, बोला—"किसने तुमसे कहा कि तुम अकेली रहती हो? माँजी, हमें अपना परिचय अपने मुँह से कराने की मनाही है, गुरु का निषेध है"—कहते-कहते सहसा उसके मज़बूत दाहिने हाथ की पाँचों उँगलियाँ लाठी पर फ़ौलाद की सँड़सी की तरह चिपक गईं। उसने फिर कहा—जिसके डर से पञ्चायत मन्दिर में न होकर हुई है एककौड़ी

की कचहरी में, उसी के डर से तुम्हारे नज़दीक भी कोई नहीं आता। हरिहर सरदार के भतीजे सागर का नाम दस-बीस कोस के आदमी जानते हैं। तुम्हारे ऊपर अत्याचार करने-वाला आदमी तो माँजी, आस-पास के पचास गाँवों में से भी कोई ढूँढ़ नहीं सकता।

षोड़शी की आँखें अकस्मात् जल उठीं, बोली—सागर, क्या यह सच है?

सागर झुककर, उसी दम अपने हाथ की लाठी षोड़शी के पाँव के नीचे रखकर, बोला—हाँ माँजी, ऐसी ही दुआ दो कि मेरी बात झूठी न हो।

षोड़शी की दृष्टि एक बार ज़रा कोमल होकर फिर वैसे ही जलने लगी। उसने कहा—सागर, मैंने तो सुना है कि तुम लोगों को जान की परवा नहीं होती?

सागर हँसता हुआ बोला—मैं नहीं कहता हूँ माँजी कि तुमने झूठ सुना है।

षोड़शी ने कहा—सिर्फ़ जान दे ही सकते हो, ले नहीं सकते?

"ज़रा हुक्म देकर आज रात को ही जाँच कर लो न माँजी?" यह कहकर सागर ने ज्योंही षोड़शी के मुँह पर आँखें जमाकर ताका त्योंही षोड़शी डर और आश्चर्य से एकदम निर्वाक् हो गई। सागर की दृष्टि पल भर में बदल गई है! उसमें वह स्वाभाविक दीप्ति नहीं है, वह तेज नहीं है; वह कोम-

लता न जाने कहाँ छिप गई है—उसके स्थान पर निष्प्रभ संकुचित गम्भीर दृष्टि है—मानो यह वह सागर ही नहीं है, मानो यह कोई और आदमी है। सागर कहने लगा। उसका स्वर शान्त, कठिन और भारी है। उसने कहा—"रात ज़्यादा नहीं हुई है, अभी काफ़ी समय है। इसी लिए चण्डी माता का दरवाज़ा अभी तक खुला है, तुम्हारा हुक्म मैंने सुन लिया माँजी। बहुत अच्छा, वही होगा माँजी, पाप का अन्त यहीं किये देता हूँ। कल सवेरे ही सबको मालूम हो जायगा कि तुम्हारा सागर सरदार शेख़ी नहीं मार गया है।" उसकी पुश्तैनी बाँस की लम्बी लाठी तब तक षोड़शी के पैरों के नीचे पड़ी थी; वह झुककर उसे उसी दम हाथ में लेकर सीधा खड़ा हो गया। षोड़शी ने कुछ कहने की चेष्टा की, उसके होंठ काँपने लगे, मना करना चाहा परन्तु गले से आवाज़ नहीं निकली। भूडोल के समय के समुद्र की तरह उसकी छाती के अन्दर ख़ून हिलोरें मारने लगा और पल भर के लिए सागर की ऐसी अनोखी घातक की मूर्ति उसकी आँखों के सामने से हट गई। सागर ने कुछ कहा, परन्तु वह षोड़शी की समझ में नहीं आया। इतना ही मालूम हुआ कि वह दण्डवत् प्रणाम कर तेज़ी से जा रहा है।

१७

षोड़शी जिस समय सचेत हुई उस समय सागर चला गया था।

मन्दिर के नौकर ने पुकारकर पूछा—अब दरवाज़ा बन्द कर दूँ माँजी ?

"कर दो" कहकर वह चाभी के लिए खड़ी रही। बचपन से उसका जीवन यथेष्ट सुख में नहीं बीता, सोलहों आने आराम के दिन भी नहीं कटे; ख़ासकर जिस अशुभ मुहूर्त्त में बीजगाँव के नये ज़मींदार ने चण्डीगढ़ में पैर रक्खा है उसी दिन से उपद्रव और अशान्ति के बवण्डर ने उसे घेरकर अशान्त, चञ्चल और विश्रामहीन कर रक्खा है। तो भी वे सब क्लेश गोष्पद के तुल्य हैं और जहाँ आज सागर सरदार उसे डालकर अदृश्य हो गया है वह दशा समुद्र के समान है। परन्तु इस एक ही रात के भीतर सागर का वास्तव में ऐसा कोई भयानक काम कर गुज़रना इतना असम्भव था कि षोड़शी विश्वास नहीं कर सकी। अथवा, यह शङ्का भी उसके मन में नहीं हुई कि जो आदमी हत्या, हिंसा और अत्याचार के सब प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों से दिन-रात तैयार रहता है उसका पाप कितना ही बड़ा क्यों न हो, केवल सागर की लाठी से उसकी परिसमाप्ति हो जायगी। तथापि जिस दैवी शक्ति के सामने सारी शक्तियों को हार माननी पड़ती है उसी के भय से उसके मन में बड़ी बेचैनी मालूम होने लगी। मन्दिर के दरवाज़े में ताला बन्द करके नौकर ने चाभी का गुच्छा हाथ में देकर पूछा—रात ज़्यादा हो गई है माँजी, क्या मैं साथ चलूँ ?

षोड़शी का ध्यान दूसरी तरफ़ था। उसने उसके प्रश्न का मतलब न समझ कर ही पूछा—कहाँ बलाई ?

"आपको घर पहुँचाने।"

"पहुँचा देने ? नहीं—" कहकर षोड़शी स्वप्नाविष्ट की तरह चली गई। इस रास्ते में रोज़ की तरह आज उसके मन में सावधानी का ख़याल ही नहीं हुआ। रात बहुत बीत चुकी थी, गहरा अँधेरा फैला हुआ था, परन्तु दूसरे दिन की तरह आज आकाश में मेघ नहीं थे। स्वच्छ, निर्म्मल, कृष्ण द्वादशी का काला आकाश मानो किसी अदृश्य पारावार में नहाकर आया है, अभी तक मानो उसका सिर पानी से तर है। मन्दिर से उसकी झोपड़ी का अन्तर अधिक नहीं था। इस टेढ़े-मेढ़े रास्ते पर ऊपर से असंख्य नक्षत्रों का स्निग्ध प्रकाश आ रहा है; उसी पगडण्डी पर धीरे-धीरे चलकर वह अपने दरवाज़े के सामने पहुँच गई।

उतरते चैत्र के इन दिनों में गाँव में मज़दूर मिलना मुश्किल है, तथापि उसके भक्त किसानों ने इसी उत्सव के दिनों में आकर उसके आँगन को बाँस के टट्टरों से घेर दिया, झोपड़ी के टूटे-फूटे हिस्से की मरम्मत कर दी और उसके साथ मिलाकर एक रसोईघर भी खड़ा कर दिया। पुराने ब्योंड़े के स्थान में नया ब्योंड़ा लग गया। दीवारों में जो सूराख़ वग़ैरह थे उन्हें बन्द कर, लीप-पोत करके, घर को अब रहने योग्य बना दिया है। ताला खोलकर षोड़शी घर में आ खड़ी

हुई और दिया जलाकर वहीं, ज़मीन पर, बैठ गई। प्रतिदिन की तरह आज भी उसके अनेक काम बाक़ी थे। रात को रसोई का झञ्झट उसको नहीं था सही, क्योंकि जो कुछ देवी का प्रसाद वह आँचल में बाँध लाती थी उसी से रात कट जाती थी, परन्तु पूजा-पाठ आदि नित्यक्रिया वह मन्दिर में सब लोगों के सामने न करके एकान्त में घर के भीतर ही किया करती थी। इसके बाद बहुत रात तक धर्म-ग्रन्थ पढ़ती थी। ये सब उसके प्रतिदिन के नियम हैं; इसी लिए प्रतिदिन की तरह आज भी उसके मन में असमाप्त कार्यों की ताकीद होने लगी, परन्तु उसके पैर आज किसी हालत में खड़े होना न चाहते थे, उधर दरवाज़ा खुला पड़ा था। बार-बार उठने की इच्छा होने पर भी वह उसे बन्द न कर वैसी ही चुपचाप दीपक के सामने बैठी रही।

वह सागर की बात सोच रही थी। मन्दिर के समीप की किसानों की बस्ती के इन दरिद्र और दुर्दान्त मनुष्यों को वह लड़कपन से ही प्यार करती थी और उम्र बढ़ने के साथ-साथ उनके दुःख और दुर्दशा के चिह्न ज्यों-ज्यों उसको देख पड़ने लगे त्यों-त्यों, सन्तान के प्रति माता की तरह, उन लोगों पर उसका स्नेह गम्भीर होने लगा। उसने देखा कि यही लोग चण्डीगढ़ के आदिम निवासी हैं। एक समय ये सभी गृहस्थ किसान थे, परन्तु आज प्रायः किसी के पास ज़मीन-जायदाद नहीं है—वे दूसरे के खेत में मज़दूरी करके बड़े कष्ट से जीवन

बिता रहे हैं। तमाम खेतों पर या तो जनार्दन राय ने या ज़मींदार के कर्मचारियों ने अपने नाम से, या किसी दूसरे के नाम से, दख़ल कर लिया है। पिछली भैरवियों के समय देवी के जोत की बहुत सी ज़मीन थी। वह हर साल उनके इच्छा-नुसार असामियों को दे दी जाती थी। इसी उपलक्ष्य से उन लोगों में लड़ाई-झगड़ा लगा ही रहता था; परन्तु लाभ कुछ भी न था। देख-रेख और इन्तज़ाम न होने से प्राप्य अंश का कुछ तो असामियों के पेट में जाता था और जो कुछ वसूल होता था वह फ़िजूल ख़र्च में ही निकल जाता था। यह सब ज़मीन षोड़शी ने, छः-सात वर्ष पहले, फ़क़ीर साहब के आज्ञा-नुसार निर्दिष्ट मालगुज़ारी पर ऐसे किसानों को बाँट दी थी जिनके पास खेत नहीं थे। उसी समय से जनार्दन राय और एककौड़ी नन्दी से उसका झगड़ा है और उसी झगड़े ने बढ़कर तरह-तरह के बहानों से आज यह रूप प्राप्त किया है। सागर और हरिहर सरदार उस समय जेल काट रहे थे। छुटकारा पाकर वे एक दिन षोड़शी के सामने हाथ जोड़कर आ खड़े हुए। बोले—माँजी, क्या हम चचा-भतीजे की डोंगी कभी पार नहीं लगेगी, हम बराबर डूबते-उतराते ही रहेंगे?

षोड़शी नाराज़ होकर बोली—तुम लोग डूबते-उतराते क्यों रहोगे हरिहर? फिर जेलख़ाने के अन्दर वैसे बड़े-बड़े मकान किसलिए बने हैं?

सागर चुपचाप मुँह घुमाकर सिर ऊँचा किये खड़ा रहा; परन्तु बूढ़े हरिहर ने तुरन्त ही हाथ जोड़कर कहा—माँजी, हम तुम्हारे कपूत हैं इसलिए क्या तुम भी कुमाता हो जाओगी ? हमारे लिए कोई राह निकाल दो।

षोड़शी ज़रा नर्म होकर बोली—तुम्हारी बातें तो अच्छी ही हैं। इसके सिवा तुम बुड्ढे भी हो गये हो, पर तुम्हारे भतीजे ने तो शेख़ी के मारे मुँह घुमा लिया है। अपना क़सूर भी नहीं मानना चाहता—वह कभी नर्म हो सकेगा ?

अपने सब अङ्गों को एक बार देखकर हरिहर बोला—"बुड्ढा हो गया हूँ, न माँजी ? बाल भी पक गये हैं—" अब उसके ज़रा मुस्कुराते ही सागर के मुख पर प्रशान्त हँसी झलक उठी। क्षण भर में चचा-भतीजे के बीच आँखों से शायद यही बात तय हो गई कि यही अच्छा है। तुम्हारी इन पुरानी भुजाओं की ताक़त की ख़बर जिसे नहीं है, उसके सामने इसी तरह हँसकर विनय के साथ स्वीकार कर लेने में ही कुशल है।

बुड्ढा बोला—शेख़ी नहीं माँजी, आक्षेप है। वह यही कर सकता है—सागर कभी डकैती नहीं करता।

षोड़शी आश्चर्य करके बोली—"तो क्या उसने बिला क़सूर सज़ा काटी है ? सब लोग जो बात जानते हैं वह सच नहीं है—क्या तुम मुझे यही समझाना चाहते हो हरिहर ?" उसके अविश्वास का कण्ठस्वर बड़ा कठोर सुनाई दिया। तो भी वृद्ध हरिहर कुछ कहना चाहता था, परन्तु भतीजे ने घूम-

कर उसे रोका। कहा—"उस बात को सुनकर क्या करोगी माँजी! तुम भलेमानसों ने हमारा सर्वस्व छीन लिया है, यह भी सच है और फिर बक़ाया का दावा करके जब हमें जेल भेजवाया तब वह भी सच्चे गवाहों के बल पर! जज साहब की अदालत से लेकर चण्डी देवी के मन्दिर तक छोटे आदमी की बात का विश्वास करनेवाला कोई नहीं है माँजी! चलो चचा, घर चलें।" अब वह सिर झुकाकर भैरवी के पैरों की धूल माथे में लगाकर चला गया। हरिहर ने भी प्रणाम कर सलज्ज कण्ठ से कहा—"नाराज़ मत होना माँजी, वह बड़ा गँवार है, वह किसी की बात नहीं सह सकता"। चचा ने भी भतीजे का अनुगमन किया।

हों क्यों न ये लोग अन्त्यज, हों क्यों न ये डाकू; जब तक दिखाई दिया, षोड़शी स्तब्ध होकर विस्मय के साथ हीनवीर्य अधःपतित बङ्गाल के इन दोनों सबल, निडर और परम शक्तिमान् पुरुषों की ओर एकटक ताकती रह गई।

दूसरे दिन सवेरे ही षोड़शी ने सागर को बुलाकर कहा—तुम्हारे साथ कल मैंने अन्याय किया है बेटा। दस-पन्द्रह बीघे ज़मीन मेरे पास अभी और है, तुम चचा-भतीजे उसे आपस में बाँट लो। देवी को मालगुज़ारी तुम जो चाहो देना। परन्तु बुरे रास्ते पर फिर न चलना, यही मेरी शर्त है।

उस दिन से सागर और हरिहर उसके गुलाम हैं। उसके सब काम-काज में, उसके सुख-दुःख में छाया की तरह उन

लोगों ने इसका अनुसरण किया है, उसकी विपत्ति के समय छाती के बल उसे सँभाला है। यही टूटी झोपड़ी है, यही सङ्गीहीन विपन्न जीवन है, तो भी उसके ऊपर कोई अत्याचार करने का साहस नहीं करता, वह किसके डर से? यह बात उससे छिपी नहीं है। तथापि आज वह अपनी आँखों से सागर का जो चेहरा देख आई है, उससे विश्वास करने को उसे और कुछ भी नहीं रहा। वह डकैती करता है या नहीं, यह कहना कठिन है; परन्तु ज़रूरत होने पर वह सब कुछ कर सकता है, उसके पास उसका सब आवश्यक सामान मौजूद है और इशारा पाते ही वह तैयार हो सकता है, यह संशय अब उससे रोका नहीं जा सका।

फटे काग़ज़ का एक टुकड़ा एक तरफ़ पड़ा था। उसे हाथ में उठाते ही याद आया कि हैम की चिट्ठी का उत्तर लिखकर जब वह ठीक मालूम न हुआ तब उसे फाड़ डाला था और दूसरी चिट्ठी लिख भेजी थी, यह उसी फटी चिट्ठी का अंश है। गहरी रात तक जागकर जब बहुत लम्बी चिट्ठी पूरी की तब मन में सन्देह उठा कि इतनी बातें न लिखना ही अच्छा था—दूसरे के आगे अपने को इस तरह ज़ाहिर करना शायद ठीक नहीं हुआ; किन्तु निद्राहीन उस गहरी रात में ठीक करने का धैर्य भी उसको नहीं था। दूसरे दिन डाक में छोड़ने के लिए जब उसे भेजा तब दुबारा बिना पढ़े ही भेज दिया। षोड़शी को डर लगा कि कहीं इसे भी न फाड़

डालूँ, शायद आज भी हैम की चिट्ठी का जवाब न जाय। वह बात आज तक याद ही नहीं थी। अब एक-एक करके उस चिट्ठी की बातें याद पड़ने से उसको बड़ी लज्जा मालूम होने लगी। आशङ्का हुई कि शायद उस पर हुए अत्याचार की कहानी को भूल से ज्यादा समझकर उसे बचाने के लिए कोई एकाएक आ न जाय। इस हैमवती और उसके पति को याद करते ही उसका मन न मालूम क्यों विवश हो जाता है। इनके गृहस्थ-जीवन के साथ उसका घनिष्ठ परिचय नहीं है, तो भी मन में स्वप्न की तरह कल्पनाएँ उठती रहती हैं; उनके दाम्पत्य-जीवन की छोटी-बड़ी घटनाओं की कल्पना कर उसको एक प्रकार का आनन्द सा मालूम होता है; कभी हैम और कभी निर्म्मल की चिन्ता में वह डूब जाती है और अपनी हालत याद पड़ते ही एकाएक चौंक उठती है—लज्जा के मारे मिट्टी में मिल जाना चाहती है। अपने मन की इस मोहाविष्ट लक्ष्यहीन गति को वह पहचानती थी, उसको भय होता, लज्जा आती और अपनी सारी शक्ति से वह इन चिन्ताओं से छुटकारा पाना चाहती थी। इस आवेग के आक्रमण से आत्मरक्षा करने के लिए उसने चिट्ठी के टुकड़े को नोचकर फेंक दिया। वह कठिन होकर बैठ गई। मन में दृढ़ता के साथ कहा—किसलिए मैंने हैम को इतनी बातें लिखीं? मैं उन लोगों से कौन सी सहायता माँग लूँगी? किसलिए लूँगी? देवी के भैरवी पद में क्या रक्खा है कि अपना मनुष्यत्व खोकर उसे पकड़े रहूँ? इसे

कोई भी ले ले, मेरा क्या बिगड़ता है ? ये लोग सभी तो चोर और डाकू हैं। जिसमें जितनी अधिक ताक़त है वह उतना ही बड़ा डाकू है। मौक़े से दूसरे का गला दबाकर छीना-झपटी करना ही इनका काम है। यही तो संसार है, यही तो समाज है, यही तो मनुष्य का पेशा है! पीड़ित और पीड़क के बीच अन्तर है ही कितना जो मैं हर घड़ी इस तरह डरती रहती हूँ ? मैं इतनी चिन्ता किसलिए करती हूँ ? किसलिए मैंने इतना बड़ा झगड़ा रच रक्खा है ? यह भैरवी का आसन छोड़ देना क्यों इतना कठिन काम है ? क्षण भर के लिए षोड़शी के मन में हुआ कि यह काम उसके लिए ज़रा भी कठिन नहीं है, कल सवेरे ही वह एककौड़ी और जनार्दन राय को लिखकर भैरवी का सारा स्वत्व वापस कर सकती है। कहीं आकर्षण नहीं है, कुछ भी कष्ट न होगा।

षोड़शी उठकर खड़ी हो गई। पास के ताक़ पर स्याही, क़लम और कागज़ रहता था। उतारकर उस समय चिट्ठी लिख डालने को तैयार हो गई। जल्दी-जल्दी दो-चार पंक्तियाँ लिखकर वह अकस्मात् रुक गई। सरदार और सागर की याद आई—संसार भर के दस्युपन के बीच केवल इन्हीं दोनों दस्युओं ने उसे आज तक नहीं छोड़ा है। अचानक अपनी बात याद आते ही सोचा, उसके बाद ? खड़े होने को भी कोई स्थान नहीं है—सभी ने छोड़ दिया है। कल जिन लोगों ने आकर उसे घेर लिया था, वही लोग आज शासन

के डर से ज़मींदार के आँगन में पञ्चायत में शामिल होकर उसके विरुद्ध राय दे आये हैं। परन्तु अधिक दिनों की बात नहीं है, इन्हीं लोगों को वह—खैर, इन छोटे आदमियों के विरुद्ध उसको कोई शिकायत नहीं है। एककौड़ी, जनार्दन, शिरोमणि, उसके पिता तारादास और इस ज़मींदार के बारे में नई-पुरानी बहुत सी बातें याद आईं, आज उनकी आलोचना की भी आवश्यकता नहीं है। फ़कीर साहब याद पड़े। वे क्यों इस तरह एकाएक ग़ायब हो गये, किसी को मालूम नहीं है; किसी को इसका कारण नहीं बता गये, किसी के सम्बन्ध में उनको कोई शिकायत नहीं थी। पहले भी वे कई बार इस तरह चुपचाप चले गये थे; भक्ति, श्रद्धा या सम्मान से बिदा कर देने का अधिकार उन्होंने कभी किसी को नहीं दिया। शायद यही उनके चले जाने की रीति है। तथापि इस बार का चला जाना षोड़शी को बेतरह खटकता था, इसे केवल आदत समझकर वह चैन नहीं पाती थी। वे कभी-कभी किसी बात के उत्तर में कहा करते थे—'बेटी, मैं अपने ही साथ नाता तोड़ना चाहता हूँ, दूसरे के साथ नहीं। इसी लिए मैं आदमियों का सङ्ग नहीं छोड़ सकता, उनके बीच में ही रहना पसन्द करता हूँ। तुमने भी जब अपना शरीर देवता को सौंप दिया है, तब उसी बात को सबसे पहले याद रखना। किसी बहाने अपना समझकर भूल मत कर बैठना। देवता के साथ मिलाकर अपने को धोखा देने के बदले देवता

को छोड़ देना बेहतर है।' आज इसी प्रतारणा ने उसे जाल की तरह फँसा लिया है। आज अगर वे होते! आज अगर उनके चरणों में जाकर रो सकती तो कैसा अच्छा होता! बहुत दिन पहले उन्होंने एक बार कहा था—'बेटी, जब वास्तव में तुम्हें मेरी ज़रूरत होगी, सचमुच में ही मुझे हृदय से पुकारोगी, तब कहीं क्यों न रहूँ, मैं आ जाऊँगा।' आज उसका वही ज़रूरत का दिन है।

ठीक इसी समय बाहर से आवाज़ आई—भीतर आ सकता हूँ?

षोड़शी का विक्षिप्त उद्भ्रान्त चित्त पल भर के लिए सचेतन होकर दूसरे ही क्षण में स्तब्ध हो गया। इतना बड़ा अलौकिक विस्मय सहसा उससे सहा नहीं गया।

"क्या मैं आ सकता हूँ?"

"आइए।" कहकर षोड़शी खड़ी हो गई और अतिथि के चरणों में आँखें मूँदे हुए ही साष्टाङ्ग दण्डवत् कर ज्योंही वह कम्पित चरणों से खड़ी हुई त्योंही प्रदीप के उजेले में उसने देखा कि फ़कीर साहब नहीं, जीवानन्द चौधरी है। आँखों की पलकें नहीं गिरीं—मानो वे पत्थर हो गई हैं। घर का दीपक बुझना चाहता था; परन्तु पल भर में जो इस तरह पत्थर सी हो गई उसको पहचानने लायक़ उजेला था। इस अपूर्व भक्ति के उच्छ्वास का लक्ष्य ज़मींदार नहीं है, कोई दूसरा ही है, इसका अनुभव करने से जीवानन्द का भय हट गया। उसने

गम्भीर होकर कहा—ऐसी पति-भक्ति कलियुग में दुर्लभ है। मेरा पाद्य-अर्घ्य-आसन आदि कहाँ है ?

षोड़शी उसी तरह स्तब्ध खड़ी रही। अपने इस भाग्य-हीन जीवन में उसने बहुतों को देखा है। उसने जनार्दन को देखा है, एककौड़ी नन्दी को देखा है, अपने पिता को तो अच्छी तरह से देखा है; परन्तु मनुष्य इतना बड़ा पाखण्डी हो सकता है, इस बात को जानकर अपने को सँभालने में उसे विलम्ब लगा। जीवानन्द ने इधर-उधर देखकर बाँस की खूँटी पर से कम्बल का आसन उतार लिया, और उसे बिछाते हुए खुले दरवाज़े की ओर देखकर कहा—"दरवाज़ा बन्द करके ही क्यों न बैठूँ ? सुना है, तुम्हारे सागरचाँद मुझे बहुत पसन्द नहीं करते। आसपास कहीं होंगे ज़रूर—आ पड़े तो शायद कुछ और ही न सोच बैठें। छोटे ही आदमी तो हैं।" कहकर वह ज़रा हँसा। षोड़शी का शरीर काँपने लगा। उसने सोचा कि यह अकेला आया नहीं होगा। इसके आदमी अवश्य पास ही छिपे हुए हैं, और शायद ऐसे मौक़े की ही वह रोज़ प्रतीक्षा कर रहा था। आज कुछ उत्पात कर सकता है—हत्या करना भी असम्भव नहीं। वह इस घबराहट को छिपा न सकी। डरी हुई आवाज़ से बोली—आप यहाँ क्यों आये हैं ?

जीवानन्द ने कहा—"तुम्हें देखने। मालूम होता है, डर गई हो—डरना ही चाहिए। लेकिन चिल्लाना मत। साथ

में पिस्तौल है। तुम्हारा डाकुओं का दल मर ही जायगा, मेरा कुछ कर न सकेगा।" अब उसने पाकेट से रिवालवर निकालकर फिर उसी में रखते हुए कहा—"तो दरवाज़ा बन्द करके ज़रा निश्चिन्त होकर ही बैठूँ :" वह तिरछी नज़र से षोड़शी को देखकर ज़रा हँसा, फिर आगे बढ़कर उसने दरवाज़ा बन्द कर दिया। जिसका घर है, उसकी अनुमति की प्रतीक्षा तक नहीं की।

षोड़शी के चेहरे का रङ्ग उड़ गया। कुछ कहने की चेष्टा करते ही गला रुक गया। इसके बाद जब गले से स्वर निकला, तब वह डर से काँपने लगी। कहा—सागर नहीं है।

जीवानन्द ने कहा—नहीं है? तो वह गया कहाँ?

षोड़शी बोली—आप लोग जानते हैं, इसी लिए तो—

जीवानन्द ने कहा—जानते हैं! हम लोग कौन-कौन हैं? मैं तो कुछ भी नहीं जानता था।

षोड़शी बोली—निराश्रय समझकर ही तो आज अपने आदमियों के साथ आप मुझे मारने आये हैं। परन्तु मैंने आपका क्या बिगाड़ा है?

जीवानन्द ने कहा—अरे, आदमियों को साथ लेकर मारने आया हूँ! तुम्हें? ऐसा नहीं है। मेरा तो जी घबराता था इसलिए तुम्हें देखने चला आया हूँ।

षोड़शी फिर कुछ नहीं बोली। उसकी आँखों में आँसू भर आये थे। इस नीच उपहास से वे सूख गये। शुष्क

नेत्रों से धरती की ओर देखती हुई वह चुपचाप बैठी रही; और समीप ही एक दूसरा आदमी उसी के अवनत मुख की ओर अपनी लुब्ध और तृषित दृष्टि स्थिर रखकर, उसी की तरह, चुप बैठा रहा।

१८

"अलका ?"

"कहिए।"

"तुम्हारे यहाँ शायद तमाखू पीने का कुछ इन्तज़ाम नहीं है ?"

षोड़शी ज़रा मुँह उठाकर फिर नीचे की ओर मुँह किये बैठी रही। जवाब न पाकर जीवानन्द ज़ोर से साँस छोड़कर बोला—व्रजेश्वर भाग्यवान् था। देवी-रानी उसे पकड़ लाई थी सही, परन्तु अम्बरी तमाखू पिलाई थी और भोजन कराके दक्षिणा भी दी थी। बिदा की बात नहीं उठाऊँगा। क्यों, बङ्किम बाबू की 'देवी चौधरानी' पढ़ी है न ?

षोड़शी ने मन में ठान लिया था कि यह पाखण्डी आज उसका कितना ही अपमान क्यों न करे, वह कुछ उत्तर न देकर सब सह लेगी; परन्तु जीवानन्द के कण्ठस्वर के अन्तिम अंश ने उसके उक्त सङ्कल्प को तोड़ दिया। उसने कहा—आपको पकड़ लाती तो इन्तज़ाम भी वैसा ही होता—ख़ुशामद न करनी पड़ती।

जीवानन्द हँस पड़ा, बोला—वह ठीक है। रस्सी से बाँध-बूँधकर खींच लाना ही लोगों की नज़र में पड़ता है, भोजपुरी सिपाही भेजकर पकड़ लाना ही गाँव के लोग देखते हैं; परन्तु जिस सिपाही को आँख से देख नहीं सकते—अच्छा अलका, तुम्हारे शास्त्र में—उसे क्या कहते हैं? अतनु न? बड़ा अच्छा है वह।

षोड़शी का मुँह लाल हो आया। वह उसी तरह सिर झुकाये चुपचाप बैठी रही। जीवानन्द ने कहा—एक छोटा सा अनुरोध था; परन्तु आज चलता हूँ। तुम्हारे अनुचरों को पता लग जाय तो दामाद की ख़ातिर तो करेंगे ही क्या, उलटे यह विश्वास भी नहीं करेंगे कि सुसराल आया है। समझेंगे, डर के मारे झूठ कह रहा है।

षोड़शी कुछ न बोली; इस नीच परिहास से उसने हृदय में कितनी लज्जा का अनुभव किया, वह भी मुँह उठाकर जानने नहीं दिया।

जवाब न पाकर जीवानन्द थोड़ी देर तक उसके मुँह की ओर ताकता रहा, फिर खड़ा होकर बोला—अम्बरी तमाखू का धुआँ इस वक्त पेट में न जाय तो भी चल सकता है; परन्तु धुएँ के सिवा और कुछ पेट में न जाय तो खड़ा रहना भी मुश्किल है। क्या घर में सचमुच कुछ नहीं है अलका?

षोड़शी चुप ही रहती, परन्तु उसका नाम लेकर किये गये अन्तिम प्रश्न ने उसका मौन तोड़ दिया। पूछा—कुछ क्या, शराब?

जीवानन्द ने हँसकर सिर हिलाया। कहा—अबकी तुमसे भी भूल हुई। उसके लिए दूसरे आदमी हैं, तुम नहीं। तुमने मुझे काफ़ी मौक़ा दिया है कि मैं तुमको पहचान लूँ। तुम्हें दूसरा कलङ्क क्यों न लगाऊँ, किन्तु अस्पष्टता के लिए बदनाम नहीं कर सकता। इसलिए अगर तुमसे कुछ माँगना ही पड़े तो कोई ऐसी चीज़ माँगूँ, जो मनुष्य को जीवित रखती है, मृत्यु की तरफ़ ढकेल नहीं देती : दाल-भात, रोटी-मिठाई, चूड़ा-लावा जो कुछ भी हो दो। खाकर भूख तो मिटाऊँ। नहीं है कुछ?

षोड़शी स्थिर होकर देखने लगी। जीवानन्द कहने लगा—आज सवेरे मन अच्छा नहीं था। शरीर की बात तो उठाना ही फ़िज़ूल है; क्योंकि मैं जानता ही नहीं कि नीरोग किसे कहते हैं। सवेरे एकाएक मैं नदी के किनारे निकल पड़ा—कुछ पता नहीं, किनारे-किनारे कहाँ तक चला गया—लौटने की इच्छा ही नहीं हुई। सूर्यदेव अस्ताचल को सिधार गये। मैदान के बीच में अकेले खड़े होने पर कुछ भी अच्छा नहीं लगा। ख़ाली तुम्हारी याद आने लगी। इसी कारण लौटते समय शायद घर नहीं गया; भूखा-प्यासा ही आ खड़ा हुआ उस थूहर के पेड़ के पीछे। देखा, दरवाज़ा खुला हुआ है, दिया जल रहा है। बिना पिस्तौल के मैं एक पग नहीं चलता, वह पाकेट में ही था, तो भी ज़रा डर मालूम होने लगा। जानता हूँ कि तुम्हारे अनुचर लोग कहीं ओट में छिपे ज़रूर होंगे। पत्तियों के भीतर से झाँककर देखा, फ़र्श पर तुम

चुपचाप बैठी हो। अपने को सँभाल नहीं सका। तो क्या सचमुच कुछ नहीं है?

षोड़शी ने पल भर आनाकानी करके कहा—परन्तु घर जाकर तो आप आराम से खा-पी सकते हैं।

जीवानन्द ने कहा—"यानी मेरे घर की ख़बर मेरी अपेक्षा तुम ज़्यादा जानती हो।" अब वह ज़रा हँसा। परन्तु वह हँसी उसके मुँह में मिल जाने के पहले षोड़शी ने कहा—आपने दिन भर नहीं खाया, और घर में आपके खाने का इन्तज़ाम नहीं है, यह भी हो सकता है?

एक व्यक्ति के कण्ठस्वर में उत्तेजना का आभास छिपा नहीं रहा, परन्तु दूसरे व्यक्ति ने निहायत भलेमानस की तरह कहा—"हो क्यों नहीं सकता? मैंने खाया नहीं, इसलिए कोई भूखी बैठी हुई थाली परोसे राह ताकती रहेगी—इसकी व्यवस्था तो मैंने पहले से कर नहीं रक्खी थी। आज एकाएक रूठ जाने से कैसे चलेगा अलका!" अब उसने ज़रा मुस्कुराकर कहा—आज चलता हूँ। परन्तु वास्तव में रह न सकने से अगर किसी रोज़ चला आऊँ तो नाराज़ न होना।

इस आदमी की विशृङ्खल जीवन-यात्रा का जो चित्र उस दिन षोड़शी अपनी आँखों देख आई थी वह उसके सामने खिंच गया। उसे मालूम हुआ कि वह दुराचारी मदोन्मत्त निर्दय मनुष्य यह नहीं है; जो ज़मींदार झूठ-मूठ बदनाम करके उसका सर्वनाश करने को तैयार है, वह कोई दूसरा है।

वह कोई दूसरा है, जिसने उस दिन उसे मन्दिर से निकाल देने का हुक्म दिया था। तो भी ज़रा आनाकानी की, परन्तु दूसरे ही क्षण उसने कहा—थोड़ा सा देवी का प्रसाद है, परन्तु क्या आप उसे खा सकेंगे ?

"खा नहीं सकूँगा? इसी से कहती हो।" अब वह लौट-कर फिर आसन पर बैठ गया और बोला—प्रसाद न खा सकूँगा ? लाओ जल्दी लाओ। ज़रा दिखा तो दूँ कि देव-ताओं के प्रति मेरी कैसी श्रद्धा है।

षोड़शी ने उसके सामने के स्थान को गीले हाथ से पोंछ लिया फिर रसोईघर में जितना देवी का प्रसाद रक्खा था वह सब लाकर पत्तल पर परोस दिया। कहा—अगर आप खा सकें तो खाइए।

जीवानन्द ने गर्दन हिलाकर कहा—खाने को तो बैठा ही हूँ लेकिन यह तो तुम्हारे लिए है।

षोड़शी ने कहा—यानी आप यह पूछते हैं कि आपके लिए अलग से लाकर रख लिया था या नहीं ?

जीवानन्द ने हँसकर कहा—नहीं जी नहीं; मैं वह नहीं पूछता हूँ। मैं पूछता हूँ कि और नहीं न है ?

षोड़शी ने कहा—नहीं।

"तब तो एक तरह से दूसरे के मुँह का कौर छीनकर खाना होगा अलका !"

षोड़शी बोली—क्या दूसरे के मुँह के कौर को छीनकर खाने से आपको हज़म नहीं होता ?

इसका उत्तर जीवानन्द हँसकर नहीं दे सका। कहा—मालूम नहीं, निश्चय के साथ कुछ कह नहीं सकता। ख़ैर, जाने दो। परन्तु तुम क्या खाओगी ? एक काम करो, इसमें से आधा उठा लो।

षोड़शी बोली—ऐसा करने से न तो मेरा काम होगा और न आपका पेट ही भरेगा।

जीवानन्द ने ज़िद करके कहा—न भरे तो न सही, परन्तु तुम्हें तो रात भर उपवास नहीं रखना पड़ेगा।

आज खाने की षोड़शी को याद ही नहीं थी। जीवानन्द न आता तो प्रसाद रक्खा ही रह जाता, वह शायद छूती भी नहीं। परन्तु उस बात का ज़िक्र न करके बोली—भैरवियों को उपवास का अभ्यास करना पड़ता है। उसके सिवा मेरे एक रात के कष्ट की चिन्ता करके आपको व्याकुल होने की आवश्यकता नहीं। अब विलम्ब न करके भोजन कीजिए। देवता के प्रसाद के प्रति अपनी भक्ति का प्रमाण तो दीजिए।

"सो तो देता हूँ। परन्तु तुम्हें वञ्चित कर रहा हूँ, यह जानकर वह उत्साह अब नहीं है।"

"अच्छा, थोड़े उत्साह से ही शुरू कर दीजिए—" कहकर षोड़शी ज़रा हँसी, फिर बोली—मुझे वञ्चित करने से अब नया अपराध आपको न होगा। परन्तु जिस बात की आपने

चर्चा चलाई है, उससे मुझे लज्जा मालूम हो रही है। अब उसे रहने दीजिए।

जीवानन्द ने अब बिना कुछ कहे-सुने खाना शुरू कर दिया। दो मिनट के बाद एकाएक मुँह ऊपर करके उसकी ओर देखते हुए कहा—पन्द्रह वर्ष हुए न? आज बड़ा आदमी बन सकता।

षोड़शी चुपचाप देखने लगी। प्रायः पन्द्रह वर्ष पहले का इशारा तो उसने समझ लिया, परन्तु अन्तिम शब्दों का मतलब उसको मालूम नहीं हुआ।

जीवानन्द कहने लगा—और सब छोड़कर सिर्फ़ शराब की बात ही लूँ। मरने जा रहा हूँ, यह तो अपनी आँखों से ही देख आई हो—परन्तु ऐसा मज़बूत आदमी कोई नहीं जो मेरी यह लत छुड़ा दे। शायद अभी समय है, अभी तक बच सकता हूँ। लोगी मेरा भार अलका?

षोड़शी ने आँखें बन्द कर लीं। वह भीतर ही भीतर काँपने लगी। वहाँ हैम, उसके पति, उसका लड़का, उसके नौकर-चाकर, उसकी गृहस्थी के असंख्य चित्र जादू की तरह खिंच गये।

जीवानन्द ने कहा—मेरा सारा भार तुम सँभालो अलका।

आत्मसमर्पण के इस अनोखे स्वर ने उसे चकित कर दिया। इस जीवन में इस तरह से किसी ने उसे बुलाया नहीं

था; उसके लिए यह बिलकुल नई चीज़ है; परन्तु भैरवी-जीवन के संयम की कठोरता ने उसे आत्मविस्मृत नहीं होने दिया। उसने पल भर ठहरकर कहा—अर्थात् मेरे जिस कलङ्क का फ़ैसला आपने किया है, उसी पर आप मुझसे मोहर लगवा लेना चाहते हैं। मेरी माँ को धोखा दिया था, पर मुझको धोखा न दे सकोगे।

"उसकी तो मैंने चेष्टा नहीं की। बिना जाने तुम्हारे साथ बुरा सलूक ज़रूर हो गया है। तुम्हारे मामले का फ़ैसला किया है, परन्तु उस पर विश्वास नहीं किया। बार-बार मन में हुआ कि ऐसी कठोर नारी को जिसने अभिभूत कर रक्खा है वह कौन है?"

षोड़शी ने अचरज करके कहा—उन लोगों ने उसका नाम नहीं बतलाया आपको?

जीवानन्द ने कहा—नहीं। मैंने बार-बार पूछा, परन्तु वे चुप ही रह गये।

"आप खाइए" कहकर षोड़शी चुपचाप बैठी रही। दो-चार कौर खाने के बाद जीवानन्द फिर मुँह उठाकर बोला—मैं ज़्यादा खा नहीं सकता।

"ज़्यादा खाने को आपसे नहीं कहती हूँ। मामूली आदमी जितना खाते हैं, उतना तो खाइए।"

"मैं उतना भी नहीं खा सकता। बस, मैं तो खा चुका हूँ।"

षोड़शी बोली—नहीं, अभी पेट नहीं भरा है। प्रसाद के ऊपर अभक्ति दिखाओगे तो अनुचरों को बुला दूँगी।

जीवानन्द ने हँसकर कहा—वह तुमसे न होगा। तुम्हारा बल मुझे मालूम है। पुलीस के दल से लेकर मैजिस्ट्रेट साहब तक उसका नमूना देख गये हैं। तुम्हारी माँ तुम्हें एक दिन मेरे हाथ में सौंप गई हैं, इसे इनकार करने की शक्ति तुममें नहीं है।

षोड़शी चुप रही। जीवानन्द ने हाथ-मुँह धोकर कहा—मैं जभी अकेला रहता हूँ तभी उस रात की बात को मन में सोचते-सोचते कुछ मालूम ही नहीं होता कि कब समय बीत गया। ख़ास कर, नौकरों के घर में भेजे जाने के डर से हाथ जोड़े हुए तुम्हारा वह रोना! भूली नहीं होगी।

षोड़शी बोली—नहीं।

जीवानन्द ने कहा—उसके बाद वह पेट का दर्द। घर में तुम और मैं दोनों ही थे। तुम्हारी गोद में सिर रक्खे-रक्खे रात बीती—उसके बाद की घटनाओं के सोचने में अच्छा नहीं लगता। तुम्हें रिश्वत देने की बात याद आने से शर्म के मारे गड़ सा जाता हूँ। मैं उस दिन 'पुरी' में मौत का मेहमान होने को था। प्रफुल्ल ने कहा—भाई साहब, अलका को बुला लीजिए। मैंने कहा—भला वह क्यों आने लगी? प्रफुल्ल ने कहा—ज़बरदस्ती बुलवा लीजिए। मैंने कहा—ज़बरदस्ती पकड़वाकर लाने से लाभ क्या होगा? उसने

उत्तर दिया—वे एक बार आ तो जायँ, फिर नफ़ा-नुक़सान का हिसाब किया जायगा। तुम उसे नहीं जानती, परन्तु तुम्हारा इतना बड़ा भक्त और कोई नहीं है।

इस भक्त का परिचय पाने के लिए षोड़शी को कौतूहल हुआ, परन्तु उसने उसे रोक लिया।

जीवानन्द ने कहा—रात बहुत हो गई है, तुम्हें बिठा रखना उचित नहीं। अब मैं जाऊँ न ?

षोड़शी ने कहा—आपको कोई ज़रूरी बात थी न ?

"ज़रूरी बात ? कोई ख़ास बात थी ऐसा तो मुझे अब याद नहीं पड़ता। अब तो एक ही बात याद आ रही है कि तुम्हारे साथ बातचीत करना ही मेरा काम है। बहुत चापलूसी की तरह मालूम हुआ न ? परन्तु मुझे पहले मालूम ही न था कि इस तरह चापलूसी भी कर सकता हूँ। अच्छा अलका, तुम्हारा क्या सचमुच दुबारा विवाह हुआ था ?"

षोड़शी मुँह उठाकर बोली—दुबारा कैसा ? विवाह तो मेरा एक ही बार हुआ है।

जीवानन्द ने कहा—और तुम्हारी माँ ने जो तुम्हें मेरे हाथ सौंपा था, वह क्या सच नहीं है ?

षोड़शी ने उसी वक्त उत्तर दिया—नहीं, वह सच नहीं है। माँ ने मेरे साथ जो रुपये दिये थे केवल उन्हीं रुपयों को आपने लिया था, मुझे नहीं लिया। धोखा देने के सिवा उसमें ज़रा भी कहीं सत्य नहीं था।

जीवानन्द चुपचाप बैठा रहा। जवाब देने की चेष्टा भी नहीं की। जब इसी तरह पाँच मिनट बीत गये तब षोड़शो को बेचैनी मालूम होने लगी। धीमी दीपशिखा को तेज़ कर देने के अवकाश में उसने देखा कि जीवानन्द ध्यान लगाये बैठा है। इस ध्यान के तोड़ने में उसको सङ्कोच मालूम होने लगा। परन्तु थोड़ी देर बाद वह जब स्वयं ही बोला तब मालूम हुआ, मानो कोई बहुत दूर से बोल रहा है।

"अलका, तुम्हारी यह बात सच नहीं है।"

"कौन बात?"

जीवानन्द ने कहा—तुमने जो समझ रक्खा है। सोचा था कि वह बात किसी पर ज़ाहिर नहीं करूँगा, परन्तु उस 'किसी' के अन्दर आज तुम्हें शामिल नहीं कर सकता। तुम्हारी माँ को धोखा दिया था सही, पर तुम्हें धोखा देने का मौक़ा मुझे परमात्मा ने नहीं दिया। मेरा एक अनुरोध रक्खोगी?

"कहिए।"

जीवानन्द ने कहा—मैं सत्यवादी नहीं हूँ, परन्तु आज की बात पर तुम विश्वास करो। तुम्हारी माँ को मैं जानता था। उनकी लड़की को स्त्रीरूप से ग्रहण करने की इच्छा मुझे नहीं थी, केवल उनके रुपयों का ही लालच था; परन्तु उस रात को जब तुम्हें हाथ में पाया तब लौटा देने की इच्छा भी मुझे नहीं हुई।

"तो क्या इच्छा हुई?"

जीवानन्द ने कहा—रहने दो, उसे तुम मत सुनना चाहो। शायद आखिर तक सुनने पर स्वयं ही समझोगो, और वैसा समझने से हानि के सिवा मेरा कुछ लाभ नहीं होगा। परन्तु उन लोगों ने तुम्हें जो समझाया था वह सच नहीं है। तुम्हें छोड़कर मैं भाग नहीं गया था।

षोड़शी ने इस इशारे का मतलब समझा, और घृणा से उसका शरीर कांप उठा। उसने कहा—अपने न भागने का इतिहास अब कह डालिए।

उसका कठोर कण्ठस्वर सुनकर जीवानन्द ने मुस्कुराकर कहा—अलका, मैं इतना नासमझ नहीं हूँ। अगर कहना ही पड़े तो उसका फलाफल जानकर ही कहूँगा। तुम्हारी माँ के इतने बड़े भयानक प्रस्ताव पर भी मैं क्यों राज़ी हो गया था, जानती हो? मैंने एक स्त्री का हार चुरा लिया था। सोचा था, रुपया देकर उसे मना लूँगा। वह तो मान गई, पर पुलीस का वारन्ट उससे नहीं रुका। छः महीने जेल में काटे—वही जो गहरी रात को तुम्हारे घर से निकला था, फिर लौटने का मौक़ा नहीं मिला।

षोड़शी ने साँस रोककर पूछा—उसके बाद?

जीवानन्द तुरन्त थोड़ा हँसकर बोला—उसके बाद कुशल ही है! जीवानन्द बाबू के नाम और भी एक वारन्ट था। कई महीने पहले रेलगाड़ी से एक यात्री का बैग लेकर वह चम्पत हो गया था। आखिर उसके लिए और भी डेढ़ साल

काटना पड़ा ! कुल दो साल तक ग़ायब रहने के बाद जब बीजगाँव के भावी ज़मींदार बाबू रङ्गमञ्च पर पुनः प्रविष्ट हुए तब कहाँ रही अलका और कहाँ रही उसकी माँ !

जीवानन्द की आत्मकहानी का एक अध्याय समाप्त हुआ। उसके अनन्तर दोनों चुपचाप बैठे रहे।

"रात कितनी होगी ?"

"शायद ज़्यादा बाक़ी नहीं है।"

"तो इस अँधेरे में घर जाने की आवश्यकता नहीं है।"

"आवश्यकता नहीं है ? इसका मतलब ?"

षोड़शी ने कहा—कम्बल बिछाये देती हूँ। विश्राम कीजिए।

जीवानन्द ने आँखें फाड़कर कहा—विश्राम करूँगा ? यहाँ ?

षोड़शी ने कहा—हानि क्या है ?

"परन्तु यहाँ बड़े आदमी ज़मींदार को तकलीफ़ होगी न अलका ?"

षोड़शी बोली—होने पर भी रहना ही पड़ेगा। ग़रीब के दुःख का भी ज़रा अनुभव कर जाइए।

जीवानन्द चुप हो रहा। उसकी आँखों में आँसू भर आये थे। इच्छा हुई कि कह दे, मैं सब जानता हूँ, पर समझनेवाला आदमी मर गया है। परन्तु यह बात न कहकर उसने कहा—अगर सो जाऊँ तो ?

अलका ने शान्त भाव से उत्तर दिया—उसी की तो सम्भावना है।

१८

जीवानन्द की जूठी पत्तल और जूठन को फेकने तथा रसोई-घर का थोड़ा सा काम ख़तम करके दरवाज़ा बन्द करने को षोड़शी के बाहर जाने पर उसकी उस चिट्ठी का फटा अंश जीवानन्द की नज़र में पड़ा। हाथ में उठाकर उन मोती की पाँति की भाँति सजे हुए अक्षरों की ओर एकटक देखते हुए, उस दीये के उजेले में, साँस रोककर उसने उसे पढ़ डाला। बहुत सी बातें छूट गई हैं, तो भी इतना समझ में आ गया कि लेखिका की विपत्ति का अन्त नहीं है और सहायता न सही तो सहानुभूति माँगने के लिए यह चिट्ठी जिसके उद्देश्य से लिखी गई है वह यद्यपि नारी है, तथापि प्रत्येक अक्षर की ओट में खड़े और एक आदमी की छाया दिखाई दे रही है जिसे नारी समझने का भ्रम नहीं हो सकता। यह छिन्न पत्रांश मानो उस पर सवार हो गया। एक बार, दो बार समाप्त कर जब वह उसे तीसरी बार पढ़ने लगा तब षोड़शी के पैरों की आहट से मुँह उठाकर कहा—पूरा होता तो पढ़ने में बड़ा आनन्द मिलता। जैसे अक्षर हैं वैसी ही भाषा है, छोड़ने को जी नहीं चाहता।

षोड़शी ने उसके स्वर का परिवर्तन सहज में समझकर भी कहा—ज़रा उठिए, कम्बल बिछा दूँ।

जीवानन्द ने सुनकर भी अनसुनी करके कहा—मामूली बुद्धि से ही समझ में आ सकता है कि यह नर-पिशाच कौन

है, परन्तु उसका नाश करने के लिए जिस देवता का आवाहन किया गया है, वह कौन है ? क्या उसका नाम सुन सकता हूँ ?

षोड़शी ने इस बार भी अपने को विचलित होने से रोका। जाड़े के मौसिम में दक्षिण की हवा के झोंके की तरह उसका अन्तःकरण किसी अनजान पद-ध्वनि के पाने की आशा से व्याकुल हो रहा था, वहाँ जीवानन्द का परिहास नहीं पहुँचा। उसने सहज कण्ठ से कहा—अच्छा वह होगा। अब ज़रा खड़े हो जाइए, मैं इसे बिछा दूँ।

जीवानन्द ने और कुछ नहीं कहा। वह एक तरफ़ खड़ा होकर चुपचाप उसका काम देखने लगा। षोड़शी ने पहले झाड़ू से घर बुहारा, फिर कम्बल को दुहराकर बिछाया और उसके ऊपर, चद्दर न रहने के कारण, अपनी एक धुली हुई धोती यत्न से बिछाकर कहा—बैठिए। परन्तु मेरे यहाँ तकिया नहीं है—

"ज़रूरत होने से ही मिलेगा—कमी न रहेगी।" कहकर उसने उस धोती को उठाकर यथास्थान रख दिया। षोड़शी ने मन में लज्जित होकर कहा—उसे क्यों उठा दिया, ख़ाली कम्बल गड़ेगा न ?

जीवानन्द ने बैठकर कहा—परन्तु ज़्यादती इससे भी अधिक गड़ेगी। यत्न से आराम पहुँचता है सही, परन्तु उसकी नक़ल में न आराम है और न तृप्ति। बल्कि उसे किसी दूसरे को देना।

बात सुनकर षोड़शी आश्चर्य के मारे अवाक् हो गई। उसके चेहरे पर उदासी छा गई। जीवानन्द ने कहा—हाँ, उसका नाम ?

षोड़शी के मुँह से थोड़ी देर तक बात नहीं निकली। उसके बाद बोली—किसका नाम ?

जीवानन्द ने हाथ के पत्रांश की ओर देखकर कहा—जो दैत्य-वध के लिए शीघ्र अवतीर्ण होंगे, जो द्रौपदी के सखा हैं, जो—और कहूँ ?

इस व्यङ्ग्योक्ति का उसने जवाब नहीं दिया। परन्तु मोह का आवरण उसकी आँखों के सामने से टुकड़े-टुकड़े होकर गिर पड़ा। उसको मालूम नहीं हुआ कि कैसे इस धर्मलेश-हीन, सर्वदोषाश्रित पाखण्डी के अद्भुत अभिनय से मुग्ध होकर उसके मन में क्षण भर के लिए करुणायुक्त क्षमा का उदय हुआ था। चित्त की इस क्षणिक विह्वलता के कारण पश्चात्ताप से उसका अन्त:करण सावधान और कठोर हो उठा। क्षण भर के बाद जब जीवानन्द ने फिर वही प्रश्न किया तब षोड़शी ने अपना कण्ठस्वर संयत करके कहा—उसके नाम से आपका प्रयोजन ?

जीवानन्द ने कहा—प्रयोजन है क्यों नहीं। पहले से मालूम हो जायगा तो आत्मरक्षा का कोई उपाय कर लूँगा।

षोड़शी ने उसके मुँह को तीव्र दृष्टि से देखकर कहा—तो क्या आत्मरक्षा का मुझे ही अधिकार नहीं है ?

जीवानन्द ने कहा—है क्यों नहीं।

षोड़शी ने कहा—तो आप उस नाम को जान नहीं सकेंगे। आपकी और मेरी आत्मरक्षा का उपाय एक साथ नहीं हो सकता।

जीवानन्द ने थोड़ी देर स्थिर रहकर कहा—अगर ऐसा ही हो तो समझ लो कि आत्मरक्षा की आवश्यकता मुझे ही अधिक है, और उसमें ज़रा भी कसर नहीं रहेगी।

षोड़शी के मन में आया कि कहे—'मुझे मालूम है, एक रोज़ ज़िले के मजिस्ट्रेट साहब के सामने इसका फ़ैसला हुआ था। उस दिन एक निरपराध नारी के सिर पर कलङ्क का बोझ लादकर तुम्हें आत्मरक्षा करनी पड़ी थी। और आगे भी तुम्हारी रक्षा का उतना ही बड़ा मूल्य मुझे ही देना पड़ेगा।' परन्तु उसने कुछ कहा नहीं। उसने सोचा कि इतने बड़े नर-पशु के सामने इतने बड़े दान का उल्लेख करना व्यर्थ है।

जीवानन्द को होश आया। उसके इतने बड़े औद्धत्य का जिसने जवाब तक नहीं दिया, उसके सामने शेख़ी मारना स्वयं उसके मन में खटकने लगा। उसकी उत्तेजना घट गई, परन्तु क्रोध बढ़ गया। कहा—अलका, तुम्हारे इस वीर पुरुष का नाम मुझे मालूम है।

षोड़शी ने उसी समय उत्तर दिया—मालूम क्यों नहीं होगा, नहीं तो आप नाहक़ झगड़ा कैसे करते? इसके, सिवा संसार के वीर पुरुषों में परस्पर परिचय रहना भी चाहिए।

जीवानन्द ने कठोर स्वर से कहा—वह ठीक है। परन्तु इस कापुरुष के बार-बार अपमान करने का बोझ तुम्हारे सहायक वीर पुरुष सह सकें तो अच्छा है। ख़ैर, तुमने इस चिट्ठी को फाड़ क्यों डाला?

षोड़शी बोली—इसलिए कि दूसरी चिट्ठी लिखकर भेज दी थी।

"परन्तु सीधे उन्हीं को न लिखकर उनकी स्त्री को क्यों लिखा? क्या यह शब्दभेदी बाण उस वीर पुरुष की ही शिक्षा है?"

षोड़शी ने कहा—इसके बाद?

जीवानन्द ने कहा—इसके बाद, आज मेरा संशय मिटा। तुम्हारे मित्र की ख़बर मैंने दूसरे से सुनी थी, परन्तु राय महाशय से जितनी ही बार पूछा उतनी ही बार वे चुप हो गये! आज मालूम हुआ कि उन्हीं को सबसे ज़्यादा चिढ़ क्यों है।

षोड़शी चौंक उठी। कलङ्क के बवण्डर में पड़कर उसके शरीर में कहीं लाञ्छन का दाग़ लगने में बाक़ी नहीं था, परन्तु उसने यह नहीं सोचा था कि बवण्डर के बाहर रहने पर भी और एक आदमी छुटकारा नहीं पावेगा। उसने धीरे-धीरे पूछा—उनके सम्बन्ध में आपने क्या सुना है?

जीवानन्द ने कहा—"सब कुछ।" ज़रा रुककर कहा—तुम्हारा अचम्भा और तुम्हारे गले की मीठी आवाज़ सुनकर मुझे हँसी आनी चाहिए थी, पर मैं हँस नहीं सका। मेरे लिए यह ख़ुशी की बात नहीं है। उस आँधी-पानी की रात

की बात याद है? उसके गवाह हैं। गवाह लोग कहाँ छिप-कर देख लेते हैं, यह पहले से मालूम करना कठिन है। मैं जब गाड़ी से बैग लेकर भागा था तब सोचा था कि किसी ने देखा नहीं है।

षोड़शी ने कहा—अगर ऐसा हुआ ही हो तो उसमें भारी दोष क्या हुआ?

जीवानन्द ने कहा—"उसे छिपाना क्या दोष नहीं है? और यह पत्रांश? ज़रा एक बार ख़ुद ही पढ़ो तो कैसा मालूम होता है? इसे मैं साथ लिये जाता हूँ। ज़रूरत होगी तो ठीक जगह पर पहुँचा दूँगा। मेरी तरह ये भी तो एक बार तुम्हारा फ़ैसला करने बैठे थे न। देखता हूँ, तुम्हारा फ़ैसला करने में विपत्ति है।" अब वह मुस्कुराया।

षोड़शी चुपचाप सोचने लगी। विपत्ति की सूचना देकर हैम के सहारे वास्तव में उसने निर्म्मल को पत्र लिखा है, हैम का नाम लेकर वास्तव में निर्म्मल को बुलाया है—यह आह्वान जब इस चिट्ठी के फटे अंश से इस आदमी को भी धोखा नहीं दे सका तब पूरी चिट्ठी क्या हैम की दृष्टि को ही चकमा दे सकेगी? और ठीक इसी ओर कोई उँगली उठाकर हैम की दृष्टि आकृष्ट करे तो लज्जा की सीमा नहीं रहेगी।

उसकी आँखों के सामने हैम की गृहस्थी का चित्र—उसके पति, उसके पुत्र, उसकी दास-दासियाँ, उसके ऐश्वर्य, उसकी जीवन-यात्रा की धारा—जिसकी छवि वह दिन पर दिन

देखती आई है सभी—कलङ्क की भाफ से छा जायगा। यह समझकर वह मानो अपना मुँह अपने ही को दिखा न सकी। और यह जो पापी उसी के घर में बैठकर उसी को डरवा रहा है, जिसके कुकर्मों की सीमा नहीं है, जो मिथ्या का जाल बुनकर एक अपरिचित निरपराध रमणी का सर्वनाश करने को तुला हुआ है, उसके प्रति षोड़शी को इतनी घृणा हुई जितनी मानो उसने अपनी ज़िन्दगी में कभी किसी के प्रति न की होगी। और यह विष जिस हृदय को मथ करके निकला उसका गर्भतल मानो इसकी जलन से अग्निकुण्ड की तरह जलने लगा।

निर्म्मल आ ही जायँगे! उन्हें कितनी ही असुविधा क्यों न हो, इस दुःख की पुकार को वे टाल नहीं सकेंगे—अपने मन के इस स्वाभाविक विश्वास की लज्जा से मानो वह भस्म होने लगी। उस समय उसी के कलङ्क को केन्द्र बनाकर ससुर-दामाद में, बाप-बेटी में, ज़मींदार-रियाया में जो लड़ाई की धूम मचेगी उसकी वीभत्सता की कल्पना ने उसे लज्जा से मिट्टी में मिला देना चाहा।

शायद पाँच-छः मिनट के सन्नाटे के बाद जीवानन्द ने, ठीक इसी समय, उसके चेहरे पर दृष्टि जमाकर कहा—क्यों, बहुत सी बातें मुझे मालूम हैं न?

षोड़शी ने विह्वल की तरह उत्तर दिया—हाँ।

"तो यह सब सच है, क्यों?"

षोड़शी वैसे ही सहज भाव से बोली—हाँ, सच है।

जीवानन्द हक्का-बक्का सा हो गया। इस प्रकार अप्रत्याशित संक्षिप्त उत्तर के पश्चात् सहसा उसके मुँह से कोई बात नहीं निकली। इतना ही कहा—"ओफ़, सब सच है!" अब स्तिमित दीपशिखा को उज्ज्वल करते हुए उसके मुख की ओर बार-बार देखकर अन्त में पूछा—तो अब तुम क्या करोगी?

"आप मुझे क्या करने को कहते हैं?"

"तुम्हें?" कहकर जीवानन्द स्तब्ध होकर मुँह नीचा किये बैठा-बैठा तैलहीन दीये को अकारण बार-बार उसकाने लगा। थोड़ी देर में जब वह बोला तब भी उसकी दृष्टि उसी दीपक के प्रति थी। कहा—तो ये लोग जो तुम्हें असती कहकर—

इतनी देर बाद उसने जीवानन्द की बात काटकर कहा—उस बात की ज़रूरत नहीं। इन लोगों के विरुद्ध मैंने तो आपके यहाँ नालिश नहीं की। मुझे क्या करना होगा, वही कहिए। कोई कारण दिखाने की आवश्यकता नहीं।

जीवानन्द ने कहा—सो ठीक है। परन्तु सब लोग झूठ कहते हैं और तुम्हीं सच बोलती हो—क्या यही तुम मुझे समझाना चाहती हो अलका?

उसके मुँह की ओर देखकर कुछ उत्तर देने की चेष्टा करते हुए षोड़शी फिर चुप हो गई। जीवानन्द ने इससे भी अपने

को अपमानित समझा; कहा—तुम उत्तर देना भी नहीं चाहती हो ?

षोड़शी ने गरदन हिलाकर "नहीं" कहा।

"यानी, मुझे कैफ़ियत देने की अपेक्षा बदनाम होना भला है। बहुत अच्छा, परन्तु सब कुछ साफ़-साफ़ समझ में आ गया है।" यह कहकर जीवानन्द ने परिहास की हँसी हँसी। परन्तु उससे भी षोड़शी के कण्ठस्वर की स्वाभाविकता नष्ट न हुई। उसने कहा—साफ़-साफ़ समझ में आ जाने के बाद क्या करना होगा, सो तो कहिए।

उसके पूछने के ढङ्ग और स्थिर कण्ठस्वर से जीवानन्द का क्रोध और अधैर्य सैागुना बढ़ गया। उसने कहा—"तुम जानती हो कि तुम्हें क्या करना होगा; परन्तु मुझे मन्दिर की पवित्रता की रक्षा करनी होगी। वास्तव में अभिभावक तुम नहीं, मैं हूँ। मैं नहीं जानता कि पहले क्या होता था, परन्तु अब से भैरवी को भैरवी की ही तरह रहना होगा; ऐसा न होगा तो उसे जगह ख़ाली करनी पड़ेगी। इस तरह की चिट्ठी लिखने से नहीं चलेगा!" अब मुँह उठाते ही उसकी ईर्ष्यापूर्ण क्रूर दृष्टि षोड़शी की नज़र में पड़ी। इससे षोड़शी की दृष्टि पल भर में जैसे कोसों बढ़ गई वैसे ही लालसा के उष्ण निःश्वास का अपने शरीर में अनुभव कर संसार भर से उसे अरुचि हो गई। मन में हुआ कि हैम, उसका परिवार, यह देवमन्दिर, यहाँ के असहाय किसानों का दुःख और उसका अपना भविष्यत्

किसी की उसे आवश्यकता नहीं है—सब बन्धनों से छुटकारा पाकर किसी निर्जन जङ्गल में जाकर वह जान बचा ले। सब से अधिक इच्छा उसे यह हुई कि निर्म्मल न आवें। बहुत देर तक चुपचाप रहकर अन्त में धीरे-धीरे बोली—अच्छी बात है, वही होगा। मैं इस निर्णय के लिए झगड़ा नहीं करना चाहती कि वास्तव में अभिभावक कौन है; आप लोग अगर ऐसा समझें कि मेरे चले जाने से मन्दिर की भलाई होगी, तो मैं चली जाऊँगी।

इसे ठट्ठा समझकर जीवानन्द जल-भुनकर बोला—तुम चली जाओगी, यह ठीक है। क्योंकि, मैं ऐसा उपाय करूँगा जिससे तुम्हें जाना पड़ेगा।

षोड़शी वैसे ही नम्र स्वर से बोली—मैं जब स्वयं जाना चाहती हूँ तब आप क्यों नाराज़ होते हैं? परन्तु आपके ही ऊपर इसका भार छोड़ जाती हूँ कि मन्दिर की वास्तव में भलाई हो।

जीवानन्द ने पूछा—तुम कब जाती हो?

षोड़शी ने उत्तर दिया—आप लोग जभी आज्ञा दें। कल, आज, अभी—जब कहिए तब।

जीवानन्द का क्रोध घटने के बदले और बढ़ गया। उसने कहा—परन्तु निर्म्मल बाबू?—जमाई बाबू?—

षोड़शी ने कातर स्वर से कहा—उनका नाम न लीजिएगा।

जीवानन्द ने कहा—मेरे मुँह से उनका नाम तक सुनना पसन्द नहीं ? बहुत अच्छा। परन्तु तुम्हें क्या क्या दिया जाय ?

"कुछ भी नहीं।"

जीवानन्द ने कहा—जानती हो, यह घर तक छोड़ना होगा ? यह भी देवी का है।

षोड़शी सिर हिलाकर बोली— सब जानती हूँ। हो सका तो कल ही खाली कर दूँगी।

"कल ही ? अच्छी बात है। कुछ निश्चय किया है, कहाँ रहोगी ?"

षोड़शी बोली—यहाँ नहीं रहूँगी, इससे अधिक कुछ निश्चय नहीं किया। एक दिन बिना कुछ समझे-बूझे ही मैं भैरवी हुई थी और आज बिदा लेते समय भी मैं इससे अधिक कुछ न सोचूँगी।

जीवानन्द चुप हो गया। उसको मालूम होने लगा कि अब तक शायद कहीं उससे गलती हो रही थी।

षोड़शी बोली—आप देश के ज़मींदार हैं। चण्डीगढ़ की भलाई-बुराई का बोझ आपको सौंप जाने में अब मुझे कोई चिन्ता नहीं रही। परन्तु मेरे पिताजी बड़े दुर्बल मनुष्य हैं। उनके भरोसे आप निश्चिन्त न हो जाइएगा।

उसके स्वर और बातों से विचलित होकर जीवानन्द ने पूछा—क्या तुम सचमुच चली जाना चाहती हो अलका ?

षोड़शी अपनी बात की ही अनुवृत्ति कर कहने लगी—और अपने दीन-दरिद्र किसानों के सुख-दु:ख का भार भी मैं आपको ही सौंपे जाती हूँ।

जीवानन्द ने जल्दी से उत्तर दिया—हाँ हाँ, सो तो होगा। कहो तो वे लोग क्या चाहते हैं?

"उन्हीं लोगों से पूछ लीजिएगा। जाते समय मैं केवल आपकी ही बात उन लोगों से कह जाऊँगी।" एकाएक षोड़शी बाहर की तरफ़ झाँककर बोली—"मैं अब जाती हूँ। मेरे नहाने का समय हो गया।" अब उसने अपनी धोती और अँगौछा खूँटी पर से उतारकर कन्धे पर रख लिया।

जीवानन्द ने अकचकाकर पूछा—नहाने का समय इतनी रात में?

"रात नहीं है। आप घर जाइए।" कहते-कहते षोड़शी घर से निकल पड़ी। उसकी इस अकारण और आकस्मिक व्यग्रता से जीवानन्द ख़ुद भी व्यग्र हो उठा। उसने कहा—परन्तु मेरी तो सभी बातें बाक़ी रह गईं अलका?

षोड़शी ने कहा—आप घर जाइए।

जीवानन्द ने ज़िद पकड़कर कहा—नहीं। जब तक मेरी बातें ख़तम न होंगी तब तक मैं यहीं तुम्हारी प्रतीक्षा करता रहूँगा।

षोड़शी ठहर गई। वह अनुनय के साथ बोली—"नहीं, आपके पैरों पड़ती हूँ, मेरे लिए आप प्रतीक्षा न करें।"

अब वह बाईं ओर के वन-मार्ग से तेज़ी के साथ आँखों से ओझल हो गई।

२०

उस दिन सवेरे चारों ओर कुहरा फैला हुआ था; राय महाशय अभी बिस्तर छोड़कर बाहर आये थे; एक भले आदमी को भीतर घुसते देखकर उन्होंने पूछा—कौन है?

"मैं हूँ निर्म्मल" कहकर दामाद ने समीप आकर उन्हें प्रणाम किया। निर्म्मल के आकस्मिक आगमन से उन्होंने विस्मय या हर्ष कुछ भी प्रकट नहीं किया। नौकरों को बुलाकर कहा—कौन है रे, निर्म्मल का सामान हैम के कमरे में ले कर रख आ। रास्ते में तुम्हें कुछ तकलीफ़ तो नहीं हुई? हैम, उसका लड़का, सब अच्छे तो हैं?

निर्म्मल ने सिर हिलाकर बताया कि सब अच्छे हैं।

राय महाशय ने कहा—परन्तु अकेले क्यों आये निर्म्मल? हैम को साथ लेते आते तो और एक बार भेंट हो जाती।

निर्म्मल ने कहा—दो-चार दिन के लिए फिर—

राय महाशय हँस पड़े। बोले—यह क्या दो-चार दिन का मामला है बेटा। इसमें दो-चार महीने की आवश्यकता है। जाओ, भीतर जाओ—हाथ मुँह धोओ जाकर।

निर्म्मल ने भीतर आकर देखा कि यहाँ भी वही एक ही भाव है। किसी तरह हो, उनके आने की बात किसी को

अज्ञात नहीं थी, और इसके लिए कोई प्रसन्न भी नहीं था। हाथ-मुँह धोना, कपड़े उतारना वग़ैरह हो चुकने पर सास गरम चाय और कुछ जलपान अपने हाथ से लाकर दामाद को खिलाने बैठीं और बोलीं—क्या हैम ने आना नहीं चाहा ?

निर्मल ने कहा—नहीं।

"क्या वह जानती है, तुम क्यों आ रहे हो ?"

निर्म्मल ने सिर हिलाकर कहा—जानती क्यों नहीं; सभी जानते हैं।

"तो भी मना नहीं किया ?"

उनके प्रश्न और स्वर से व्यथा का अनुभव कर निर्म्मल ने कहा—मना क्यों करेगी अम्मा ? वह तो जानती है, मैं कभी बुरे काम में हाथ नहीं डालता।

"और उसके पिता ही बुरा काम करते रहते हैं—क्या यही वह जानती है निर्म्मल ?" अब वे थोड़ी देर तक सिर नीचा किये चुपचाप बैठी रहीं; फिर एकाएक आवेग के साथ बोलीं—वह कुछ भी जानती हो बेटा, यह काम तुम कर नहीं सकोगे। मैं इस काम में कभी तुम्हें हाथ डालने न दूँगी। ससुर-दामाद की लड़ाई होगी! गाँव के लोग तमाशा देखेंगे। उससे पहले मैं पानी में डूब मरूँगी। यह कहे देती हूँ बेटा।

निर्म्मल ने धीरे-धीरे कहा—परन्तु जो दुखी है, जो सहाय-हीन है, उसकी रक्षा करना ही तो हमारा पेशा है अम्मा।

सास बोली—परन्तु पेशा ही तो मनुष्य का सब कुछ नहीं है न बेटा। वकील-बैरिस्टरों की भी माँ-बहिनें हैं, स्त्री है, सास-ससुर हैं—बड़े लोगों की मान-मर्यादा की रक्षा करने की व्यवस्था उनके लिए भी तो है।

निर्म्मल ने सिर हिलाकर कहा—"ज़रूर है अम्मा, ज़रूर है।" उसके बाद सारी घटना को हलका कर देने के लिए ज़रा हँसकर कहा—शायद अन्त तक लड़ाई-झगड़ा कुछ भी न करना पड़े।

गृहिणी का मुख इससे भी प्रसन्न नहीं हुआ, बोलीं—हो सकता है; परन्तु वह केवल तुम्हारे ससुर की सब तरह से हार होने पर ही हो सकता है। उसके बाद वे इस गाँव में राय महाशय बनकर नहीं रह सकते। इसके सिवा षोड़शी दुर्बल भी नहीं, सहायहीन भी नहीं। उसके साथ लठैत डाकुओं का दल है, ज़मींदार भी उससे डरते हैं। एक चिट्ठी पाते ही उसके आदमी पाँच सौ कोस दूर से घर-द्वार बाल-बच्चे छोड़कर चले आते हैं। यह काम हम सैकड़ों चिट्ठियों से भी कर नहीं सकतीं। वह है भैरवी, जादू-टोना तन्त्र-मन्त्र न जाने क्या-क्या जानती है। सो चाहे वह रहे, चाहे चली जाय, उससे मेरा कुछ नफ़ा-नुक़सान नहीं है। अपने पाप का फल आप ही भोगेगी पर मैं जीते जी अपनी लड़की का सत्यानाश न होने दूँगी, यह मैं तुमसे कहे देती हूँ।

निर्म्मल चुपचाप बैठे रहे। किसी तरह भी हो, इधर जानने में कुछ बाक़ी नहीं है, और षडयन्त्र रचने में भी कहीं कसर नहीं रह गई है। उनके ससुर ने चारों ओर से घेरा लगा रक्खा है, कहीं ज़रा सा भी छेद निकाला नहीं जा सकता। उनकी चुपचाप स्वभाववाली सास इस ढङ्ग से इतनी मज़बूती से बातें करना जानती हैं, यह उन्हें मालूम नहीं था। जो कुछ उन्होंने कहा वे उन्हीं की सोची हुई बातें हैं, किसी की सिखाई हुई नहीं हैं; इसमें संशय बना ही रहा। परन्तु एकाएक कोई जवाब भी निर्मल से देते नहीं बना। इस अर्ज़ी का मसविदा बनाकर जिसने इनके मुँह में ठूँस दिया है, उसने बहुत सोच-विचार करके ही ठूँसा है और यह भी उससे छिपा हुआ नहीं है कि केवल परोपकार करने के लिए ही यह पश्चिम की एक प्रान्तसीमा से स्त्री-पुत्र छोड़कर चला आया है—यह उत्तर भी निर्मल किसी तरह नहीं दे सकेगा।

घण्टे भर विश्राम करने के बाद जब निर्म्मल घर से निकले तब राय महाशय बाहर बैठक में बैठे हुए थे। वे किसलिए, कहाँ जाते हैं, इत्यादि वृथा पूछ-ताछ में उन्होंने समय नष्ट नहीं किया; केवल ज़रा जल्दी लौटने का अनुरोध कर कह दिया कि इस थकावट की हालत में अगर देर से नहाओगे और खाओगे तो बीमार पड़ सकते हो।

शिरोमणिजी पास बैठे कुछ कह रहे थे। उन्होंने झाँक-कर अकचकाते हुए पूछा—जमाई बाबू हैं न?

राय महाशय ने "हाँ" कहा। शिरोमणि को बुलाकर बातचीत करने की कोशिश करते ही जनार्दन ने उन्हें रोक-कर कहा—निर्म्मल भाग नहीं रहा है। अपनी बात पूरी कर लो, मुझे अभी उठना है।

निर्मल चुपचाप बाहर चले आये। उनके ससुर ने इस कौतूहली पड़ोसी के अप्रिय प्रश्नों का उत्तर देने से उन्हें बचा दिया, इस बात का अनुभव कर उनका मुँह लाल हो उठा।

वे षोड़शी के साथ भेट करने जा रहे थे। दो दिन पहले जिस उमङ्ग को लेकर और मन में जिस प्रकार का चित्र खींचकर उन्होंने अपना प्रवास-गृह छोड़ा था आज वह नहीं था। जिस सुदीर्घ कल्पना ने मार्ग के सारे दुःखों को हर लिया था वह सास-ससुर के व्यक्त और अव्यक्त अभियोग के आक्रमण से छिन्न-भिन्न हो गई। समवेत और प्रबल शक्तियों के विरुद्ध उनके अकेले पौरुष ने निराश्रय के अवलम्ब, दुर्बल और निर्जित नारी के निःस्वार्थ बन्धु रूप से, इस गाँव में आना चाहा था। उस पौरुष की बड़ी सामर्थ्य और शोभा थी; परन्तु आकर देखा कि उनके सभी कामों का इसी बीच एक कारण प्रकट हो पड़ा है। वह कारण जैसा कुत्सित है वैसा ही काला है। स्याही से लीप-पोतकर एकाकार होने में अब कुछ बाकी नहीं है। निर्मल ने ससुर को कभी आदर्श पुरुष नहीं समझा; वे दिहात के संसारी मनुष्य हैं, मामूली हालत से बढ़ते-बढ़ते अब उन्होंने बहुत सी सम्पत्ति एकत्र कर

ली है। इस कारण परलोक के ख़र्च का पन्ना भी ख़ाली पड़ा रहने की बात नहीं है—उसमें अधर्म की पूँजी का लेखा होना ही चाहिए—यह उन्हें अच्छी तरह मालूम था, और इसलिए वे मन में उन्हें क्षमा भी करते थे; परन्तु आज उन्होंने जब मन्दिर की प्राचीर की परिक्रमा करके उस पगडण्डी से षोड़शी की झोंपड़ी की ओर क़दम बढ़ाया तब उनके चित्त में एक ओर जैसे ससुर के प्रति द्वेष और घृणा उत्पन्न हुई वैसे ही दूसरी ओर, कुछ अधिक न जानकर भी, षोड़शी के प्रति चिढ़ और वितृष्णा से उनका मन खट्टा हो गया। वे मन में बार-बार कहने लगे कि जो स्त्री पत्र के द्वारा प्रायः अपरिचित पराये पुरुष की कृपा-प्रार्थना करने में ज़रा भी नहीं सकुचाती और उस बात को निर्लज्जा की तरह शेख़ी के साथ कहती फिरती है उसे, और कुछ भी हो, सम्मान का उच्च पद नहीं दिया जा सकता। परन्तु एकाएक उनकी विचारधारा बाधा पाकर यहाँ रुक गई। मोड़ घूमते ही उनकी उत्सुक दृष्टि थूहर की पत्तियों के भीतर से, पास खड़ी हुई, षोड़शी के अवनत चेहरे पर जा पड़ी। वह आँगन के बाहर खड़ी एकाग्र चित्त से टट्टरों में रस्सी बाँध रही थी। आगन्तुक के पैरों की आहट उसे नहीं मिली। पल भर के लिए निर्म्मल न तो हिल सके और न आँख ही हटा सके। यही उस दिन की बात है, तो भी उन्हें मालूम हुआ कि वह भैरवी यह नहीं है। परन्तु वे निश्चय नहीं कर सके कि परिवर्त्तन कहाँ है। वही लाल किनारेवाली

गेरुए रङ्ग की साड़ी, वही खुली हुई रूखी लटें, गले में वैसी ही रुद्राक्ष की माला, वैसे ही मुख पर उपवास की क्षीण छाया—सिन्दूर से रँगा हुआ त्रिशूल तक हाथ के पास टिका हुआ है—कुछ भी नहीं बदला है—तो भी किसी अज्ञात मोह ने उन्हें कुछ देर तक आविष्ट कर रक्खा। रस्सी में गाँठ देकर आँख उठाते ही षोड़शी चौंक उठी, पर दूसरे ही क्षण में रस्सी छोड़कर मुस्कुराती हुई सामने आकर बोली—आइए। घर में आइए।

निर्म्मल सकुचाकर बोले—आपके काम में हर्ज किया।

षोड़शी मुस्कुराकर बोली—टट्टर बाँधना क्या मेरा काम है? और हो भी तो क्या अपने नातेदार की ख़ातिरदारी न करनी चाहिए? सुसराल में 'दामाद की ख़ातिर नहीं हुई, परन्तु साली की कुटी से बहनोई को अनादर के साथ लौटने नहीं दूँगी। आइए, घर में आकर बैठिए। लल्ला, हैम, नौकर-चाकर सब अच्छे तो हैं? आप अच्छे हैं?

निर्म्मल ज़रा सकुचाने लगे। गरदन हिलाकर कहा—सब अच्छे हैं, परन्तु आज बैठूँगा नहीं।

षोड़शी ने कहा—"क्यों भला?" फिर स्वर को नरम करके और ज़रा पास आकर कहा—एक दिन अँधेरे में हाथ पकड़कर लाई थी, याद है? दिन में उसकी आवश्यकता नहीं है, चलिए। जो उतनी दूर से बुला सकती है, वह तनिक और खींच ले जायगी।

निर्म्मल को लज्जा मालूम हुई, चोट भी लगी। इस प्रकार के बर्ताव, इस तरह की बातों की आशा षोड़शी के मुँह से निर्मल ने नहीं की थी; ये तो उनकी कल्पना से भी दूर थीं। विदुषी संन्यासिनी भैरवी को वे शान्त, समाहित, दृढ़ यहाँ तक कि कठोर ही समझते थे; उसे संसार की अन्य स्त्रियों के समान समझने में भी उन्हें सङ्कोच होता था। उसके बारे में बहुत सोचा है; काम-काज के बीच में, विश्राम के समय इसी षोड़शी की चिन्ता उन्होंने कई बार की है—हृदय आनन्द से भर गया, परन्तु कभी इस विचारधारा को नियमित या संयत करने की चेष्टा नहीं की। किन्तु आज जब उसी षोड़शी ने अपने को नीचे खींचकर, साधारण मनुष्यों में शामिल कर दिया तब निर्म्मल ने अपने हृदय के एक ओर जैसे व्यथा का अनुभव किया, वैसे ही दूसरी ओर एक तरह के कलुषित आनन्द से क्षण भर में उनका सारा अन्तःकरण प्लावित हो गया।

निर्म्मल को घर में लाकर षोड़शी ने कम्बल बिछाकर बिठाया, फिर पूछा—रास्ते में तकलीफ़ तो नहीं हुई?

निर्म्मल ने कहा—नहीं। परन्तु मन्दिर में आज आपको काम नहीं है क्या?

षोड़शी ने कहा—"यानी आज मन्दिर में रविवार है या नहीं?" उसके बाद कहा—"काम ज़रूर है, सुबह एक दफ़ा कर भी आई हूँ। जितना बाक़ी है वह थोड़ी देर में कर लिया जायगा।" हँसकर कहा—जमाई बाबू, यह

आपकी अदालत नहीं है, मन्दिर है। देवता लोग अपने दास-दासियों को पल भर की छुट्टी नहीं देते, कान पकड़कर चौबीसों घण्टे सेवा कराते हैं।

"परन्तु यह नौकरी आपने अपनी ही इच्छा से की है।"

"अपनी इच्छा से? होगा।" अब षोड़शी ज़रा हँसकर बोली--अच्छा, तो आने की ख़बर ज़रा पहले से क्यों नहीं दी?

निर्म्मल ने कहा—समय नहीं था। परन्तु उसका दण्ड मिल गया, सुसराल में आदर नहीं मिला। कम से कम मुझे देखकर वे ख़ुश नहीं हुए। अच्छा, यह बात आपको कैसे मालूम हुई? और मेरे आने की ख़बर, आने के पहले ही, किसने ज़ाहिर कर दी? मालूम है आपको?

षोड़शी ने कहा—मैं कह नहीं सकती, पर अनुमान कर सकती हूँ।

निर्म्मल ने कहा—अनुमान तो मैं भी कर सकता हूँ, परन्तु की किसने, और कहाँ उसको ख़बर मिली? मालूम हो तो बताइए। मुझे आशा है, आपने यह बात प्रकट न की होगी।

षोड़शी हँसी, बोली—कोई भी आशा करने से मैं किसी को रोक नहीं सकती। परन्तु जानकर आप क्या करेंगे? आप आये हैं यह ख़बर सच है और मेरे ही लिए आये हैं यह भी ठीक है। बल्कि यह कहिए कि आपका आना सार्थक होगा या नहीं—मेरी रक्षा कर सकेंगे या नहीं?

निर्म्मल ने कहा—जी-जान से कोशिश तो करूँगा।

"यदि कष्ट हो तो भी ?"

निर्म्मल ने सिर हिलाकर कहा—हाँ, कष्ट हो तो भी।

षोड़शी हँस पड़ी। निर्म्मल उसके मुँह की ओर ताककर ख़ुद भी ज़रा हँसकर बोले—हँसीं क्यों ?

"हँसती हूँ इसलिए कि पुराने ज़माने में भैरवियाँ परदेशी मनुष्यों को भेड़ा बनाकर रख लेती थीं। अच्छा भेड़े का वे करती क्या थीं ? खेतों में चराया करती थीं या लड़वाकर तमाशा देखती थीं !" कहते-कहते षोड़शी छोटी लड़की के समान खिलखिलाकर हँसने लगी।

निर्म्मल का शरीर और मन पुलक से नाचने लगा। इस कठिन आवरण के नीचे रहस्यमयी कौतुकप्रिय नारी-प्रकृति दबी पड़ी है—उसके व्रत और उपवास की हज़ारों तरह की कठोर साधना से भी उसकी हँसी का झरना अभी नहीं सूखा है, राख के भीतर की आग की तरह वह जीवित है—इस बात का स्मरण करते ही उनका शरीर कण्टकित हो उठा। उसके परिहास में स्वयं भी साथ देकर निर्मल ने कहा—शायद कभी-कभी देवी को बलि देकर खाती भी हों। अर्थात् मेरे ससुर या सास ने, बीच में, आपके यहाँ आकर बहुत सी अप्रिय असत्य बातें कही हैं।

षोड़शी बोली—"नहीं। उनमें से कोई नहीं आया। मैंने तन्त्र-मन्त्र में सिद्धि प्राप्त की है, यह असत्य हो सकता है। परन्तु अप्रिय क्यों होगा निर्म्मल बाबू ? फिर भी आपके

आने का ढङ्ग देखकर संशय होता है कि शायद असत्य भी न हो।" उसके मुख में हँसी का आभास लगा ही रहा, परन्तु कण्ठ का स्वर बदल गया। होंठ और स्वर में बिल्कुल सामञ्जस्य नहीं रहा।

अचम्भे में आकर निर्म्मल अवाक् हो रहे। किसी तरह उनकी समझ में न आया कि इसमें कितना परिहास है, कितना तिरस्कार है और वह किसलिए है। षोड़शी ने भी और कुछ नहीं कहा, परन्तु उसके अवनत मुख पर जो लज्जा की लाल आभा झलक गई वह उनको दीख पड़ी। किन्तु वह पल भर के लिए ही थी। उसने अपने को सँभालकर, आँख उठाकर, उनकी ओर देखते हुए कहा—रिश्तेदार की अभ्यर्थना तो हुई। परन्तु वह हँसी-दिल्लगी से जहाँ तक हो सकती है उतनी ही—उससे अधिक सामर्थ्य मुझमें नहीं है भैया—अच्छा अब ज़रा काम की बातचीत की जाय।

उसके प्यारे सम्बोधन को इस बार उन्होंने संशय के साथ ग्रहण करना चाहा, तो भी उनका मन भीतर ही भीतर उत्फुल्ल हो उठा। बोले—कहिए।

षोड़शी ने कहा—देवता को दो आदमी ठगना चाहते हैं। एक राय महाशय और दूसरे ज़मींदार—

निर्म्मल ने कहा—और तीसरे आपके पिता जी। यही लोग तो आपको भी धोखा देना चाहते हैं।

"पिताजी? हाँ, वे भी हैं" कहकर षोड़शी चुप हो रही।

"अपने ससुर की बात समझता हूँ, आपके पिताजी की बात भी समझ में आती है, परन्तु बिलकुल समझ में नहीं आते हैं यही ज़मींदार प्रभु। वे किसलिए आपसे इतनी शत्रुता रखते हैं।"

षोड़शी बोली—देवी की बहुत सी ज़मीन को वे अपनी बताकर बेंच डालना चाहते हैं, परन्तु मेरे रहते वह तो हो नहीं सकता।

निर्म्मल ने हँसकर कहा—"उसे मैं सँभाल सकूँगा।" अब उन्होंने कनखियों से भैरवी के मुँह की ओर देखा कि वह चुपचाप है परन्तु उसके चेहरे में कुछ भी परिवर्तन नहीं हुआ है। कुछ देर बाद आँख उठाकर वह धीरे-धीरे बोली—परन्तु और भी बहुत सी चीज़ें हैं जिन्हें आप भी शायद न सँभाल सकें।

"वे क्या हैं? एक तो आपकी झूठी बदनामी—"

षोड़शी ने किसी प्रकार की उत्तेजना प्रकट नहीं की; नर्मी के स्वर से कहा—उसका मैं ख़याल नहीं करती। बदनामी झूठी हो या सच्ची, उसी को लेकर तो भैरवी का जीवन है निर्म्मल बाबू! उन लोगों से मैं यही कह देना चाहती हूँ।

निर्म्मल ने अचरज से कहा—यही बात अपने मुँह से आप कहना चाहती हैं? वह तो मान लेने के समान हो जायगा?

षोड़शी चुप हो रही।

निर्म्मल ने संकोच से कहा—वे लोग कहते हैं—

"कौन-कौन कहते हैं ?"

"बहुत लोग ही कहते हैं कि, उस समय आप—"

"किस समय ?"

निर्म्मल ने दम भर चुप रहकर जी-जान से सङ्कोच को दबाकर कहा—जिस दिन मैजिस्ट्रेट साहब आये थे उस दिन आपकी ही गोद में—"

षोड़शी ज़रा अचरज में आकर बोली—उन लोगों ने क्या उसे देखा था? होगा, मुझे ठीक याद नहीं। अगर देखा होगा तो वह ठीक ही था। ज़मींदार का सिर मेरी गोद में था।

निर्म्मल स्तब्ध हो रहे। बहुत देर के बाद धीरे-धीरे बोले—उसके बाद ?

षोड़शी अपने शान्त मुख को हँसी के आभास से ज़रा उज्ज्वल करती हुई बोली—इसके बाद दिन बीत रहे हैं। परन्तु किसी तरह मन नहीं लगता। सभी मिथ्या मालूम हो रहा है।

"क्या मिथ्या है ?"

"सभी। धर्म, कर्म, व्रत, उपवास, देवसेवा—इतने दिनों का जो कुछ है सभी—"

"तो भी भैरवी का पद चाहिए ही ?"

"चाहिए क्यों नहीं ? परन्तु अगर आप कहें कि नहीं चाहिए—"

"नहीं नहीं, मैं कुछ नहीं कहता"—यह कहकर निर्म्मल झट खड़े होकर बोले—देर हो रही है, अब मैं चलता हूँ।

षोड़शी भी साथ-साथ खड़ी हो गई। बोली—मुझे भी मन्दिर में काम है। फिर कब भेंट होगी ?

निर्म्मल ने अनिश्चित अस्फुट कण्ठ से क्या कहा, अच्छी तरह सुनाई नहीं दिया। षोड़शी एकाएक बोल उठी—हाँ आज शाम को मन्दिर में मेरे ही बारे में एक झगड़ा है, आइएगा ?

निर्म्मल गरदन हिलाकर सम्मति जताते हुए चले गये। षोड़शी ज़रा मुस्कुराई, इसके बाद कुटी के द्वार पर साँकल लगाकर मन्दिर की तरफ़ चल पड़ी।

२१

ससुर-दामाद भोजन कर रहे थे। दही और मिठाई लाने के लिए वहाँ से सास के जाते ही राय महाशय ने पूछा—षोड़शी से भेंट हुई निर्म्मल ?

निर्म्मल ने नीची नज़र किये ही कहा—जी हाँ।

"क्या कहती है वह ?"

इस तरह के साधारण प्रश्न का उत्तर देना कठिन है। उन्होंने थोड़ी देर चुप रहकर पूछा—किस बारे में ?

"मन्दिर के बारे में। वह भैरवी का पद छोड़ेगी या चण्डीगढ़ का नाम तक डुबो देगी ? यहाँ के लोग तो बाहर-वालों के सामने मुँह तक नहीं दिखा सकते, ऐसी हालत हो गई है।"

निर्म्मल चुप हो रहे। चण्डीगढ़ की भैरवियों के सम्बन्ध में यह बदनामी सदा से चली आ रही है। और उसके लिए इस गाँव के किसी आदमी ने कभी लज्जा के मारे प्राण तक दे डाले, ऐसा प्रवाद भी नहीं है। लोगों को यह भी मालूम नहीं कि स्वयं चण्डी देवी ने कभी आपत्ति की है। भैरवियों की रीति-रस्म, आचार-अनाचार सभी बातें वे सुन गये थे इसलिए उनका मन इस सम्बन्ध में निरपेक्ष ही था। खासकर, षोड़शी की बदनामी पर उन्होंने विश्वास ही नहीं किया था। अतः यह अगर मिथ्या प्रमाणित होती तो वे ख़ुश होते; परन्तु इस बदनामी का मिथ्या प्रमाणित होना ही भैरवी पद के लिए एक मात्र दावा है ऐसा वे नहीं समझते थे। उनके ससुर का इशारा नया भी नहीं, भीषण भी नहीं, परन्तु आज इन्हीं बातों से एकाएक उनका मन जब चौंककर सचेत हो उठा, तब अपने मन के इस विक्षिप्त भाव का अनुभव कर सचमुच उन्हें अचम्भा हुआ। उन्हें मौन देखकर राय महाशय ने फिर कहा—क्या कहते हो?

सही और समयोपयोगी उत्तर देने का समय और मौक़ा निर्म्मल को नहीं था। इससे उन्होंने पहली बात की ही पुनरुक्ति कर कहा—भैरवियों की बदनामी तो आज नई बात नहीं है।

राय महाशय ने इनकार नहीं किया, कहा—यह ठीक है; परन्तु बदनामी है तो बुरी चीज़ न? सदा की नज़ीर दिखाकर बुरी चीज़ को बराबर चलाते जाना तो नहीं न चाहिए। क्यों?

"परन्तु वह बद है, यह बात क्या निश्चित रूप से प्रमाणित हो गई है ?"

राय महाशय ने निःसंशय भाव से "हाँ" कहा।

निर्म्मल ने ज़रा चुप रहकर पूछा—कैसे प्रमाणित हुई ? निश्चित प्रमाण किसने दिया ?

राय महाशय ने कहा—जिसने दिया है वह आज भी देगा। शाम को मन्दिर में जाना, उसके बाद शायद ससुर-दामाद को दो तरफ़ खड़े होकर गाँव भर की हँसी-दिल्लगी न बटोरनी पड़े। तुम तो क़ानून-पेशा हो. अब निश्चित प्रमाण किसे कहते हैं, यह मुझे तुमको बतलाना न होगा।

गृहिणी पत्थर की थाली में मिठाई और कटोरी में दही ले आईं, बोलीं—क्यों बेटा, खाते क्यों नहीं ?

"खाता तो हूँ" कहकर निर्म्मल ने खाने में मन लगाया। राय महाशय ने कहा—दही निर्म्मल को देकर मेरे लिए थोड़ा सा दूध ला दो। आज तबियत अच्छी नहीं है। दही न खाऊँगा।

गृहिणी के चले जाने पर राय महाशय ने कहा—उस दिन अँधेरी रात में, ऐन आँधी-पानी के समय, उसने हाथ पकड़कर तुम्हें घर पहुँचा दिया था, उसके लिए सिर्फ़ तुम्हीं क्यों हम लोग भी कृतज्ञ हैं। जो उपकार करता है, उसका अपकार करने को दिल नहीं चाहता; परन्तु यह तो हमारी बात नहीं है निर्म्मल; यह गाँव की बात है, समाज की बात है,

देवी-देवता की बात है—इस कारण जो सबसे बड़ा कर्तव्य है वह मुझे करना ही पड़ेगा।

उस रात की घटना छिपी नहीं है यह वे सुन आये थे, परन्तु उसे उन्होंने उस समय छिपा लिया था, यह याद आते ही वे लज्जा से चुप हो गये। राय महाशय कहने लगे—देवता लोग मुँह से कुछ कहते नहीं, परन्तु बदला लेते हैं। गाँव की भलाई कभी नहीं हुई है, बल्कि बराबर अवनति ही होती जा रही है। मालूम होता है, यह भी उसका एक कारण है। प्रमाण की बात पूछते थे, सो तुम यहाँ आ रहे हो यही हमें कैसे मालूम हुआ? तुम लड़के के समान हो, तुम्हारे सामने सब बातें साफ़-साफ़ कहते मैं झिझकता हूँ, परन्तु बिना कहे भी नहीं चलता। ज़मींदार बाबू को शायद उस रात को खाना खाकर जाने की .फुरसत नहीं मिली थी। खाना लाने के लिए षोड़शी के बाहर जाते ही एक चिट्ठी के फटे टुकड़े पर उनकी नज़र पड़ी। शायद तुम्हें लिखकर उसे फाड़ डाला और फिर हैम को लिखा था। आज उसे भी देख लेना, वे सवेरे आते समय साथ लेते आये थे।

निर्म्मल क्रोध के मारे जल-भुनकर बोल उठे—झूठ है, सरासर झूठ है। जो बेहया .खुद अपराधी है, उस पियक्कड़ पाजी बदमाश की बात पर आप विश्वास करते हैं? यह हो ही नहीं सकता।

राय महाशय सिर्फ़ ज़रा हँसे। फिर दृढ़ स्वर से बोले—हो सकता है और हुआ है। ज़मींदार .खुद बेहया, पियक्कड़,

पाजी और बदमाश है, यह मुझे मालूम है। शायद उससे भी ज़्यादा है, नहीं तो अपने ही कलङ्क की बात मुँह से न निकाल सकता। उसके पाजीपन की हद नहीं है। गाँव की भलाई के लिए भी उसने इस काम में हाथ नहीं डाला है। देव-देवियों पर उसका विश्वास भी नहीं है। उसने ज़बर्दस्ती मन्दिर में खसी (बकरा) कटवाकर खाया था। ज़रूरत होने पर वह पाखण्डी मुर्ग़ी और सुअर ही नहीं बल्कि गो-वध तक करके खा सकता है।

"तो भी उसे आप मदद देना चाहते हैं?"

"नहीं। मैं तो काँटे से काँटा निकालना चाहता हूँ।"

निर्म्मल ने थोड़ी देर चुप रहकर कहा—मालूम नहीं, आपका काँटा निकलेगा या नहीं; पर वह निष्कण्टक हो जायगा। देवी की जिस सम्पत्ति को वह बेच डालना चाहता है उसे षोड़शी के भैरवी रहते नहीं बेच सकता।

राय महाशय ने कहा—उसके चले जाने से भी बिक्री न होगी—क्योंकि, मैं हूँ।

वे मौजूद हैं—इतनी बड़ी बात को निर्मल भूल गये थे। उसी समय उन्हें मालूम हुआ कि ज़मींदार को लाभ न भी हो, परन्तु देवी को कुछ लाभ नहीं होगा। तो लाभ किसको होगा, वह उन्होंने मुँह से बाहर नहीं निकाला।

राय महाशय ने नर्मी के साथ कहा—"बेटा निर्म्मल, तुम बड़े क़ानूनदाँ हो, बहुत समझते-बूझते हो; परन्तु दुनिया में

जब मुझे ख़ाली हाथ से लड़ाई शुरू करनी पड़ी थी, तब मैंने सिर्फ़ धन-सम्पत्ति बटोरकर ही समय नहीं बिताया, दिमाग़ के भीतर भी कुछ सञ्चय करने का मुझे मौक़ा मिला है। लोगों ने तुमसे कहा है कि उस थोड़ी सी ज़मीन पर ही ज़मींदार का लोभ है—षोड़शी बड़ी मज़बूत है, उसके रहते ज़मींदार की दाल नहीं गलेगी, इसलिए अपना ही कलङ्क फैलाकर वह उसे हटाना चाहता है। अच्छा बेटा, बीजगाँव के ज़मींदार के लिए वह सम्पत्ति है ही कितनी सी? उसको रुपये की है ज़रूरत, यह न सही वह और कुछ बेच डालेगा, अटकेगा नहीं। परन्तु जहाँ उसकी वास्तव में अटक है, वह बिलकुल दूसरी चीज़ है। इस जङ्गल में वह महीनों इस तरह पड़ा नहीं रह सकता। शहर का आदमी शहर में जाना चाहता है। बेटा निर्म्मल, हैम की तरह तुम भी मेरे लड़के हो, तुमसे कहने में शर्म मालूम होती है, परन्तु अगर उस छोकड़ी की भलाई ही तुम करना चाहो तो कह देना कि वह डरती किसलिए है। चण्डीगढ़ की भैरवी की आमदनी बहुत नहीं है—जितना उसका हर्ज होगा, उसका चौगुना उसको ज़मींदार से मिल जायगा—यह बात मैं सौगन्द खाकर कह सकता हूँ। वह उसे तकलीफ़ देना भी नहीं चाहता, देगा भी नहीं, बशर्ते कि वह दो नावों में पैर रखने की असम्भव आशा छोड़ दे।

निर्म्मल निरुत्तर होकर स्तब्ध बैठे रहे। ससुर को वे पहचानते थे, परन्तु इतना नहीं जानते थे। इन्हीं ससुर ने

षोड़शी के लिए कल्याण का जो मार्ग बतला दिया, उसके बारे में तर्क तक करने की उनको प्रवृत्ति नहीं हुई।

सास को दूध गर्म कर लाने में देर हुई। वे घर में आकर पति के सामने दूध की कटोरी रख करके दामाद को थोड़ा भोजन करने के लिए मृदु तिरस्कार करने लगीं, और इस कसर को पूरा करने का भार स्वयं लेकर बग़ल में बैठ गईं।

राय महाशय ने दूध की कटोरी को मुँह से उतारकर कहा—परन्तु उसकी इतनी प्रशंसा अवश्य करनी पड़ती है कि पढ़ने-लिखने में मानो सरस्वती है। ऐसा शास्त्र नहीं जिसे न जानती हो।

गृहिणी उसी दम सम्मति देकर बोलीं—बहुत ठीक! देखा नहीं है, किसी काम-काज में वह खड़ी रहे तो तुम्हारे शिरोमणि तो डर से केंचुआ बन जाते हैं। उसके हट जाने पर बेहद बातें सूझती हैं—परन्तु सामने निन्दा करने की हिम्मत नहीं होती।

राय महाशय ने कहा—नहीं-नहीं, निन्दा क्यों करेंगे, वे तो प्रशंसा ही करते हैं।

गृहिणी ने नाक की बडी सी नथुनी को हिलाकर प्रतिवाद किया, कहा—हाँ, ऐसे ही आदमी वे हैं न! ईर्ष्या से जले मरते हैं। वे भला प्रशंसा करेंगे? याद नहीं है, उस अन्तू की बहिन के प्रायश्चित्त की व्यवस्था के बारे में कुछ दिन तक कैसी चर्चा फैलाई थी? इसके सिवा उस लड़की ने इधर

जो कुछ भी किया हो; किन्तु शोक-दुःख, आपत्ति-विपत्ति में ग़रीबों के लिए ऐसा माँ-बाप गाँव भर में दूसरा नहीं है। जब जिस काम के लिए बुलाओ, हँसती हुई हाज़िर है; नाहीं करना तो जानती ही नहीं।

राय महाशय प्रसन्न नहीं हुए, बोले—सब भैरवियाँ ऐसा ही करती हैं।

गृहिणी ने कहा—सब? मातङ्गी भैरवी को क्या मैंने आँख से नहीं देखा है?

"देखा होगा, लेकिन भूल गई हो।"

गृहिणी ने क्रोध में आकर जवाब दिया—कुछ भी भूली नहीं हूँ। आज भी मेरा उन पर सौ रुपया पावना है—साफ़ इनकार कर गईं। षोड़शी किसी को कभी धोखा नहीं देती और न झूठ ही बोलती है।

राय महाशय बहुत नाराज़ होकर बोले—"नहीं—वह तो युधिष्ठिर है।" अब वे आसन से खड़े हो गये। गृहिणी ने दामाद से कहा—मैं तो जानती हूँ कि इसी की कृपा से हम लोगों ने नाती का मुँह देखा है। नहीं बेटा, लोग कुछ भी कहें, छली-कपटी या धोखेबाज़ वह नहीं है। इसी से जब सुना कि उसने देवी की पूजा करना छोड़ दिया, तभी मन में सन्देह हुआ कि यह क्या? नहीं तो किसी की बात पर मैं एकाएक विश्वास नहीं करती हूँ।

राय महाशय ने चौखट के बाहर पैर बढ़ाया था, कान खड़े करके ठहरकर कहा—"अच्छा, उसकी कृपा से नाती मिला है तो उसी नाती के भले के लिए मनौती की पूजा अपने हाथ से करना उसने क्यों स्वीकार नहीं किया, ज़रा बुलाकर पूछ क्यों नहीं लेतीं ?" अब वे उत्तर सुनने की प्रतीक्षा न करके वहाँ से चले गये।

निर्म्मल भोजन कर चुके थे। वे भी खड़े होकर बोले—देखता हूँ, षोड़शी के ऊपर से अम्मा की श्रद्धा अभी तक नहीं गई है।

"नहीं बेटा, झूठ क्यों कहूँ, उसके चेहरे की याद आते ही मुझे न मालूम क्यों रुलाई आती है। न मालूम ये लोग मिलकर क्यों उसके पीछे पड़े हैं।"

निर्म्मल ज़रा हँसकर राय महाशय का अनुसरण करते हुए बोले—परन्तु अम्मा, उसके तन्त्र-मन्त्र की शक्ति की बात भी ज़रा सोचिए।

सास कुछ और कहना चाहती थीं, इतने में नौकरनी ने आकर ख़बर दी—एक आदमी जमाई बाबू को बुलाने आया है। बाबू ने ख़बर देने को कहा है।

हाथ-मुँह धोकर निर्म्मल ने बाहर आते ही देखा कि गाँव के बहुत से आदमी आकर बैठे हुए हैं। शाम को मन्दिर में जो सभा होगी उसी के विषय में चर्चा चल रही है। शिरो-मणिजी को आज अमावास्या का उपवास है। उन्होंने

निर्म्मल को बुलाकर आशीर्वाद दिया, और उन्हें एकाएक पहचान न सकने के लिए अपने बुढ़ापे को दोष दिया। जो आदमी खम्भे के पास खड़ा था, उसने प्रणाम कर कहा—भैरवी माँजी आपकी प्रतीक्षा कर रही हैं, कोई ज़रूरी बात कहनी है।

निर्म्मल को बड़ी लज्जा मालूम होने लगी। पीछे न देखने पर भी उन्हें मालूम हुआ कि उनका उत्तर सुनने के लिए सब लोग उत्सुक हो रहे हैं। इसके भीतर जो छिपी हुई दिल्लगी है, उससे उन्होंने अपने को अपमानित समझा; दूसरा समय होता तो शायद वे उसे टाल भी जाते, परन्तु आज उनमें उतनी शक्ति नहीं थी। किसी हालत में भी न कह सके—'चलो मैं आता हूँ'। बल्कि एक तरह से लज्जित होकर ही उस आदमी से उन्होंने कह दिया—जाकर कह दे, मुझे अभी फ़ुरसत नहीं है।

शिरोमणि बिना ही ज़रूरत के बोल उठे—तुम लोग इन्हें ज़रा विश्राम भी करने दोगे। अब आँख से इशारा करके वे अकारण ठठाकर हँसने लगे। किसी-किसी ने तो उनके हँसने में साथ दिया और कोई-कोई ज़रा मुस्कुराकर ही रह गया। सब टालकर निर्म्मल भीतर जा रहे थे कि शिरोमणि ने ज़ोर से कहा—अजी जमाई बाबू को क्या उस लौंडिया ने बैरिस्टर किया है?

निर्म्मल ने उद्दीप्त क्रोध को दबाकर शान्त भाव से कहा—मुक़दमा छिड़ जाय तो शायद वह काम करना ही होगा।

शिरोमणि को इस तरह के उत्तर की आशा न थी। अक-बकाकर बोले—सो तो करोगे, पर मैं अभी से कहे रखता हूँ बचुआ कि यह मच्छर का कलेजा नहीं है—शेर-भालू की लड़ाई है—यह .मुक़दमा हाईकोर्ट तक गये बिना न रुकेगा—यह याद रखना।

निर्म्मल ने कहा—मुक़दमा कहाँ तक जाता है, वह तो मेरे ही जानने की बात है पण्डितजी।

शिरोमणि ने कहा—"यह ठीक है, यह तो तुम्हारा पेशा है, तुम नहीं जानोगे? परन्तु और भी बहुत सा ख़र्चा है, वह कौन देगा?" अब वे ज़रा हँसे। परन्तु इस हँसी में किसी ने साथ नहीं दिया।

निर्म्मल ने कहा—ज़रूरत होगी तो मैं दे दूँगा।

जवाब सुनकर शिरोमणि ही नहीं सभी लोग दङ्ग रह गये। राय महाशय से भी धीरज धरते नहीं बना; रूखे स्वर से बोले—तुम्हारे साथ पण्डितजी का हँसी-दिल्लगी का रिश्ता नहीं है निर्म्मल, फिर शिरोमणिजी तो बड़े बूढ़े और माननीय हैं—दिल्लगी करना तुम्हें नहीं सोहता।

निर्म्मल चुप हो गये। शिरोमणि अपने को सँभालकर हँसने की कोशिश करते हुए बोले—रुपया तो दोगे, परन्तु देने का मतलब क्या है, सुन सकता हूँ?

निर्म्मल ने कहा—मेरा मतलब सिर्फ़ आप लोगों के अन्याय और अत्याचार का प्रतिकार करना है। मैं जहाँ

रहता हूँ वहाँ अगर जाँच-पड़ताल कीजिएगा तो पता लगेगा कि जीवन में ऐसा झमेला कई बार मैंने अपने सिर लिया है।

जो आदमी बुलाने आया था वह अभी गया नहीं था; उसने कहा—तो आपको कब .फुरसत होगी? उन्हें ख़बर देनी है।

"फ़ुरसत होने पर मैं मिलूँगा" कहकर वे भीतर चले गये।

शाम को जनार्दन राय कपड़े पहनकर आँगन में आये। उन्होंने निर्म्मल को पुकारा, कहा—मन्दिर में सब लोग आ गये हैं। तुम्हें उन लोगों ने बुला भेजा है, अगर जाना चाहो तो देर न करो।

निर्म्मल ने बाहर आकर पूछा—मेरा जाना क्या आप आवश्यक समझते हैं?

"जिन लोगों ने बुला भेजा है, वे ज़रूर समझते होंगे।" कहकर जनार्दन राय चलने लगे।

सन्ध्या के बाद ही देवी की आरती होने लगी। माता की तरह-तरह की गौरव की चीज़ें अब कम हो गई हैं; परन्तु उनके शङ्ख, घण्टा, सिंगा, डमरू, नगाड़ा आदि वाद्य-यन्त्र और बजानेवालों की संख्या आज भी उतनी ही है। वही तुमुल वाद्य-ध्वनि निर्म्मल को सुनाई दी। आरती के बाद पञ्चायत होनेवाली थी; इसलिए उस पवित्र ध्वनि के समाप्त होते ही वे घर से रवाना हुए। उन्होंने मन्दिर में घुसकर देखा कि रोशनी का कुछ इन्तज़ाम नहीं है। आँगन के बीच नाट्य मन्दिर में दो लालटेनें रखकर हल्ला मचा हुआ है और उसी

को, चारों ओर खड़े होकर, बहुत से आदमी सुन रहे हैं। उस अँधेरे में निर्म्मल को किसी ने पहचाना नहीं। उन्होंने दो आदमियों के कन्धे पर से झाँककर देखा कि वहाँ बाबू श्रेणी का एक भलामानस हाथ-मुँह हिला-हिलाकर कुछ कह रहा है। कुछ भी सुनाई नहीं दिया, परन्तु लोगों के सुनने का आग्रह देखकर मालूम हुआ कि वे अत्यन्त श्रुतिमधुर किसी की निन्दा और बुराई कर रहे हैं। उन्होंने अनुमान किया कि यही व्यक्ति ज़मींदार जीवानन्द चौधरी है, अतः संशय नहीं रहा कि वक्तव्य विषय भी षोड़शी का जीवनचरित है। भीड़ को ढकेलकर सामने जाने की उनको इच्छा न थी, फिर भी दो-एक बातें सुन लेने का लोभ न छोड़ सकने के कारण पैरों के अँगूठों के बल ऊँचे होकर वे खड़े हो गये। थोड़ी देर में मन लग गया—अभी तक जीवानन्द चौधरी मूल विषय पर नहीं आया था—षोड़शी की माता की कहानी चल रही थी, परन्तु सभी सुनी-सुनाई बातें थीं—साक्षी तारादास पास ही बैठे हुए थे। वक्ता कह रहा था—इन भ्रष्ट स्त्रियों के सम्बन्ध से पीठस्थान धीरे-धीरे अपवित्र हो रहा है—और देश की अवनति हो रही है—

पीछे पीठ पर ज़रा दाब पड़ते ही निर्मल ने घूमकर देखा कि अँधेरे में सिर से पैर तक कपड़े से ढके हुए किसी व्यक्ति ने उन्हें बाहर की तरफ़ आने का इशारा किया। उसका अनुसरण कर दो-चार क़दम चलते ही निर्म्मल को मालूम हो गया कि

यह गठीला, लम्बा और ऋजु शरीर षोड़शी के सिवा और किसी का नहीं है। फाटक के बाहर आकर वह खड़ी हो गई। उसने ज़रा हँसकर शिकायत के स्वर में कहा—छिः खड़े-खड़े क्या सुन रहे थे? बहुत से कायर मिलकर दो असहाय स्त्रियों की निन्दा कर रहे हैं। उनमें से एक तो मर गई है और दूसरी ग़ैरहाज़िर है। चलिए मेरे घर, वहाँ फ़क़ीर साहब बैठे हुए हैं। चलिए, आपका परिचय करा दूँ।

"वे कब आये?"

"मालूम नहीं। शाम को घर लौटकर देखा कि मेरे घर के सामने खड़े हैं। ख़ुशी के मारे रहा नहीं गया, प्रणाम करके भीतर ले जाकर बिठाया। सारा वृत्तान्त उन्होंने ध्यान से सुना।"

"सुनकर क्या कहा?"

"ज़रा सा हँस दिया। मालूम पड़ा मानो सब कुछ जानते थे। अच्छा निर्म्मल बाबू, क्या आपने कहा है कि मेरे मुक़दमे का भार आप लेंगे? क्या यह सच है?"

निर्म्मल सिर हिलाकर बोले—हाँ, सच है।

"परन्तु किसलिए?"

निर्म्मल दम भर चुप रहकर बोले—शायद इसलिए कि आपके ऊपर अन्याय अत्याचार हो रहा है।

"परन्तु और कुछ तो न समझिएगा?" कहकर षोड़शी ज़रा हँसकर फिर बोली—ख़ैर, रहने दीजिए—शास्त्र का ऐसा कोई अनुशासन नहीं है कि सभी बातों का जवाब देना

ही चाहिए। ख़ासकर इस कूट शास्त्र का—क्यों? आइए, घर में आइए।

कुटी के भीतर जाकर देखा, फ़क़ीर साहब नहीं हैं। उसने कहा—"कहीं चले गये होंगे, शायद अभी लौट आवें।" दिया टिमटिमा रहा था। उसे ज़रा उसकाकर बिछाया हुआ आसन दिखा करके कहा—बैठिए। लड़ाई-झगड़े, शोर-गुल के मारे इतनी फ़ुरसत नहीं मिलती कि थोड़ी देर बैठकर बात-चीत करूँ। अच्छा, मुक़दमे का बोझ तो आप सँभाल लेंगे परन्तु अगर हार जाऊँ तो मेरा भार कौन सँभालेगा? उस समय पीछे तो नहीं हटिएगा?

निर्म्मल से कुछ उत्तर देते नहीं बना। उनके कान तक का अंश लाल हो उठा। थोड़ी देर में उन्होंने कहा—हारने की कोई सम्भावना नहीं है।

"वह ठीक है।" कहकर षोड़शी ज़रा अनमनी हो पड़ी। परन्तु पल ही भर के लिए। एकाएक चौंककर उसने पूछा—लड़का कैसा है निर्म्मल बाबू? भला बताओ तो, उसे छोड़कर कैसे आये? मैं तो ऐसा न कर सकती।

अकस्मात् इस तरह के अनोखे प्रश्न से निर्म्मल को आश्चर्य हुआ। षोड़शी इधर-उधर दो-तीन बार सिर हिला-कर हँसती हुई बोली—अगर मैं हैम होती तो ऐसा परोप-कार करना छुड़वा देती। मैं इतनी भोली नहीं हूँ—मेरे सामने धोखा नहीं चलता—दिन-रात आँखों के सामने रखती।

इशारा इतना साफ़ था कि निर्म्मल की छाती के अन्दर एक ही साथ आश्चर्य, भय और आनन्द की तरङ्गें उठने लगीं। उनके मुँह से एकाएक निकल गया—आँखों के सामने रखने से ही क्या रक्खा जा सकता है षोड़शी? इसका बन्धन जहाँ से शुरू होता है वहाँ तक आँखों की दृष्टि नहीं पहुँचती। क्या यह बात तुम्हें आज तक मालूम नहीं हुई?

"मालूम है।" कहकर षोड़शी हँसने लगी। बाहर किसी की आहट पाकर द्वार से झाँकते हुए कहा—अच्छा आप भी आ गये!

"कौन, फ़क़ीर साहब?"

"नहीं, ज़मींदार बाबू। मैंने कहला भेजा था कि पञ्चायत उठने पर लौटते समय मेरी कुटी में होते जायँ। शायद इसी से पधारे हैं। साथ में बहुत से आदमी भी हैं। एक स्त्री के घर में अकेले आने का भलेमानस को साहस नहीं हुआ। शायद बदनामी हो।" अब वह हँसने लगी।

निर्म्मल को यह मामला बिलकुल अच्छा नहीं लगा। उन्होंने चिढ़ और सङ्कोच के मारे सिकुड़कर कहा—यह बात आपने मुझसे पहले क्यों नहीं कही?

"वाह! एक बार तुम, एक बार आप?" कहकर वह हँसती हुई बोली—"डरिए नहीं, आप बड़े सज्जन हैं। लड़ते नहीं हैं। इसके सिवा आप लोगों का परिचय नहीं है—यह भी तो एक लाभ है।" कहकर वह दरवाज़े के

बाहर आकर स्वागत करके बोली—आइए, मेरी कुटी दुबारा पवित्र हुई।

जीवानन्द ने चौखट में पैर रखकर झिझक के साथ देखते हुए कहा—आप? शायद निर्म्मल बाबू हैं?

षोड़शी ने हँसकर जवाब दिया—हाँ, आपके मित्र बताकर परिचय कराने में सम्भवतः अतिशयोक्ति न होगी।

२२

अनुमान ग़लत नहीं है, यह आदमी सचमुच निर्म्मल बसु है, यह जानकर जीवानन्द पहले चौंक उठा, परन्तु हर हालत में अपने को सँभालने की शक्ति उसमें अपूर्व थी। उसने तनिक हँसकर कहा—बहुत ख़ूब! मित्र नहीं तो क्या हैं? आप ही लोगों की कृपा से तो अब तक जीता हूँ। नहीं तो मामा की ज़मींदारी पाने से आज तक जैसे-जैसे काम किये गये हैं, उससे चण्डीगढ़ के शान्तिकुञ्ज के बदले अन्दमान के क़ैदख़ाने में जाकर रहना पड़ता।

निर्म्मल को पहले से ही अच्छा नहीं लग रहा था, परन्तु अपने दुष्कर्मों के बारे में इस प्रकार के लज्जाहीन परिहास से उनका शरीर जलने लगा। मुँह लाल करके कुछ कहने को थे, परन्तु कहना नहीं पड़ा। षोड़शी ने जवाब दिया, कहा—चौधरी साहब! वकील-बैरिस्टर बड़े आदमी हैं, इसलिए क्या शाबाशी यही लोग पावेंगे? अन्दमान आदि बड़े मामलों में

न सही, परन्तु छोटे होने से इस देश के क़ैदख़ाने भी तो कुछ आराम की जगह नहीं हैं—क्या भैरवियाँ, दुःखी होने के कारण, थोड़ा सा धन्यवाद नहीं पा सकतीं ?

जीवानन्द ने अकचकाकर जो मुँह में आया वही कह दिया—धन्यवाद पाने का समय आने पर ही पाओगी।

षोड़शी ने हँसकर कहा—जैसा कि अभी मन्दिर में खड़े होकर एक दफ़ा दे आये।

जीवानन्द ने इसका कुछ उत्तर नहीं दिया। निर्म्मल की ओर देखकर कहा—आपके ससुर से सुना था कि आप आ रहे हैं। मुझे आशा थी कि मन्दिर में भेंट होगी।

षोड़शी बोली—वह मेरा दोष है चौधरी साहब। आप आये भी थे, और आप लोगों के सदालाप में शामिल नहीं हुए सही; परन्तु भीड़ के बाहर खड़े-खड़े सिर ऊँचा करके सुनने की चेष्टा कर रहे थे, किन्तु मैं देखते ही हाथ पकड़कर यहाँ खींच लाई। मैंने कहा—चलिए निर्म्मल बाबू, घर में बैठकर ज़रा गपशप ही की जाय।

जीवानन्द ने मन की जलन दबाकर सहज कण्ठ से ही कहा—तब तो मैंने आकर उसमें रोक-टोक कर दी है।

षोड़शी ने कहा—इसमें आपका दोष नहीं है। आपको तो मैंने ही बुला भेजा था।

जीवानन्द ने पूछा—परन्तु किसलिए ? शायद गपशप करने के लिए नहीं ?

षोड़शी हँस पड़ी। बोली—"नहीं जी, नहीं—बल्कि उसका उलटा। आज आपको मैं बहुत धमकाऊँगी।" उसका कण्ठस्वर और कहने का ढङ्ग देखकर निर्म्मल और जीवानन्द चौधरी दोनों ही अकचकाकर उसे देखने लगे। षोड़शी एकाएक ज़रा गम्भीर होकर बोली—"छिः-छिः, वहाँ आज क्या कर रहे थे, बताइए तो? एक सभा का आडम्बर रचकर, बीच में खड़े हो करके, दो असहाय स्त्रियों की न मालूम कैसी-कैसी निन्दा कर रहे थे! इनमें भी एक तो इस लोक में है ही नहीं। यह क्या किसी मर्द के लिए शोभा देता है? उसके सिवा प्रयोजन ही क्या था? उस दिन तो इसी घर में बैठकर मैंने आपसे कहा था कि आप मुझे जैसी आज्ञा करेंगे, मैं मान लूँगी। आपने भी स्पष्ट रूप से अपना हुक्म सुना दिया था। मैंने अपनी प्रतिश्रुति का प्रत्याहार नहीं किया। यह लीजिए मन्दिर की चाबियाँ, और यह लीजिए हिसाब की बही।" अब उसने आँचल से चाबियों का गुच्छा खोलकर और ताक पर से एक मोटी सी लाल वही उतारकर जीवानन्द के पैरों के पास रख करके कहा—देवी के जितने अलङ्कार हैं, जो कुछ ज़रूरी दस्तावेज़ हैं, सब सन्दूक के अन्दर ही हैं। सन्दूक में एक काग़ज़ और मिलेगा जिसमें भैरवी की तमाम ज़िम्मेवरी और कर्तव्य छोड़ने का मैंने दस्तख़त कर दिया है।

जीवानन्द ने शायद ठीक विश्वास नहीं किया, इसी से कहा—कहती क्या हो? और अधिकार सौंपा भी किसे?

षोड़शी बोली—उसी में लिखा है, देख लीजिएगा।

"अगर ऐसा ही है तो ये चाबियाँ भी उसी को क्यों नहीं दे दीं।"

"उन्हीं को तो दी हैं" कहकर षोड़शी होंठ दबाकर ज़रा हँसी। परन्तु उस हँसी को देखकर अब जीवानन्द का चेहरा उतर गया। उसने थोड़ी देर चुप रहकर संशय के साथ कहा—परन्तु इसे तो मैं ले नहीं सकता। मैं कैसे विश्वास कर लूँ कि बही में लिखे हुए नामों के साथ सन्दूक की चीज़ें मिल जायँगी। तुम्हें ज़रूरत हो तो दस आदमियों के सामने सहेज देना।

षोड़शी ने सिर हिलाकर कहा—"मुझे कोई ज़रूरत नहीं। परन्तु चौधरी साहब, आपका यह बहाना भी अचल है। एक रोज़ आँख मूँदकर आपको जिसके हाथ से विष लेकर खाने का साहस हुआ था, उसी के हाथ से आज इसे भी आँख मूँदकर लेने का साहस आपको होना चाहिए। मैं तो किसी हालत में नहीं मान सकती कि आपमें दूसरे पर विश्वास करने की शक्ति इतनी कम है। लीजिए, सँभालिए"—कहकर उसने बही और चाबियों का गुच्छा नीचे से उठाकर एक तरह से ज़बर्दस्ती जीवानन्द के हाथ में ठूँस दिया और कहा—"अब मेरी जान बचा। आपने कभी तो मेरा कोई भार लिया नहीं है, इतना भी न लीजिएगा तो धर्म से पतित हो जाइएगा। इसके सिवा परलोक में जवाब क्या दीजिएगा?" वह हँसती

हुई फिर बोली—"मैं जानती हूँ कि परलोक की चिन्ता से तो आपको नींद नहीं आती, परन्तु जो बीती ताहि विसार देकर अब आगे की सुधि लेनी होगी, यह मैं कहे देती हूँ।" उसके मुख में मुसकुराहट रहने पर भी अन्तिम बातों में उसका स्वर मानो कोमलता से गल गया। उसने फिर कहा— "एक भार आपको और भी सौंपे जाती हूँ। वह है मेरी ग़रीब प्रजा का भार। मैं हज़ार कोशिश करके भी उनकी भलाई नहीं कर सकी, परन्तु आप सहज ही कर सकेंगे।" निर्म्मल की ओर देखकर कहा—मेरी बातचीत सुनकर आप शायद आश्चर्य में आ गये हैं, क्यों निर्म्मल बाबू ?

निर्म्मल ने सिर हिलाकर कहा—मुझे आश्चर्य ही नहीं हुआ, बल्कि मैं तो प्रायः अभिभूत हो गया हूँ। भैरवी का आसन छोड़कर इतनी जल्दी आपने त्याग-पत्र पर दस्तख़त तक कर रक्खा है, यह ख़बर तो मुझे इशारे से भी नहीं बतलाई !

षोड़शी मुसकुराती हुई बोली—अपनी बहुत-सी बातें मैंने आपको अभी तक नहीं बतलाई हैं, परन्तु एक रोज़ आपको सब मालूम हो जायँगी। संसार में एक ही मनुष्य हैं जिन्हें मेरी सभी बातें मालूम हैं—वे हैं फ़क़ीर साहब।

"तो यह सलाह भी उन्होंने दी होगी ?"

षोड़शी ने उसी वक़्त जवाब दिया—नहीं, वे आज सवेरे तक कुछ नहीं जानते थे और जिसे आप त्याग-

पत्र कहते हैं वह मेरी कल रात की रचना है। जिन्होंने इस काम में मुझे प्रवृत्ति दी है, उनके नाम को मैं संसार में गुप्त रक्खूँगी।

जीवानन्द ने थोड़ी देर तक चुप रहकर सहसा एक लम्बी साँस छोड़कर कहा—मालूम होता है, घर में बुलाकर मेरे साथ एक प्रचण्ड परिहास कर रही हो षोड़शी। इस पर विश्वास करना तो उस दिन के मरफ़िया खाने से भी मुझे कठिन मालूम हो रहा है।

इतनी देर के बाद निर्म्मल ने ज़मींदार की ओर ताका और ज़रा हँसकर कहा—"आप तो यहो थोड़े से क़दम चले आकर तमाशा देख रहे हैं, परन्तु मुझे तो काम-धन्धा, घर-द्वार सब छोड़कर यही तमाशा देखने आठ सौ मील से दौड़ आना पड़ा। यदि यह सब सत्य हो तो आपने जो चाहा था वह आपको मिल गया, परन्तु मेरे भाग्य में तो सोलहों आना नुक़सान है। इसे तमाशा कहूँ या परिहास, यही मेरी समझ में नहीं आ रहा है।" अब उन्होंने और एक बार ज़मींदार की ओर अच्छी तरह देखा। देखा कि ज़मींदार की आँखें व्यथा के बोझ से लदी हुई हैं; उसने कुछ जवाब नहीं दिया, सिर्फ़ ज़रा हँसने की चेष्टा की।

निर्म्मल ने षोड़शी से पूछा—यह सब आपका परिहास तो नहीं न है?

षोड़शी ने कहा—नहीं जी, मेरी और मेरी माँ की निन्दा देश भर में फैल गई, यह क्या मेरा हँसी-दिल्लगी का समय है ? मैंने वास्तव में ही छुट्टी ले ली।

निर्म्मल ने कहा—तो आपको यह काम बड़े कष्ट से करना पड़ा है।

षोड़शी ने कुछ उत्तर नहीं दिया। निर्म्मल ने तनिक चुप रहकर कहा—"मैं आया था आपको बचाने, और शायद बचा भी लेता, फिर भी आपने किसलिए वैसा नहीं होने दिया, वह मैं समझ गया। सम्पत्ति बच जाती, परन्तु निन्दा का तूफ़ान उससे न रुकता। और उसे रोकने की शक्ति भी मुझमें न थी।" वहाँ उपस्थित सभी समझ गये कि यह उन्होंने किस पर कटाक्ष किया। परन्तु जीवानन्द चुप ही रहा। षोड़शी ने स्वयं भी कुछ प्रतिवाद नहीं किया।

निर्म्मल ने पूछा—तो अब क्या कीजिएगा, कुछ निश्चय किया है ?

षोड़शी बोली—वह मैं आपको पीछे बतलाऊँगी।

"कहाँ रहिएगा ?"

"यह भी मैं आपको बाद को बताऊँगी।"

बाहर से आवाज़ आई—'माँजी ?' षोड़शी बाहर झाँककर बोली—"कौन भूतनाथ ? आओ बेटा, भीतर ले आओ।" मन्दिर का नौकर एक टोकरे में भरकर देवी का प्रसाद, तरह-तरह के फल और मिठाइयाँ लाया था। षोड़शी उसे हाथ में

लेकर जीवानन्द की ओर देखती हुई स्निग्ध हँसी हँसकर बोली—"उस दिन मैं आपको भर पेट खिला नहीं सकी थी, परन्तु आज वह कसर पूरी करके छोड़ूँगी।" निर्म्मल की ओर देखकर बोली—और आप तो बहनोई ही हैं, आपको यों ही जाने देना बेजा होगा। बहुत कड़वी बातचीत हो गई है, अब बैठिए तो दोनों महाशय खाने के लिए। बिना मुँह मीठा किये छोड़ देने से मेरे क्षोभ की सीमा न रहेगी।

निर्म्मल ने कहा—"लाइए दीजिए।" परन्तु जीवानन्द ने इनकार कर कहा—नहीं, मैं खा न सकूँगा।

"खा नहीं सकिएगा? पर यहाँ तो आज खाना ही होगा।"

जीवानन्द ने इतने पर भी सिर हिलाकर कहा—नहीं।

षोड़शी हँसकर बोली—"फ़िज़ूल सिर हिलाना है चौधरी साहब। जो मौक़ा जीवन में कभी नहीं मिलेगा, उसे आज अगर हाथ में पाकर छोड़ दूँ तो व्यर्थ ही अब तक भैरवी का काम किया।" अब उसने दोनों के सामने के स्थान को पानी के हाथ से पोंछ लिया और पत्तल बिछाकर मिठाई परोस दी। वह ख़ुद भी खिलाने के लिए पास बैठ गई।

मिठाई आज सचमुच में जीवानन्द के गले से उतरती न थी, इसे समझते षोड़शी को विलम्ब नहीं लगा। उसने मन्द स्वर से कहा—"तो रहने दीजिए, यह सब आप न खावें। आप थोड़े से फल खाइए।" वह अपने हाथ से ज़मींदार

की पत्तल की जूठी मिठाइयों को एक ओर हटाकर बोली—आज आपको क्या हो गया? सचमुच भूख नहीं है क्या? न हो तो ज़बरदस्ती खाने की ज़रूरत नहीं। देह में जो बीमारी बना रक्खी है उसे याद करते ही मेरा शरीर काँपने लगता है।

निर्म्मल मन लगाकर खा रहे थे। उन्होंने मुँह उठाकर ताका। इस कण्ठस्वर की अनिर्वचनीयता ने चट से उनके कानों में खटक पैदा करके बहुदूरवर्तिनी हैम को याद करा दिया। षोड़शी के साथ उनकी बहुत तरह की हँसी-दिल्लगी हुई है। आज सवेरे भी उसकी बातों और इशारे से कई बार उनके शरीर में आनन्द की बिजली दौड़ गई है, परन्तु यह गला तो वह नहीं था। मधुरता का ऐसा घना रस तो उससे नहीं टपका था। मिठाई की मिठास उनके मुँह में स्वादहीन और फलों का रस कडुआ लगकर उनके भोजन का सारा आनन्द क्षण भर में मिट गया। कुछ देर बाद देखकर षोड़शी आश्चर्य के साथ बोली—आपकी भी वही हालत हुई निर्म्मल बाबू, अभी खाया ही क्या है आपने?

निर्म्मल ने कहा—जितना खा सका उतना आपके कहने के पहले ही मैंने खा लिया; अनुरोध की प्रतीक्षा नहीं की।

"मिठाइयाँ शायद आज अच्छी नहीं बनीं?"

"हो सकता है, दूसरे दिन कैसी बनती हैं वह तो मालूम नहीं।" कहकर उन्होंने हाथ धोने का उद्योग किया। इस विषय में उनके कौतूहल के अभाव पर षोड़शी की ही नहीं

किन्तु जीवानन्द की भी दृष्टि खिंची। परन्तु इस पर किसी ने और चर्चा नहीं की। बाहर आकर षोड़शी ने हाथ-मुँह धोने को पानी देकर पान का बीड़ा हाथ में दिया और अनुरोध किया कि देख लीजिए पान ठीक है या नहीं परन्तु अपने या उनके सम्बन्ध में कोई प्रश्न नहीं किया।

निर्म्मल ने कहा—तो मैं अब जाऊँ?

"आप घर कब जायँगे?"

"मुझे और तो कुछ काम है नहीं, शायद कल ही लौट जाऊँ।"

"तो हैम से, और लड़के से मेरा आशीर्वाद कह दीजिएगा।"

निर्म्मल ने दम भर के बाद पूछा—मेरी और तो कोई ज़रूरत नहीं है?

षोड़शी स्वयं भी थोड़ी देर में बोली—इतने घमण्ड की बात क्या मैं कह सकती हूँ निर्म्मल बाबू? परन्तु मन्दिर के बारे में अब शायद मुझे आपको कष्ट देने की ज़रूरत न होगी।

निर्म्मल ने मलिन मुख से हँसने की चेष्टा करते हुए कहा—आशा है, हमें जल्दी भूल न जाइएगा।

षोड़शी ने सिर हिलाकर सिर्फ़ "नहीं" कहा।

निर्म्मल ने नमस्कार करके कहा—"तो मैं चलता हूँ। अगर सवेरे की गाड़ी से जाना हुआ तो शायद फिर मिलने का अवकाश न हो। हैम को आपसे बड़ा प्रेम है, फ़ुरसत मिले

तो बीच-बीच में अपना कुशल-मङ्गल लिखती रहिएगा।"

अब वे उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही बाहर चले गये। प्रवञ्चित की लज्जा और जलन अत्यन्त गुप्त रूप से उनकी छाती के भीतर धधक-धधककर जलने लगी। विफल-मनोरथ पियक्कड़ जिस प्रकार कलवरिया का दरवाज़ा बन्द देखकर लौटते समय अपने को ढाढ़स देता रहता है, उसी प्रकार वे रास्ते भर मन ही मन यही कहते हुए चलने लगे कि मैं बच गया, मैं बच गया; स्वेच्छाचारिणी के मोह के बन्धन से छुटकारा पाकर मैंने फिर हैम को पा लिया। इन बातों को बार-बार दुहराते हुए उन्होंने अपने पीड़ित और आहत हृदय के सामने यही प्रमाणित करना चाहा कि यही अच्छा हुआ कि षोड़शी के घर का दरवाज़ा उनके लिए हमेशा को बन्द हो गया।

दो-तीन मिनट के बाद जीवानन्द ने बाहर आकर देखा कि अँधेरे में एक खम्भे के सहारे षोड़शी चुपचाप खड़ी है; पास आकर उसने धीरे-धीरे पूछा—क्या निर्म्मल बाबू चले गये?

इस प्रश्न का उत्तर देने की आवश्यकता नहीं थी। षोड़शी चुपचाप खड़ी रही। जीवानन्द ने कहा—इन्हें मैं ठीक समझ नहीं सका।

षोड़शी रास्ते की ओर टकटकी बाँधे खड़ी थी। उसी तरफ़ नज़र रक्खे हुए उसने कहा—उससे आपको हानि क्या है?

"मेरी हानि? नहीं, हानि शायद कुछ नहीं है, परन्तु तुम्हें तो कुछ है। क्या तुम्हीं उन्हें समझ सकी हो?"

षोड़शी बोली—मुझे जितनी ज़रूरत है उतना अवश्य समझ सकी हूँ।

"अच्छी बात है।" कहकर थोड़ी देर चुप रहकर मानो उसने अपने ही मन में कहा—"अपनी याद रखने के लिए वे कैसी व्याकुल प्रार्थना जता गये! दरख्वास्त मञ्जूर हुई न?" कहते हुए आँख उठाकर देखते ही उस अँधेरे में भी दोनों की आँखें मिल गईं। षोड़शी ने दृष्टि नीची नहीं की। बोली—"उन्हें जितना मैं जानती हूँ उसका आधा भी मुझे जानने का उन्हें अवकाश होता तो इतनी बड़ी प्रार्थना करने का साहस वे न कर सकते। मेरी जो कुछ कल्पनाएँ, जो कुछ आनन्द की तरङ्गें हैं वे सब उन्हीं लोगों को लेकर हैं। उन लोगों को देखकर ही तो मैं वह षोड़शी अब नहीं रही। चण्डी-गढ़ का यही भैरवी का पद है—जिसका बँटवारा कर लेने के लिए आप लोगों ने खींचातानी की हद कर दी है, और जिसके लिए आप लोगों ने देश को कलङ्क से भर दिया है—उसे आज मैं फटे-पुराने कपड़े की तरह छोड़े जाती हूँ, उसकी शिक्षा कहाँ पाई है, जानते हैं आप? वहीं पर। स्त्रियों के लिए यह सब—पद, सम्मान आदि—कैसा मिथ्या और कैसा वृथा है यह उन लोगों को देखकर ही मैंने समझा था। परन्तु इसका उन्हें स्वप्न तक में ज्ञान नहीं; शायद कभी जान भी न सकें।

जीवानन्द विस्मित होकर उसका मुँह ताक रहा था। एकाएक उस तरफ़ नज़र पड़ते ही षोड़शी अपने उच्छ्वसित

आवेग से लज्जित होकर चुप हो गई। थोड़ी देर तक दोनों के चुप रहने के बाद जीवानन्द ने धीरे-धीरे मुँह खोला, कहा—एक बात पूछने में मुझे बड़ी शर्म मालूम होती है, परन्तु अगर मैं पूछ सकता तो क्या तुम उसका ठीक जवाब देतीं अलका?

जीवानन्द के मुँह से यही 'अलका' नाम षोड़शी के लिए सबसे बड़ी दुर्बलता है। उसे मालूम न होता था कि तीन अक्षरों का यह छोटा सा नाम उसके कहाँ जाकर चोट पहुँचाता है। ख़ासकर जीवानन्द के प्रश्न करने के इस कौतुककर ढङ्ग से उसे हँसी आई; उसने कहा—अगर आप कोई अद्भुत काम कर सकते तो उसके बाद मैं भी कोई दूसरा विचित्र काम कर दिखाती कि नहीं, इतनी बड़ी शपथ करने की शक्ति मुझमें नहीं है। परन्तु वह अद्भुत काम करने की आपको ज़रूरत नहीं—मैं समझ गई। कलङ्क आप लोगों ने लगाया है इसलिए यह कोई नियम नहीं कि उसे सत्यरूप में परिणत करना ही पड़ेगा।' मैं कभी किसी कारण से किसी का आश्रय न लूँगी। किसी लालच से मैं इस बात को भूल नहीं सकती कि मेरे स्वामी हैं। यही भयानक प्रश्न ही न आपको लज्जित कर रहा था चौधरी साहब?

"तुम मुझे चौधरी साहब क्यों कहती हो?"

"तो क्या कहूँ? हुजूर?"

"नहीं। बहुत लोग जिस नाम से पुकारते हैं—वही जीवानन्द बाबू।"

षोड़शी ने कहा—अच्छी बात है, अब ऐसा ही करूँगी।

जीवानन्द ने कहा—भविष्य में क्यों, आज से ही क्यों नहीं कहती ?

षोड़शी ने इसका कुछ उत्तर नहीं दिया। भीतर दिया बुझ रहा था। उसने घर में जाकर उसे उसका दिया। जीवानन्द के आकर बैठते ही षोड़शी ने विस्मित होकर कहा—रात हो रही है, आप घर नहीं गये ? आपके आदमी कहाँ हैं ?

"मैंने उन्हें वापस भेज दिया है।"

"अकेले घर जाने में आपको डर नहीं मालूम होगा ?

"नहीं। पिस्तौल साथ है।"

"तो उसी को लेकर घर जाइए। मुझे बहुत काम है।"

जीवानन्द ने कहा—तुम्हें हो सकते हैं, परन्तु मुझे नहीं है। मैं अभी नहीं जाऊँगा।

षोड़शी की दृष्टि तीक्ष्ण हो उठी, परन्तु वह शान्त भाव से बोली—रात अधिक हो गई है, मैं आदमी बुलाकर साथ किये देती हूँ, वे घर तक पहुँचा आयेंगे।

जीवानन्द को मालूम हुआ कि उसने अच्छी बात नहीं कही है। उसने सकुचाकर कहा—किसी को बुलाने की ज़रूरत नहीं, मैं ख़ुद ही जाता हूँ। जाने को मेरा मन नहीं चाहता, यही मैं कह रहा था। क्या तुम सचमुच ही चण्डी-गढ़ छोड़कर चली जाओगी अलका ?

फिर वही नाम। जीवानन्द के मुँह की ओर देखकर उसे व्यथा मालूम हुई। सिर हिलाकर उसने बतलाया कि वास्तव में वह चली जायगी।

"कब जाओगी?"

"ठीक निश्चय नहीं, शायद कल ही चली जाऊँ।"

"कल? कल ही जा सकती हो?" कहकर जीवानन्द स्तब्ध हो रहा। बहुत देर के बाद एकाएक लम्बी साँस छोड़कर कहा—आश्चर्य है! अपने मन को समझने में मनुष्य से कैसी भूल होती है! मैंने जी-जान से अब तक यही कोशिश की है जिसमें तुम चली जाओ; परन्तु अब तुम चली जाओगी यह सुनकर सारी दुनिया मानो मेरी आँखों के सामने सूख गई। निर्म्मल बाबू बड़े आदमी हैं, नामी बैरिस्टर हैं—वे तुम्हारी ओर से पैरवी करने आ रहे हैं—लड़ाई छिड़ जायगी—हमीं जीतेंगे, और क़र्ज़ अदा करने के लिए जो ज़मीन बेच डाली है, उसके बारे में फिर कोई झगड़ा नहीं खड़ा होगा—बहुत सा नक़द रुपया भी हाथ लगेगा; और जो-जो कहूँगा वही तुमको करना पड़ेगा—अब तक इसी तरफ़ को देखा था, परन्तु और भी एक तरफ़ है—तुम ख़ुद ही सब छोड़-छाड़कर अलग हो जाओगी तो बात कैसी होगी—मामला कहाँ जाकर रुकेगा—यह तो मैंने सपने में भी नहीं सोचा था। अच्छा अलका, ऐसा भी तो हो सकता है कि मेरी तरह तुमसे भी भूल हो रही है, अपने मन की ख़बर तुम्हें भी नहीं मिली है?

बातें ऐसी मनोरम और ऐसी नई हैं कि एकाएक मालूम होता है मानो जीवानन्द के मुँह से ये निकली ही नहीं हैं। उत्तर देने में षोड़शी को ज़रा रुकना पड़ा। अन्त में उसने हामी भरकर कहा—हो क्यों नहीं सकता? परन्तु यह मैं अवश्य जानती हूँ कि जो मैंने तय किया है वह फिर टलेगा नहीं।

जीवानन्द ने कहा—बाप रे बाप! तुम्हें मर्द और मुझे औरत होना चाहिए था। अच्छा, वहाँ तुम्हारा गुज़ारा कैसे होगा?

षोड़शी ने पहले की तरह सहज कण्ठ से उत्तर दिया—इसकी चर्चा मैं आपके साथ किसी हालत में कर नहीं सकती।

जीवानन्द ने नाराज़ होकर कहा—तुम कुछ नहीं कर सकती, तुम पत्थर हो। मेरे बाल सुफ़ेद हो आये, जवानी गई और बुढ़ौती आ गई—अब क्या मैं तुम्हारे सामने हाथ जोड़-कर रो सकता हूँ—तुम समझती हो?

षोड़शी ने कहा—देखिए, रात बहुत हो गई है, अभी तक मैंने पूजा-पाठ भी नहीं किया।

पुजारी की खाँसी और पैरों की आहट बाहर सुनाई दी; उसने दरवाजे के पास आकर कहा—माजी, सबके सामने मन्दिर का दरवाज़ा बन्द करके आज चाबी मैंने तारादास पण्डितजी को दी है। राय बाबू, शिरोमणिजी—ये सब खड़े थे।

षोड़शी ने कहा—"अच्छा किया। तुम ज़रा ठहरो, मैं सागर के यहाँ जाऊँगी।" अब वह उठ खड़ी हुई।

जीवानन्द ने भी चुपचाप खड़े होकर कहा—तो यह सब भी तुम राय महाशय के पास ही भेज देना।

षोड़शी ने सिर हिलाकर कहा—नहीं, सन्दूक़ की चाबी और किसी के हाथ में देने से मुझे विश्वास नहीं होगा।

"सिर्फ़ मुझे देने से ही होगा?"

षोड़शी कुछ उत्तर न देकर घर का ताला हाथ में लिये बाहर आ खड़ी हुई, और जीवानन्द के बाहर आते ही किवाड़ बन्द करके, उसके आगे माथा टेककर, षोड़शी पुजारी के पीछे-पीछे चली गई। जीवानन्द अकेला अँधेरे बरामदे में, भूत की तरह, चुपचाप खड़ा रह गया।

२३

बैरिस्टर साहब चले गये हैं, षोड़शी भी जा रही है—मन्दिर का ताला-चाबी सामान वग़ैरह जो कुछ क़ीमती माल है सब क़ब्ज़े में आ गया है—आदि समाचार के फैल जाने में विलम्ब नहीं लगा। शिरोमणि मुक्त-कच्छ और अस्त-व्यस्त वेश में राय महाशय के बैठकख़ाने में पहुँचे।

निर्म्मल के जाते समय बिदा की घटना बहुत प्रीतिकर नहीं हुई। मन में इन बातों की आलोचना से ही शायद जनार्दन राय का मुख गम्भीर हो रहा था, परन्तु उस तरफ़ ख़याल करने की हालत शिरोमणि को नहीं थी। उन्होंने आशी-

र्वाद के ढङ्ग से दाहिना हाथ उठाकर गद्‌गद कण्ठ से कहा — चिरञ्जीवी रहो भइया, संसार में तुम्हारा ही इल्म सफल हुआ।

जनार्दन ने उनकी ओर देखकर पूछा—बात क्या है?

शिरोमणि ने कहा—बात क्या है? बीसों गाँवों में इस ख़बर के फैलने में बाक़ी है क्या? छोकड़ी चाबी वग़ैरह सब कुछ देकर जा रही है, सुना नहीं है क्या?

जो भला आदमी सुबह से बैठा इस महीने के सूद का कुछ रुपया माफ़ कराने के लिए ख़ुशामद कर रहा था, उसने कहा—वाह, मालिक को मालूम नहीं और ख़बर लगी ऐरों-ग़ैरों को? यह सब किया किसने शिरोमणि चाचा? सभी की जड़ में तो हमारे राय महाशय हैं।

शिरोमणि ने बैठकर कहा—परन्तु ख़ास चाबी, सुना है कि, जाकर पड़ी है ज़मींदार के हाथ में? पाजी शराबी है। देखना भइया, आख़िर देवी का सोना-चाँदी जवाहिरात कलवार के सन्दूक़ में न समा जाय। पाप की सीमा न रहेगी।

धीरे-धीरे, एक-एक करके, गाँव के बहुत से आदमी आ गये। निश्चय हुआ कि ज़मींदार के हाथ से उस चाबी को तुरन्त ले लेना चाहिए। तीसरे पहर सोकर उठने के बाद हुज़ूर जब शराब पीना शुरू कर देंगे तब, उनके बेहोश होने के पहले ही, उसे हथिया लेना होगा। ज़मींदार के हाथ में उस चाबी के जाने के बारे में जनार्दन राय ने अपनी ज़रा सी असावधानी और भूल स्वीकार कर कहा—मैंने सब ठीक कर

रक्खा था, एकाएक वे बीच में आकर उस चाबी को हथिया लेंगे, ऐसा ख़याल ही नहीं हुआ। अब मिलना कठिन मालूम होता है। दस दिन के बाद शायद कह बैठेंगे, सन्दूक़ में तो कुछ भी न था। परन्तु हम लोग जानते हैं भइया, षोड़शी और कुछ भी करे, देवी की सम्पत्ति वह नहीं चुरायेगी—एक पैसा भी न लेगी।

इस बात को सभी ने स्वीकार कर लिया। बहुतों के मन में ऐसा भी विचार उत्पन्न हुआ कि इससे तो वही अच्छी थी।

यह दल जब ठीक समय पर समारोह के साथ ज़मींदार के शान्तिकुञ्ज में पहुँचा तब ज़मींदार बाहर के कमरे में बैठा था। शराब की बोतल के बदले ज़मींदारी की मोटी-मोटी बहियाँ उसके सामने रक्खी थीं। एक तरफ़ उसका सहचर प्रफुल्ल अख़बार पढ़ रहा था। उसने सबको स्वागत करके बिठाया।

शिरोमणि सबके पहले बोलते और सबके पीछे पछताते हैं। इस मौक़े पर भी वे ही पहले बोले। कहा—हुज़ूर के आराम में कहीं गड़बड़ न हो इसलिए हम लोग ज़रा देर करके—

जीवानन्द ने बहीखाते को एक ओर ढकेलकर हँसते हुए कहा—देर न करके आने से भी हुज़ूर के आराम में बाधा नहीं होती पण्डितजी, क्योंकि मैं दिन में नहीं सोता।

"परन्तु हम लोगों को तो मालूम है—"

"मालूम है? आप लोगों को बहुत सी ऐसी बातें मालूम हैं जो सत्य नहीं हैं और बहुत सी बिलकुल मिथ्या बातें कहते

हैं। जैसे, मेरे सम्बन्ध में भैरवी की बात"—कहकर वक्ता ने हँस दिया। परन्तु श्रोताओं का दल सुनकर सङ्कोच से सिकुड़ गया। जीवानन्द ने कहा—ख़ैर, जिसलिए जल्दी-जल्दी आना चाहते थे उसका कारण क्या है, ज़रा सुन लूँ ?

जनार्दन राय ने अपने को सँभाल लिया। मन ही मन कहा कि इतना डर ही किस बात का है ? ज़ाहिरा कहा—आशा न थी कि मन्दिर के मामले का निपटारा इतनी आसानी से हो जायगा। निर्म्मल जिस तरह अकड़ बैठा था—

जीवानन्द ने कहा—वे सीधे कैसे हुए ?

इस व्यंग्योक्ति को जनार्दन समझ गये; परन्तु शिरोमणि ने उस पर ख़याल ही नहीं किया, ख़ुश होकर घमण्ड के साथ कहा—देवी की इच्छा है सरकार, सीधा तो होना ही पड़ेगा। पाप का भार उनसे अब सहा नहीं जाता था।

जीवानन्द ने सिर हिलाकर कहा—होगा; उसके बाद ?

शिरोमणि ने कहा—"परन्तु पाप तो टला, अब—कहो न जनार्दन, हुज़ूर को सब समझाकर कहो न ?" अब उन्होंने राय महाशय को हाथ से ढकेला। जनार्दन ने चौंककर कहा—मन्दिर की चाबी तो हम लोगों ने सामने खड़े होकर तारादास को दिला दी है। आज सुबह उन्हों ने मन्दिर खोला है; परन्तु सन्दूक की चाबी, सुना है कि, षोड़शी ने हुज़ूर को सौंपी है।

जीवानन्द ने हामी भरकर कहा—हाँ सौंपी तो है। जमा-खर्च की बही भी दी है।

शिरोमणि ने कहा—लौंडी अभी तक यहीं है। कुछ ठिकाना नहीं कि कब कहाँ चली जाय।

जीवानन्द ने दम भर वृद्ध के मुख की ओर देखकर पूछा—परन्तु उसके लिए आप लोगों को इतनी घबराहट क्यों है?

उत्तर के लिए ज़मींदार ने जनार्दन की ओर ताका; जनार्दन ने साहस पाकर कहा—दस्तावेज़, क़ीमती बर्तन, देवी के जवाहिरात वग़ैरह जो कुछ है, गाँव के बड़े-बूढ़ों को सब मालूम है। शिरोमणिजी का कहना है कि षोड़शी के रहते-रहते वह सब मिलाकर सहेज लेना अच्छा है। शायद—

"शायद न हो? यही न? अगर न हो तो आप लोग वसूल कैसे करेंगे?"

जनार्दन को एकाएक जवाब न सूझा। अन्त में उन्होंने कहा—तो भी मालूम तो हो जायगा हुज़ूर।

"परन्तु आज मुझे अवकाश नहीं है राय महाशय।"

जनार्दन मन में बड़े प्रसन्न हुए, इसी मतलब से तो वे लोग आये थे। शिरोमणि ने आग्रह के साथ कहा—चाबी अगर जनार्दन भइया को दे दी जाय तो आज सन्ध्या के पहले ही सब मिला लिया जाय। हुज़ूर की भी कोई ज़िम्मेवरी न रहेगी। उसके भागने के पहले ही मालूम हो जायगा कि

क्या है और क्या नहीं। क्यों भइया ? तुम लोगों की क्या राय है ? ठीक है न ?

इस प्रस्ताव पर सभी ने सम्मति दी, नहीं दी केवल जीवानन्द ने जिसके हाथ में चाबी है। उसने ज़रा हँसकर कहा—जल्दी क्या है पण्डितजी, अगर कुछ खो ही गया हो तो वह भिखारिन से वसूल न होगा। आप लोग आज पधारिए; मुझे जिस दिन फुरसत होगी, मिला लेने के लिए आप लोगों के पास मैं ख़बर भेजूँगा।

चाल को चलते न देखकर सबके मन में बड़ा क्रोध हुआ। राय महाशय ने खड़े होकर कहा—परन्तु एक ज़िम्मेवरी—

जीवानन्द ने उसी दम सम्मति देकर कहा—वह तो ठीक ही है राय बाबू। ज़िम्मेवरी मुझ पर ही रही।

फाटक के बाहर आकर शिरोमणि ने जनार्दन को हाथ से छूकर कहा—देखा भइया, शराबी का मतलब ही समझ में नहीं आता। सभी बातों में समस्या है ! नशे में मस्त है। बचेगा नहीं ज़्यादा दिन।

जनार्दन ने कहा—हूँ। जो डर था वही दीखता है।

शिरोमणि ने कहा—अब गया सब कलवार की दूकान में। बदमाश लौंडिया जाते समय ख़ासा धोखा दे गई।

एक आदमी ने कहा—हुज़ूर अब चाबी न देंगे।

शिरोमणि ने उत्तेजित होकर कहा—"फिर ? अबकी अगर कोई माँगने जायगा तो वह गला दबाकर शराब

पिलाके छोड़ेगा।" इस बात को कहते ही उनके रोंगटे खड़े हो गये।

घर के भीतर जीवानन्द खुले दरवाजे की तरफ़ शून्य दृष्टि से देखता हुआ बैठा था; प्रफुल्ल ने कहा—फिर एक नया बखेड़ा क्यों मोल लिया भाई साहब ? चाबी उन्हें दे देते तो झञ्झट मिट जाता।

जीवानन्द ने उसके मुँह की ओर दृष्टि फिराकर कहा—नहीं मिटता प्रफुल्ल, झञ्झट मिटने की सम्भावना होती तो मैं दे देता। ऐसी नौबत आने के डर से ही वह कल रात को मुझे चाबी दे गई है।

प्रफुल्ल के मन में शायद विश्वास नहीं हुआ। उसने पूछा—सन्दूक़ में है क्या ?

जीवानन्द ने ज़रा मुसकुराकर कहा—क्या है, आज वही मैं सवेरे इस बही में पढ़कर देख रहा था। मुहरें, रुपये, हीरे, पन्ने, मोती की मालाएँ, मुकुट, तरह-तरह के जड़ाऊ ज़ेवर, दस्तावेज़, उसके सिवा सोने-चाँदी के बर्तन भी कम नहीं हैं। मैंने सपने में भी न सोचा था कि इतने दिनों में जमा होते-होते इस छोटे से चण्डीगढ़ की देवी के इतनी सम्पत्ति सञ्चित हो गई है। लुटेरों के डर से भैरवियाँ शायद किसी को जानने भी न देती थीं।

प्रफुल्ल डर के साथ बोला—क्या कहते हैं आप! उसकी कुञ्जी है आपके पास! एकलौता लड़का सौंपना डाइन के हाथ में ?

जीवानन्द नाराज़ नहीं हुआ, बोला—"बिलकुल झूठ नहीं कहा है तुमने। यह इतनी बड़ी रक़म है कि मैं अपने ऊपर भी विश्वास न कर सकता।" दम भर के बाद उसने फिर कहा—परन्तु यह मैंने चाहा नहीं था। मैंने जितना ही उसे दबाया कि चाबी राय बाबू को दी जाय उतना ही उसने इन-कार कर मेरे हाथ में चाबी ठूँस दी।

प्रफुल्ल ने स्वयं भी पल भर चुप रहकर पूछा—इसका कारण?

जीवानन्द ने कहा—शायद उसने सोचा था कि इस बद-नामी के बाद चोरी के कलङ्क को वह सह नहीं सकेगी। इन लोगों को उसने पहचान लिया था।

प्रफुल्ल ने कहा—परन्तु आपको वह नहीं पहचान सकी।

जीवानन्द हँस पड़ा। परन्तु उस हँसी में आनन्द नहीं था; उसने कहा—इसमें दोष उसका है, मेरा नहीं। उसके सम्बन्ध में मेरा अपराध दूसरी तरफ़ कितना ही क्यों न हो, किन्तु शुरू से आख़िर तक मैंने एक दिन के लिए भी ऐसा बर्ताव नहीं किया जिससे मैं पहचाना न जाऊँ। अद्‌भुत है यह पृथ्वी, और उससे भी विचित्र है यहाँ के मनुष्य का मन! यह किससे क्या निश्चय कर लेता है, कुछ कहा नहीं जा सकता। जानते हो भइया उसकी युक्ति क्या है? उस दिन जो उसके हाथ से मरफ़िया लेकर आँख मींचकर खाने की बात तुमसे कही थी, वही है उसके सब तर्कों का बड़ा

तर्क, सब विश्वासों का बड़ा विश्वास। परन्तु उस रात को तो दूसरा उपाय ही नहीं था, इससे भी मरता था, उससे भी मरता था। उसके सिवा और किसी की ओर ताकने का रास्ता भी न था, यह सब षोड़शी भूल गई है। उसके मन में तो यही एक बात जागती है कि जो अपने प्राण उसके हाथ में सौंप देने में नहीं हिचका, उस पर अविश्वास कैसे किया जाय? बस, जो कुछ था सब मेरे हाथ में आँख मूँद-कर दे दिया। प्रफुल्ल, दुनिया का सबसे चालाक आदमी भी कभी-कभी ऐसी-ऐसी गहरी भूलें कर बैठता है, नहीं तो संसार एकदम मरुभूमि हो उठता, कहीं रस की भाफ भी न जमने पाती।

प्रफुल्ल गर्दन हिलाकर बोला—बहुत ठीक है भाई साहब। अतः अब तुरन्त इस बही को जला डालिए और तारादास को बुलाकर धमका दीजिए। उन मुहरों से अगर सलोमन साहब का क़र्ज़ अदा हो जाय तो सिर्फ़ रस की भाफ क्यों, मूसलधार वर्षा होने लगेगी।

जीवानन्द ने कहा—प्रफुल्ल, इसी लिए तुम्हें इतना पसन्द करता हूँ।

प्रफुल्ल ने हाथ जोड़कर कहा—इस पसन्द को अब ज़रा घटाना पड़ेगा, भाई साहब। आपका रस का अनन्त फुहारा दिन पर दिन छूटता रहे, परन्तु मुसाहबी करते-करते इस ग़ुलाम का गला तक सूखकर काठ हो गया है। अब

एक बार बाहर जाकर अपने लिए ज़रा दाल-रोटी का इन्तज़ाम करना होगा। कल या परसों मैं बिदा होता हूँ।

जीवानन्द ने हँसकर कहा—एकदम बिदा? इस बार समेत कितनी बार बिदा ले चुके प्रफुल्ल?

"चार बार" कहकर उसने ख़ुद भी हँसकर कहा—ईश्वर ने मुँह दिया था सो बड़े आदमी का प्रसाद खाने में ही दिन बीते, दो-चार बड़ी-बड़ी बातें हाँ अगर यह निकाल न सका तो इसका जन्म ही वृथा है। मेरा ही सोलहों आने अपराध नहीं है भाई साहब। बहुत दिनों से आप लोगों की 'हाँ में हाँ' मिलाते-मिलाते इस देह के मेद-मांस की ही वृद्धि हुई है, असली ख़ून शायद एक बूँद भी न बचा हो। आज सोचा है कि एक काम करूँ। सन्ध्या के अँधेरे में छिपकर चला जाऊँ और एक मुट्ठी भैरवी माँजी की चरण-रज लेकर निगल जाऊँ। आपके यहाँ की बहुत ही बढ़िया-बढ़िया चीज़ें मेरे पेट में समाई हुई हैं, बिना इसके वे हज़म न होंगी, पेट में कीलों की तरह गड़ेंगी।

जीवानन्द ने हँसने की चेष्टा करते हुए कहा—आज उच्छ्वास की कुछ अधिकता मालूम होती है प्रफुल्ल।

प्रफुल्ल ने फिर हाथ जोड़कर कहा—ठहरिए तो भाई साहब, इसे ख़तम कर लेने दीजिए। मुसाहबी की पेन्शन बतलाकर जिस दान-पत्र में उस दिन आपने पाँच हज़ार रुपया लिख रक्खा है उस पर ज़रा क़लम मार दीजिए—

चण्डी देवी का रुपया हाथ में आने पर मुसाहबों की कमी नहीं रहेगी, किन्तु मुझे दान करके उतना रुपया बरबाद न कीजिएगा।

जीवानन्द ने कहा—तो क्या अब की बार तुमने सचमुच ही मुझे छोड़ दिया ?

प्रफुल्ल वैसे ही हाथ जोड़े हुए बोला—आशीर्वाद दीजिए, यह सद्बुद्धि अन्त तक बनी रहे।

जीवानन्द चुप हो रहा। प्रफुल्ल ने पूछा—तो कब जायँगी वे ?

"मुझे नहीं मालूम।"

"कहाँ जा रही हैं ?"

"वह भी मालूम नहीं।"

"मालूम होकर भी कोई लाभ नहीं है भाई साहब।" एकाएक उसका चेहरा बदल गया; उसने कहा—बाप रे ! औरत तो है ही नहीं, मर्द का दादा है ! मन्दिर में खड़ा होकर मैं उस दिन बहुत देर तक देख रहा था, मालूम हुआ कि नख से सिख तक पत्थर की मूर्ति है। चोट लगा-लगाकर चूर-चूर कर सकते हैं, पर ऐसी चीज़ ही नहीं कि आग में गलाकर साँचे में ढालकर इच्छानुसार गढ़ लेंगे। हो सके तो वैसा मतलब छोड़ दीजिएगा।

जीवानन्द ने कुछ दिल्लगी के ढङ्ग से पूछा—तो प्रफुल्ल, अब की बार तुम एकदम जा रहे हो ?

प्रफुल्ल ने विनय के साथ उत्तर दिया—बड़ों के आशीर्वाद का ज़ोर रहे तो मनोकामना पूरी होगी।

जीवानन्द ने कहा—वह हो सकता है। परन्तु बतलाओ तो, क्या करोगे?

प्रफुल्ल बोला—इच्छा तो पहले ही आपके सामने प्रकट की है। पहले ज़रा दाल-रोटी का प्रबन्ध करूँगा।

जीवानन्द ने थोड़ी देर चुप रहकर पूछा—तो तुम्हें विश्वास होता है कि षोड़शी सचमुच चली जायगी?

प्रफुल्ल ने कहा—जी हाँ। कारण यह है कि संसार में सभी प्रफुल्ल नहीं हैं। अच्छी याद आई भाई साहब, आपको एक खबर देना मैं भूल गया था। कल रात को नदी के किनारे घूम रहा था। एकाएक फ़क़ीर साहब मिल गये। वही जिन्होंने एक रोज़ अपने बरगद के पेड़ के कबूतरों को मारने से आपको रोका था, बन्दूक़ छीन ली थी। मैंने सलाम कर कुशल-क्षेम पूछा। मन में आया कि मीठी-मीठी दो-चार खुशामद की बातें करके कोई अच्छी सी दवा सीख लूँ और आपकी मदद से पेटेन्ट लेकर, बेंच करके, दो पैसा कमा लूँगा। परन्तु आदमी हैं बड़े होशियार। उस तरफ़ से गये ही नहीं। बातचीत के सिलसिले में सुना कि वे आये थे अपनी भैरवी माँ को देखने। अब जा रहे हैं। उन्हीं से पता लगा कि भैरवी सब छोड़-छाड़कर जा रही हैं।

जीवानन्द को कौतूहल हुआ। कहा—इन्हीं के सदुपदेश से शायद वह चली जा रही है?

प्रफुल्ल सिर हिलाकर बोला—नहीं। बल्कि उनके उपदेश के विरुद्ध ही वे जा रही हैं।

जीवानन्द ने दिल्लगी करते हुए कहा—क्या कहते हो प्रफुल्ल। सुना है कि फ़कीर साहब उसके गुरु हैं। गुरु की आज्ञा का उल्लङ्घन?

प्रफुल्ल ने कहा—यहाँ ऐसा ही हुआ है।

"परन्तु इतने बड़े विराग का कारण?"

प्रफुल्ल ने कहा—"विराग का कारण आप हैं।" ज़रा ठहरकर फिर कहा—मालूम नहीं, यह बात आपको सुनाना ठीक है कि नहीं, परन्तु फ़कीर को विश्वास है कि आपसे वे बहुत डरती हैं। कहीं लड़ाई-झगड़े के सिलसिले में आपसे मेल-मिलाप बढ़ जाय, यही उनको सबसे अधिक डर है; नहीं तो देश के लोगों से वे डरती न थीं।

जीवानन्द आँखें फाड़कर उसकी ओर ताकने लगा। प्रफुल्ल ने ज़रा हँसकर कहा—भाई साहब, परमात्मा ने आपको भी कम बुद्धि नहीं दी है; परन्तु अपना सर्वस्व सौंपकर कल उन्होंने बड़ी भारी भूल की है या हाथ फैलाकर ग्रहण करने में उससे भी बढ़कर भूल आपने की है, इस बात की मीमांसा आज रह गई। अगर जीवित रहूँगा तो आशा है एक रोज़ देख लूँगा।

जीवानन्द ने इस बात का भी जवाब नहीं दिया; वह चुपचाप बैठा रहा।

शाम होने में देर नहीं थी। नौकर गिलास में शराब भर लाया। जीवानन्द ने सिर हिलाकर कहा—ले जा, ज़रूरत नहीं है।

समझ न सकने के कारण नौकर खड़ा रहा। प्रफुल्ल ने कहा—बता न दीजिए, कब ज़रूरत होगी?

जीवानन्द न मालूम कब अन्यमनस्क हो गया था, प्रफुल्ल के प्रश्न से आँख उठाकर कहा—"अभी तो ले जा, ज़रूरत होने पर बुलाऊँगा।" वह चला जा रहा था, जीवानन्द ने पुकारकर पूछा—चाय है?

प्रफुल्ल ने कहा—वाह! चाय नहीं है तो मैं जीता कैसे हूँ?

"तो एक प्याला ले आ।"

नौकर के चले जाने पर प्रफुल्ल ने पूछा—अकस्मात् अमृत से अरुचि क्यों?

जीवानन्द ने कहा—अरुचि तो नहीं है, परन्तु अब न पिऊँगा।

प्रफुल्ल हँस पड़ा। पल भर पहले अपने ऊपर किये गये ठट्ठे को लौटाकर उसने कहा—आज समेत कितनी बार 'तोबा' हुई भाई साहब?

जीवानन्द नाराज़ नहीं हुआ। उसने भी हँसकर उसी का अनुकरण करते हुए कहा—यह मीमांसा आज रहने दो प्रफुल्ल। अगर जीते रहो तो आशा है एक रोज़ देख सकोगे।

प्रफुल्ल मुस्कुराया, उसने कुछ जवाब नहीं दिया।

नौकर दिया जला गया। क्रमशः सन्ध्या का अँधेरा जब बाहर घना होने लगा तब जीवानन्द ने एकाएक खड़े होकर कहा—चलूँ, ज़रा घूम आऊँ।

प्रफुल्ल ने आश्चर्य करके पूछा—कपड़े क्यों नहीं बदले?

"रहने दो।"

"आपका सहचर, भरा हुआ पिस्तौल?"

"उसकी भी ज़रूरत नहीं। आज अकेला ही घूमने जाता हूँ।"

प्रफुल्ल ने ज़ोर से रोककर कहा—"नहीं-नहीं, यह नहीं होगा, भाई साहब। एक तो अँधेरी रात, तिस पर चारों ओर आपके दुश्मन हैं।" अब वह झटपट दराज़ खोलकर पिस्तौल निकाल उसके हाथ में ज़बरदस्ती देने गया।

जीवानन्द ने दो क़दम पीछे हटकर कहा—उसे मैं अब कभी नहीं छुऊँगा प्रफुल्ल—

प्रफुल्ल ने विस्मय से अवाक् होकर कहा—एकाएक यह क्या हो गया भाई साहब? तो फिर नौकरों को बुला दूँ, उनमें से कोई साथ चला जाय।

जीवानन्द ने सिर हिलाकर कहा—"नहीं वह भी नहीं। आज से मैं ऐसा ही अकेला निकला करूँगा, मानो मेरा कहीं कोई शत्रु नहीं है। मुझसे किसी को डर न हो—मुझ पर कुछ भी क्यों न बीते—मैं किसी से नालिश करने न जाऊँगा।" अब वह अँधेरे में अकेला बाहर चला गया।

शराब का भरा हुआ गिलास उपेक्षित होकर लौट गया, इससे प्रफुल्ल ने परिहास किया। करने की ही बात है। 'लिवर' की असहनीय यातना से और वैद्य की भर्त्सना से शय्याशायी जीवानन्द के जीवन में ऐसा अभिनय कई बार हो चुका है। परन्तु अपनी इच्छा से, नीरोग शरीर में, शराब के बदले चाय पीकर घर से निकलना शायद यही पहले-पहल है। सारा संसार उनके सामने नीरस मालूम होने लगा, और शान्तिकुञ्ज के सघन वृक्षों की छाया से छिपे हुए मार्ग में जिधर ही वे नज़र घुमाने लगे, उधर से ही अस्फुट रुदन का सुर उनके कानों में आकर गूँजने लगा। उनके अभ्यस्त जीवन के नीचे उन्हीं का और भी एक यथार्थ जीवन आज भी जीवित है—यह ख़बर उन्हें न थी। फाटक पार होकर जब वे मैदान के मार्ग में निकल आये तब सन्ध्या का धुँधला आकाश रात के अँधेरे में परिणत हो चुका था; एक ओर शीर्ण नदी का रेतीला तट घूम-फिरकर दिगन्त में जाकर अदृश्य हो गया है, दूसरी ओर वैशाख का शष्प-शस्य-हीन विस्तृत क्षेत्र चण्डी-गढ़ के पादमूल में जाकर मिल गया है। राह में बटोही नहीं हैं, मैदान में किसान नहीं दिखाई पड़ते, गड़रियों के लड़के चराने का काम करके घर लौट गये हैं—सान्ध्य आकाश के नीचे जनहीन भूखण्ड की यही स्तब्ध विषण्ण मूर्ति आज जीवानन्द को बड़ी ही करुण और अपूर्व मालूम हुई। इसी मार्ग में,

ऐसी ही निर्जन सन्ध्या के समय, वे और भी कई बार आये-गये हैं; परन्तु इतने दिनों तक धरित्री ने मानो अपना यह दुःख का चित्र शराबी की लाल आँखों से बड़े सङ्कोच के साथ छिपा रक्खा था। उस पार के, धूप से जले, प्रान्तर से गर्म हवा बीच-बीच में आकर उनके शरीर में लग रही थी—नया कुछ भी नहीं था—परन्तु उस ओर देखकर अकस्मात् अवरुद्ध अभिमान के रुदन से उनका हृदय भर गया। मन ही मन वे कहने लगे—मातः वसुन्धरे! तुमने अपने दुःख की गर्म साँस तक क्या मेरे सामने से लज्जा के कारण अब तक छिपा रक्खी थी, पाखण्डी जानकर उसे जानने नहीं दिया? संसार में अपना कहने लायक़ मेरा कोई नहीं है। सिवा अपने दुःख के, कभी किसी के दुःख का भाग मैंने नहीं पाया—क्या वह भी मेरा ही दोष है? आज हूँ, अगर कल न रहूँ तो दुनिया में किसी को उससे हानि-लाभ नहीं है, क्या यह बात तुमने कभी सोची है, माँ?

यह शिकायत उन्होंने किससे की, माँ कहकर उन्होंने किसको पुकारा, शायद वे स्वयं ही उसका निश्चय नहीं कर सके; तो भी गिरि-गात्र-स्खलित उपलखण्ड जैसे झरने के रास्ते अपने ही भार से अपने आप लुढ़कते चले जाते हैं, उसी प्रकार उनकी सद्य-उत्सारित आकस्मिक वेदना की अनुभूति आँसुओं की धारा के रास्ते वाक्यों की माला गूँथती हुई लगातार बहने लगी। मैदान के पानी के निकास के लिए किसानों

ने एक बार इसी रास्ते पर से एक नाला काट दिया था। नन्दीजी की सम्मति पाने लायक़ प्रचुर दक्षिणा जब वे लोग किसी हालत में इकट्ठी नहीं कर सके तब, केवल सर्वनाश से अपना बचाव करने के लिए, उन लोगों ने लाचारी से यह काम किया था; परन्तु दरिद्रों की इतनी असह्य स्पर्द्धा की बात हुजूर को विदित कराते ही उन्होंने उसी वक़्त उसे बन्द करवा दिया था। निरुपाय ग़रीबों के आँसुओं पर ज़रा भी ख़याल नहीं किया था। वह जगह तब तक ऊबड़-खाबड़ ही थी। दरिद्रों के पीड़न का यह उत्कट चिह्न इसी राह में जाते समय कितनी ही बार ज़मींदार की नज़र में पड़ा है, परन्तु आज इसे देखते ही आँखें भर आईं। वे मन ही मन कहने लगे कि अहो! इन ग़रीब किसानों की न मालूम कितनी हानि हुई है, कितने ही छोटे-छोटे बच्चों को शायद पेट भर दोनों वक़्त अन्न नहीं मिलेगा। मनुष्य क्यों ऐसा काम करता है? उस स्थान को अँधेरे में ही थोड़ी देर तक देख-भालकर उन्होंने मन ही मन कहा—'हाथ में रुपया रहता तो कल ही मिस्त्री लगाकर इसे बँधवा देता, हर साल इसकी बदौलत किसानों को फिर दुःख भोगना नहीं पड़ता। अच्छा, कितने रुपये लग सकते हैं?' रास्ते से वे खेत में उतर गये और मन लगाकर उस स्थान की जाँच करने लगे। इस सम्बन्ध में कुछ भी अभिज्ञता उन्हें न थी; उन्हें कुछ भी ज्ञात न था कि कितनी ईंटें, कितना चूना-बालू, कितनी लकड़ी और क्या-क्या चाहिए; परन्तु यह धुन उन

पर सवार हो बैठो। वहीं अँधेरे में अकेले भूत की तरह खड़े होकर मन में यही हिसाब करने लगे कि इतना व्यय करना उनकी सामर्थ्य के बाहर है या नहीं। मार्ग के उधर से कोई दौड़कर भाग गया, शायद कुत्ता या गीदड़ हो, परन्तु उसी से उनके विचारों की धारा टूट गई। दूसरे के दुःख की उपलब्धि अभ्यास-विरुद्ध होने के कारण अपनी इस प्रकार की चिन्ता को मन की दुर्बलता समझकर उन्हें बड़ी हँसी आई। झट रास्ते पर चढ़कर उन्होंने मन में कहा—'वाह, मुझे क्या हो गया है? कोई देख लेगा तो क्या सोचेगा?' जीवानन्द आज बिना ही शराब पिये निकले थे, आज मन की इस दुर्बलता का कारण समझने में उन्हें विलम्ब नहीं लगा। थके-मांदे हृदय के भीतर क्यों आज बार-बार रुलाई का सुर गूँज रहा है वह भी वे समझ गये। और भी एक विषय में उन्हें आज प्रथम अपने ऊपर संशय हुआ कि मुद्दत का अभ्यास आज उनके स्वभाव में परिणत हो गया है। अपने को अपना कहने के दावा करने का अधिकार भी हमेशा के लिए हाथ से निकल गया है। ठीक याद नहीं आई कि किसलिए वे घर से निकले थे। मन के आवेग से जब घर से बाहर आये थे तब शायद कुछ स्थिर सङ्कल्प नहीं था, शायद अस्पष्ट रूप से बहुत सी बातें ही थीं जो अब लिप-पुतकर एकाकार हो गईं। घर से इस तरफ़ आने का कोई उद्देश्य ही याद नहीं पड़ा। परन्तु घर लौटने की भी इच्छा नहीं हुई। थोड़ी दूर आगे बढ़कर, रास्ता

छोड़, जो पगडण्डी खेतों में से होती हुई सीधे चण्डीगढ़ गाँव की ओर गई है, उसी से चलने लगे। यह रास्ता कुछ लम्बा और ऊँचा-नीचा था। पग-पग पर रुकावट होने लगी; परन्तु ठोकर खा-खाकर राह चलते-चलते उनके विक्षिप्त चित्त के भीतर न मालूम फिर कब ईंट-चूने-लकड़ी की चिन्ता की धारा बहने लगी, उन्हें पता भी न लगा। बात कुछ भी नहीं, एक छोटा सा पुल है। बीजगांव के ज़मींदार के लिए यह तुच्छ बात है। उसके बनाने में न शिल्प है और न सौन्दर्य; तो भी यही शिल्पसौन्दर्यहीन पदार्थ ग़रीबों के सुख-दुःख के साथ मिलकर उनके मन के भीतर आज एक नये रस में भरकर अपूर्व रूप से प्रतीयमान होने लगा। उसे तोड़कर तरह-तरह से गढ़ने पर भी वह ख़तम होना नहीं चाहता था। परन्तु यह सब अपने उदास मन के अस्थायी ख़याल हैं, वास्तव में सत्य नहीं है, कल दिन में इसका चिह्न भी न रहेगा, यह भी वे भूल नहीं गये। उत्सव के अन्दर छिपे हुए शोक की तरह उनके मन में यह बात गड़ने लगी। परन्तु आज रात के लिए इस लड़कपन को वे किसी तरह छोड़ न सके। कल्पना के ऊपर कल्पना का ताँता बँध गया। एकाएक काले आकाश-पट में चण्डी-मन्दिर का शिखर दिखाई पड़ा। उन्हें होश नहीं था कि इतनी दूर आ गये हैं, और भी समीप आकर देखा कि मन्दिर का फाटक अभी तक खुला हुआ है। वे चुपचाप भीतर घुस गये। बहुत देर हुई, देवी की आरती समाप्त हो चुकी है।

मन्दिर का द्वार बन्द है। आँगन में अँधेरा फैला हुआ है। दालान में एक दिया टिमटिमा रहा है। जीवानन्द ने सामने जाकर देखा कि चार-पाँच आदमी मच्छड़ों के डर से नख से सिख तक चद्दर ओढ़े सो रहे हैं। केवल एक आदमी खम्भे की आड़ में चुपचाप बैठा माला जप रहा है। जीवानन्द ने और भी ज़रा सामने जाकर उस आदमी को देखने की चेष्टा करते हुए पूछा—तुम कौन हो ?

उस आदमी ने जीवानन्द की सफ़ेद पोशाक का अँधेरे में भी अनुभव कर उन्हें भला आदमी समझ लिया और कहा—मैं यात्री हूँ बाबू जी।

"यात्री ! कहाँ जाओगे ?"

"मैं पुरीधाम को जाऊँगा।"

"कहाँ से आ रहे हो ? ये लोग शायद तुम्हारे साथी हैं।" कहकर जीवानन्द ने सोये हुए उन आदमियों की ओर इशारा किया।

उस आदमी ने सिर हिलाकर कहा—जी नहीं। मैं अकेला ही मानभूमि ज़िले से आ रहा हूँ। इनमें किसी का घर है मेदिनीपुर और किसी का और कहीं। मैं नहीं जानता कि ये कहाँ जायँगे। दो आदमी तो आज ही दोपहर को आये हैं।

जीवानन्द ने पूछा—अच्छा, यहाँ रोज़ कितने आदमी आते हैं ? जो लोग रहते हैं उन्हें यहाँ दोनों वक्त भोजन मिलता है न ?

वह आदमी ज़रा घबराया। उसने लज्जित भाव से कहा—केवल खाने के लिए ही सब लोग यहाँ नहीं रहते बाबूजी। पैदल चलने का मुझे अभ्यास नहीं था, इसलिए अधिक चलने के कारण पैरों में फटकर घाव सा हो गया है। भैरवी माँजी ने अपनी आँखों देखकर हुक्म दिया कि जितने दिनों तक आराम न हो, यहीं रहो।

जीवानन्द ने कहा—अच्छी बात है, रहो न। जगह की तो कमी नहीं है।

"परन्तु सुना है कि भैरवी माँजी तो नहीं हैं।"

जीवानन्द ने हँसकर कहा—"इतनी जल्दी सुन लिया? अच्छा वे नहीं हैं तो न सही, उनका हुक्म तो है। तुम्हें यहाँ से कौन हटा सकता है? जब तक तुम्हारे पैर अच्छे न हो जायँ तब तक तुम यहीं रहो।" अब जीवानन्द उसके पास आकर बैठ गये। उस आदमी ने पहले ज़रा डर और सङ्कोच का अनुभव किया, परन्तु उसका वह भाव नहीं रहा। देखते-देखते अँधेरे में, इस सुनसान देवायतन के एक प्रान्त में, एक दुर्दान्त ज़मींदार और एक दीन गृह-हीन भिखारी के सुख-दुःख की आलोचना अत्यन्त घनिष्ठ हो उठी। उस आदमी का नाम है उमाचरण, जाति का कैवर्त है, घर पहले मानभूमि ज़िले के वंशतट गाँव में था। गाँव में अन्न नहीं है, पानी नहीं है, वैद्य भी नहीं है—यह जिनकी ज़मींदारी में रहता है, वे पश्चिम के किसी बड़े शहर में वकालत करते हैं।

राजा-प्रजा में प्रीति नहीं है, सम्बन्ध नहीं है, है केवल ग़रीब प्रजा के ख़ून चूसने का वंशपरम्परागत अधिकार। इसी फाल्गुन के आख़िर में हैज़े से इस (यात्री) की स्त्री मर गई है, दोनों योग्य पुत्र आँख के सामने बिना इलाज के एक-एक करके चल बसे हैं। वह कुछ प्रतीकार नहीं कर सका। अन्त में अपनी टूटी-फूटी झोपड़ी एक विधवा भतीजी को सौंपकर जीवन भर के लिए घर छोड़ निकल आया है। इस जन्म में अब घर लौटने की आशा नहीं है, इच्छा भी नहीं—यह कहकर वह फूट-फूटकर रोने लगा। जीवानन्द की आँखों से भी आँसू टपकने लगे। दूसरे का रोना उनके सामने नई चीज़ नहीं है; इस जीवन में वैसा उन्होंने बहुत देखा है, परन्तु कभी मन में ज़रा सा दाग़ भी नहीं पड़ने पाया। आज सिवा उनके और किसी को मालूम भी नहीं हुआ; परन्तु अँधेरे में कमीज़ की आस्तीन से आँखें पोंछते हुए उनको इच्छा होने लगी कि उनकी जो स्त्री मरी नहीं है, जिस पुत्र का अभी तक जन्म नहीं हुआ है, जिस घर को उन्हें छोड़कर नहीं आना पड़ा है—उन्हीं के लिए कहीं भागकर, इस अपरिचित मनुष्य की तरह, गला फाड़कर थोड़ा देर रो लें।

कुछ देर बाद अपने को ज़रा सँभालकर उसने कहा—बाबूजी, मेरे ऐसा दुःखी संसार में कोई नहीं है।

जीवानन्द ने कहा—नहीं भइया, संसार बहुत बड़ी जगह है। कहा नहीं जा सकता कि इसमें कहाँ कौन किस दशा में है।

इसका मतलब ठीक-ठीक समझने लायक़ शिक्षा या शक्ति इस मामूली आदमी को नहीं थी। जीवानन्द ने स्वयं भी उसे प्रकट नहीं किया, परन्तु वे रुक भी नहीं सके। अपने आँसुओं से भीगे कण्ठस्वर की अपूर्वता ने उनके कानों में ऐसे अमृत की वर्षा की कि वे लोभ को नहीं सँभाल सके। कहने लगे—दुखियों की अलग जाति नहीं है भइया, दुःख का भी कोई नियमित रास्ता नहीं है। ऐसा होता तो सभी लोग उसे टाल सकते। जब वह एकाएक सिर पर आ पड़ता है तभी लोगों को उसका पता लगता है। परन्तु किस रास्ते से उसकी आवा-जाई रहती है उसका आज तक किसी को पता नहीं चला। मेरी सब बातें तुम नहीं समझोगे भइया, परन्तु संसार में तुम्हीं अकेले दुःखी नहीं हो, कम से कम एक साथी तुम्हारे बहुत ही नज़दीक है, उसे तुम पहचान नहीं सके।

वह आदमी चुपचाप बैठा रहा। बात भी नहीं समझा, नज़दीक कौन है, उसे भी नहीं पहचाना। जीवानन्द ने खड़े होकर कहा—तुम माँ का नाम जप रहे थे भइया, मैं बाधक हुआ। फिर जप करो, मैं चलता हूँ। कल शायद इसी वक्त़ फिर भेंट हो।

उस आदमी ने कहा—अब भेंट नहीं होगी बाबूजी। मैं यहाँ पाँच दिन से हूँ। कल सवेरे मुझे चला जाना पड़ेगा।

"चला जाना पड़ेगा? परन्तु अभी तो तुमने कहा था कि पैर अच्छे नहीं हुए, तुम चल नहीं सकते?"

उसने कहा—देवी का मन्दिर अब राजा बाबू का है। हुज़ूर का हुक्म है कि तीन दिन से अधिक किसी को रहने नहीं दिया जायगा।

जीवानन्द ने हँसकर कहा—"भैरवी अभी तक गई नहीं है, इतने में ही हुज़ूर का हुक्म जारी हो गया? चण्डी माता का भाग्य अच्छा है!" अब अचानक एक बात याद आते ही उन्होंने आग्रह के साथ पूछा—अच्छा, आज अतिथियों को भोजन कैसा मिला? तुमने क्या खाया भइया?

उसने कहा—जो लोग तीन दिन से नहीं आये हैं उन सभी ने माता का प्रसाद पाया है।

"और तुमने? तुम्हें तो तीन दिन से अधिक हो गये हैं।"

उमाचरण बहुत भला आदमी था। एकाएक किसी की निन्दा करने की उसको आदत नहीं थी। उसने कहा—पण्डितजी को क्या इख़्तियार है। राजा बाबू का हुक्म जो नहीं है।

"होगा।" कहकर जीवानन्द एक लम्बी साँस छोड़कर चुप हो गये। सम्भव है, अनाहूत यात्रियों के सम्बन्ध में पहले से यही नियम चला आ रहा हो, परन्तु षोड़शी इसे मानती नहीं थी। अब तारादास और एककौड़ी नन्दी मिलकर ज़मींदार के नाम से इस नियम को अक्षरशः प्रवर्तित करने की चेष्टा कर रहे हैं। यदि ऐसा ही है तो शिकायत करने का कोई हेतु नहीं है, परन्तु उनका अन्तःकरण इसे मानना नहीं चाहता था। भीतर ही भीतर वे बार-बार यही

कहने लगे कि ऐसा हो ही नहीं सकता! ऐसा हो ही नहीं सकता! भूखे को अन्न न देने का कोई नियम नहीं हो सकता! यहाँ जो भूखा अतिथि बिना खाये बैठा रह गया, इसकी भूख को किस क़ानून से बाँध रक्खोगे? कहा—भइया, मैं कल फिर आऊँगा, परन्तु गुपचुप चले मत जाना।

"परन्तु पण्डितजी अगर कुछ कहें तो?"

जीवानन्द ने कहा—"अगर कहें तो सुन लेना। इतना दुःख सह सके और ब्राह्मण की एक बात नहीं सुन सकोगे?" धीरे-धीरे वे बाहर जा रहे थे कि एकाएक मन्दिर के बरामदे में, खम्भे की आड़ में, आदमी के गले की दबी आवाज़ सुनकर अकचकाये। पहले समझा कि सुनसान मन्दिर में कोई देवी की आराधना करने आया होगा; परन्तु बात उनके कानों में पहुँची। एक आदमी ने कहा—हमारी माँ का सर्वनाश जिसने किया है, उसका सर्वनाश किये बिना हम किसी हालत में नहीं रहेंगे।

दूसरे ने कहा—चण्डी की चौखट छूकर मैं सौगन्ध खाता हूँ चाचा, फाँसी चढ़ना पड़े सो भी मंज़ूर।

पहले ने कहा—हूँ, हम लोगों को जाना होगा जेल, हम लोगों को होगी फाँसी! माँजी चली जाना चाहती हैं, पहले उन्हें जाने दो—

अँधेरे में न तो आदमी ही पहचाना गया और न गला ही, तो भी ऐसा मालूम हुआ कि इनमें से एक का गम्भीर

कण्ठस्वर उन्होंने कहीं सुना है, एकदम अनजान नहीं है। कोशिश करते तो शायद याद भी कर सकते, परन्तु आज उनका मन ही उस तरफ़ नहीं गया। उन्होंने तो बहुतों का सर्व-नाश किया है, अतः वे स्वयं भी तो इसके लक्ष्य हो सकते हैं। परन्तु आज इसका निर्णय करने की इच्छा ही नहीं हुई। मन में हँसकर कहा—वास्तव में देवताओं की तरह सहृदय श्रोता दूसरा नहीं है। अगर झूठा घमण्ड भी हो तो भी उसकी क़ीमत है। दुर्बल का अहङ्कार व्यर्थ होने पर भी उसमें तनिक गौरव का स्वाद मिलता है।

सुनसान सन्नाटे में जब वे चुपचाप बाहर निकल आये तब दोपहर रात बीत गई थी। निर्म्मल नीला आकाश ताराओं से भरा हुआ था। उन ताराओं से छिटककर गुप्त प्रकाश के आभास ने अँधेरे रास्ते की मिट्टी को धुमला कर रक्खा था। बीच-बीच में इधर-उधर के मिट्टी के ढेर, थके-माँदे राहगीर की तरह, न मालूम कितने युगों से चुपकी साधे बैठे हुए हैं, उनका इतिहास नहीं है। उन्हीं में से एक के पास जाकर वे धूल के ऊपर बैठ गये। सामने ही पेड़ों की आड़ में षोड़शी की झोंपड़ी स्पष्ट न सूझने पर भी मालूम हुआ कि बहुत से आदमी क़तार लगाकर बाहर आ रहे हैं, और थोड़ी ही दूर के रास्ते से जब वे लोग चले गये तब उनकी बातचीत से जीवानन्द ने यही समाचार संग्रह किया कि षोड़शी के लिए बैलगाड़ी आ गई है, और कल सवेरे ही वह चण्डीगढ़

से चली जायगी। भक्त प्रजा का दल उसके पैरों की धूल लेकर घर लौट रहा है। षोड़शी को रोकने का रास्ता नहीं है, मना करने से वह मानेगी नहीं—इन थोड़े से दिनों के परिचय से इतना उसे उन्होंने समझ लिया है—परन्तु उनका मन बहुत व्यथित हुआ। जानकर और अज्ञान में इसके ऊपर अब तक जितने अत्याचार उन्होंने किये हैं, इतने दिनों के बाद एक-एक करके उनका हिसाब करना कठिन है, परन्तु आज उनकी आँखों के ऊपर उन अनगिनत अत्याचारों का ढेर लग गया। उसे हटा रखने का स्थान संसार में उन्हें कहीं नहीं सूझा। जिसे पत्नी स्वीकार करने में उनको लज्जा मालूम हुई थी उसी को गणिका रूप से पाने की शैतानी उन्हें कहाँ से सूझी, यह उनकी समझ में नहीं आया। आज उनका सारा हृदय उसके लिए तरस रहा है, यह उनके स्वत्व का दावा है; परन्तु इसी की बराबर उपेक्षा करके, इसका अपमान कर, और मिथ्या के ऊपर मिथ्या लादकर उन्होंने जो दीवाल खड़ी कर ली है, उसे लाँघने का रास्ता आज उन्हें कहाँ है?

अचानक सामने देखा कि कोई तेज़ी से जा रहा है। अँधेरे में भी उसे पहचानने में उन्हें विलम्ब नहीं लगा। पुकारा—अलका?

षोड़शी चौंककर खड़ी हो गई। आवाज़ से ही वह जान गई कि ये जीवानन्द हैं। ज़रा पास आकर रूखे स्वर से उसने पूछा—आप यहाँ क्यों बैठे हैं?

जीवानन्द ने खड़े होकर कहा—मालूम नहीं, यों ही बैठा था। तुम जाने के पहले मन्दिर में प्रणाम करने जा रही हो न ? चलो, मैं तुम्हारे साथ चलता हूँ।

आज एक ही दिन के अन्दर कण्ठ-स्वर में कैसा अद्भुत परिवर्तन हो गया है ! षोड़शी विस्मय से चुप हो रही। थोड़ी देर के बाद बोली—मेरे साथ चलने में विपत्ति है, यह तो आप जानते ही हैं ?

जीवानन्द ने कहा—जानता हूँ। परन्तु मेरी ओर से बिलकुल नहीं है। आज मैं अकेला और निरस्त्र हूँ। एक छड़ी तक साथ नहीं है।

षोड़शी ने कहा—सुना है। प्रफुल्ल बाबू आपको ढूँढ़ने आये थे। उन्हीं से ख़बर मिली कि आज आप अकेले ही बिलकुल ख़ाली हाथ घर से आये हैं और—

"और जोश के मारे बिना ही शराब पिये बाहर चला आया हूँ। क्यों ?"

षोड़शी ने कहा—हाँ। परन्तु चण्डीगढ़ में यह काम आप आइन्दा न करें।

जीवानन्द ने कहा—यह काम मैं प्रतिदिन करूँगा और जब तक जिऊँगा, करूँगा। प्रफुल्ल ने तुमसे इतनी बातें कही हैं परन्तु यह बात नहीं कही कि 'इस जीवन में और चाहे जो मैं मान लूँ किन्तु यह बात कभी न मानूँगा कि संसार में मेरा कोई शत्रु है।'

षोड़शी स्तब्ध होकर खड़ी रही। जीवानन्द की इस बात पर भी तर्क नहीं किया और इसके स्थायित्व पर भी प्रश्न नहीं किया। जीवानन्द का चेहरा अँधेरे में उसे दिखाई नहीं पड़ा, परन्तु उनका वह अनोखा कण्ठस्वर गहरी रात के इस सुनसान मैदान में उसके कानों के भीतर अपूर्व सुर में गूँजने लगा। थोड़ी देर में उसने पूछा—मेरे साथ मन्दिर में जाकर आप क्या करेंगे ?

जीवानन्द ने कहा—कुछ भी नहीं। जब तक तुम रहोगी, साथ में रहूँगा। उसके बाद जाते समय तुम्हें गाड़ी पर सवार कराकर मैं घर चला जाऊँगा।

षोड़शी को एकाएक कोई जवाब नहीं सूझा। जीवानन्द ने कहा—जाने के दिन आज तुम मेरे ऊपर अविश्वास न करना अलका ! मेरे जीवन का मूल्य तो तुम्हें मालूम ही है, फिर शायद भेंट भी न हो। मुझ पर तुमने जितने प्रकार से कृपा की है, उसे अपने अन्तिम दिन तक मैं याद करता रहूँगा।

"आइए" कहकर षोड़शी चल पड़ी। दो मिनिट चुपचाप चलने के बाद जीवानन्द ने कहा—लोग कहते हैं कि वह कृपा के योग्य नहीं है। अच्छा अलका, कृपा के योग्य या अयोग्य के विचार करने की क्या आवश्यकता है ? कृपा जो करते हैं वे तो अपनी ही ग़रज़ से करते हैं; नहीं तो कृपा पाने की योग्यता मुझमें थी—इतने बड़े दोष का आरोप, मेरी जानी दुश्मन तो दूर रहा, तुम भी नहीं कर सकोगी।

षोड़शी ने मृदु स्वर से कहा—मुझसे बड़ा दुश्मन क्या संसार में आपका और कोई नहीं है ?

जीवानन्द ने कहा—नहीं।

मन्दिर में घुसने के बाद जीवानन्द एकाएक बोल उठे—"तमाशा तो देखो अलका, संसार में जिसको अपनी रोटी का ठिकाना नहीं, वही दूसरे की रोज़ी का सबसे बड़ा बाधक है।" षोड़शी के इसका मतलब पूछने के ढङ्ग से पीछे मुड़कर देखते ही उन्होंने कहा—"मैं इतनी देर तक इस मन्दिर में ही बैठा था। भैरवी नहीं है, अब ज़मींदार मालिक हैं। इसलिए हुज़ूर का नाम लेकर इतने में ही तीन दिन रहने का क़ानून जारी कर दिया गया है। तुम्हारा वही लँगड़ा अतिथि, जिसे तुमने पैर अच्छे न होने तक रहने की इजाज़त दी थी, उसी के मुँह से सुना कि हुज़ूर के सख़्त हुक्म से आज उसको भोजन नहीं दिया गया। बेचारा भूखा-प्यासा देवी का नाम जप रहा था। हुज़ूर का भला हो, कल सवेरे ही यहाँ से चले जाने का भी हुक्म हुआ है; पैर उसके रहें या जायँ।

षोड़शी बोली—मेरे पिताजी ने ही शायद हुक्म दे दिया हो।

जीवानन्द ने कहा—एक तुम्हारे पिताजी ही नहीं, बल्कि दीन-दरिद्रों के ऊपर कृपा दिखाने के लिए इस गाँव में बहुत से पिताजी मौजूद हैं। और हुज़ूर के सुयश से तो ज़मीन-आसमान एक हो गया। इसी लिए उस आदमी के पास बैठकर

मैं सोच रहा था अलका कि तुम्हारे जाने के बाद संन्यासिनी के आसन पर बैठकर यह पिताओं का दल जो ताण्डव काण्ड करने लग जायगा उसे मैं सँभालूँगा किस तरह !

षोड़शी चुप हो रही। जीवानन्द स्वयं देर तक चुपचाप मन ही मन कितनी ही बातें सोच रहे थे। फिर एकाएक बोल उठे—मुझे तुम्हारी बड़ी ज़रूरत है अलका। क्या तुम दो दिन भी नहीं ठहर सकतीं ?

षोड़शी ने धीरे से केवल "नहीं" कहा। उसके पश्चात् उठकर वह जब रुद्ध मन्दिर के द्वार पर बहुत देर तक प्रणाम करके लौटी तब जीवानन्द ने कहा—अच्छा एक दिन ही सही।

षोड़शी बोली—नहीं।

"तो मेरा सारा अपराध आज यहाँ खड़ी होकर माफ़ कर जाओ।"

"परन्तु क्या उससे आपका बहुत ज़्यादा प्रयोजन है ?"

जीवानन्द ने क्षण भर सोचकर कहा—इसका उत्तर देने की सामर्थ्य आज मुझमें नहीं है। अब यही बात मेरे मन में समाई हुई है कि कैसे तुमको एक दिन के लिए भी रोक सकूँ। ओफ़ ! जिसका मन दूसरे के हाथ में चला जाता है उससे बढ़कर अभागा संसार में शायद और कोई नहीं है। मुझे सबसे ज़्यादा दुःख इस बात का है कि लोग समझेंगे कि मैंने ही तुम्हें सज़ा दी है और तुमने उसे चुपचाप सह लिया।

तुम सब छोड़-छाड़कर चल दीं। जाने के पहले तुम अपनी देवी से कह जाओ कि इससे बढ़कर मिथ्या और कुछ नहीं है।

षोड़शी कुछ उत्तर न देकर ज्योंही चुपचाप बाहर निकलने लगी त्योंही जीवानन्द ने एकाएक उसके आगे दोनों हाथ फैलाकर कहा—अपने देवता के सामने खड़ी होकर आज यही बात मुझसे कह दो कि किस उपाय से तुम्हें और एक दिन अपने पास रख सकता हूँ। उसके बाद तुम—

षोड़शी पीछे हटकर बोली—चौधरी साहब, क्या आपके यहाँ दरवान सिपाही कोई नहीं है जो आप इतनी बिनती दिखाते हैं? आप तो जानते ही हैं, मैं किसी से शिकायत नहीं करूँगी।

जीवानन्द रास्ते से हटकर खड़े हो गये। उन्होंने न तो क्रोध किया, न प्रतिघात, बल्कि धीरे-धीरे विनय से कहा—तुम जाओ। अनहोनी के लोभ से मैं तुम्हें फिर दुःख नहीं पहुँचाऊँगा। प्यादे-सिपाही सभी तो हैं अलका, परन्तु जो अपनी इच्छा से क़ब्ज़े में नहीं आवेगी उसे ज़बर्दस्ती पकड़ रखकर ढोते फिरने की ताक़त अब मुझमें नहीं है।

षोड़शी ने रास्ता खुला पाकर भी पैर नहीं बढ़ाया। कहा—मैं जहाँ जाती हूँ उसे सुनने का आग्रह भी शायद आपको नहीं है?

जीवानन्द ने कहा—"आग्रह? उसकी तो हद ही नहीं है, परन्तु उसमें अब जलन भी नहीं है अलका। मैं अब

यही चाहता हूँ कि वहाँ तुम्हें कोई न सतावे! तुम्हारे ऊपर जो लोग नाराज़ हैं वे तुम्हें बिलकुल भूल जायँ।" अचानक उनका गला रुक गया। परन्तु अपनी कमज़ोरी को उन्होंने बढ़ने नहीं दिया। पल भर में अपने को सँभालकर कहा—मैं जानता हूँ कि जो अपनी इच्छा से सब छोड़ जाता है उसके साथ लड़ाई नहीं की जा सकती। जिस दिन तुमने अपनी चाबी हमको सौंप दी, उसी दिन हम सबको एक ही साथ तुम्हारे सामने हार माननी पड़ी। यद्यपि तुम्हारे बल की आज सीमा नहीं है तो भी मनुष्य का मन नहीं मानता। जितने दिन जिऊँगा, यह शङ्का मेरी कभी नहीं मिटेगी।

षोड़शी ने वहीं माथा टेककर प्रणाम किया और जीवानन्द के पैरों की धूल माथे में लगाकर कहा—आपसे मेरा यही अनुरोध है—

"क्या अनुरोध है अलका?"

षोड़शी क्षण भर चुप रहकर बोली—उसे आप जानते हैं।

जीवानन्द ने ज़रा सोचकर कहा—शायद जानता हूँ, या शायद सोचने से जान लूँगा, परन्तु एक दिन जो तुमने सावधानी से रहने के लिए कहा था—शायद वह मुझसे हो नहीं सकेगा। आज ही थोड़ी देर पहले इस मन्दिर के अँधेरे में खड़े होकर दो आदमी, देवता की चौखट छू करके, प्राणों की बाज़ी लगाकर सौगन्ध खा गये हैं कि उनकी माता का जिसने सर्वनाश किया, उसका सत्यानाश किये बिना वे

विश्राम नहीं करेंगे। ओट में खड़े होकर मैंने अपने ही कान से सब सुना है। दो दिन पहले सुनता तो शायद समझता कि उसका लक्ष्य मैं ही हूँ। फ़िक्र की सीमा न रहती, परन्तु आज मन में ज़रा भी खटका नहीं—क्या है अलका?

"नहीं, कुछ नहीं।" कहकर षोड़शी फिर सीधी खड़ी हो गई। अँधेरे में जीवानन्द को दिखाई नहीं पड़ा, एकाएक षोड़शी का मुँह पीला पड़ गया। उसने कहा—चलिए, मेरे घर चलकर अब थोड़ी देर बैठ लीजिए। मुझे गाड़ी पर सवार कराये बिना आप घर नहीं जाने पावेंगे। आइए।

२५

बैल-गाड़ी के नीचे गाड़ीवान चद्दर ओढ़े सो रहा था। उसने अटकल से षोड़शी के पैरों की आहट समझकर कहा—माजी, शैवालदीघी तो दस-बारह कोस का रास्ता है। ज़रा रात रहते न चलने से पहुँचने में कल दोपहर हो जायगा।

षोड़शी ने कहा—"अच्छा वही होगा।" दो-चार क़दम आगे बढ़कर कहा—शायद आपने सुन लिया है कि मैं कहाँ जाती हूँ?

जीवानन्द ने कहा—हाँ, सुन लिया।

षोड़शी बोली—बहुत दूर नहीं है। आपका आक्रोश शायद इतना रास्ता ढूँढ़ लेगा।

"परन्तु तुम्हारे ऊपर मेरा तो अब कोई आक्रोश नहीं है।"

दरवाज़ा खोलकर षोड़शी घर के भीतर गई, बोली—"मेरा एकमात्र कम्बल गाड़ी में बिछा दिया गया है। आपके बैठने को क्या दूँ? निर्म्मल बाबू होते तो आँचल बिछा देती परन्तु आपको तो वह नहीं फबेगा!" उसने ज़रा मुसकुराकर कोने से एक कुशासन लाकर बिछा दिया और कहा—अगर अपराध न मानें तो—

जीवानन्द चुपचाप बैठ गये।

इतने बड़े परिहास का कुछ जवाब न पाकर षोड़शी मन में विस्मित हुई। दीपक की रोशनी बहुत ही धीमी हो रही थी। षोड़शी ने उसे ज़रा उसकाकर हाथ में उठा लिया और जीवानन्द के मुख के पास लाकर, पल भर स्थिर रह करके, कहा—बताइए तो आप क्या सोच रहे हैं?

"मेरे सोचने का क्या कोई अन्त है?"

"अन्त न सही, आदि तो है, वही बताइए।"

जीवानन्द ने सिर हिलाकर कहा—नहीं, वह भी नहीं है। जिसका अन्त नहीं है उसका आदि भी नहीं।

षोड़शी की ज़बान पर आया कि कह दे—'वे दर्शनशास्त्र के वचन हैं—केवल कथन मात्र है। उससे संसार नहीं चल सकता।' परन्तु जीवानन्द का चेहरा देखकर उसके मुँह से कोई शब्द ही नहीं निकला। वह सचमुच मन में विस्मित होकर सोचने लगी कि केवल एक योग्य उत्तर देने के उद्देश्य से ही आज उसने यह बात नहीं कही है, बल्कि वह इस पर

और अधिक तर्क नहीं करना चाहती। जिसको भली भाँति व्यर्थ समझ लिया है उस पर और तर्क करने का क्या प्रयोजन?

वहाँ थोड़ी देर चुपचाप बैठकर षोड़शी उठ बैठी। दीपक को रखकर उसने हाथ धोये और कहा—मेरा एक अनुरोध मानिएगा?

"क्या?"

"एक दिन आपने इसी घर में मुझसे माँगकर खाया था, आज मेरी प्रार्थना से आपको कुछ खाना पड़ेगा।"

"लाओ। भूख भी लगी है।"

"मुझे मालूम है। हम लोग पुरुषों का मुँह देखते ही समझ जाती हैं।" यह कहकर उसने गीले हाथ से ज़मींदार के सामने के स्थान को पोंछकर पत्तल परोस दी। आज देवी का प्रसाद नहीं था, परन्तु किसानों ने आज उसे बहुत कुछ भेंट में दिया था। उसे लाने के लिए षोड़शी के रसोईघर में चले जाने पर जब जीवानन्द ने अकेले में चारों ओर नजर घुमाई तो उस दिन का दावात-क़लम ताक़ पर दिखाई पड़ा। दो मिनिट सोचकर उन्होंने उसे उतार लिया। जेब से उन्होंने एक चिट्ठी निकाली। उसके सफ़ेद अंश को फाड़कर वे दीपक के सामने चिट्ठी लिखने बैठ गये। पत्र शायद तीन-चार पंक्तियों से ज़्यादा नहीं होगा। उसे ख़तम-कर मोड़ दिया और ऊपर षोड़शी का नाम लिखकर जेब में रख लिया। थोड़ी देर में षोड़शी भोजन-सामग्री ले आई।

एक दोने में महीन धान का चूड़ा, थोड़ा सा दही, चीनी, कुछ फल और लोटे में पानी लाकर उनके सामने रख दिया। ज़रा म्लान हँसी हँसकर कहा—उस दिन धनी का दिया हुआ देवता का प्रसाद था और आज ग़रीबों के घर का चूड़ा-दही और थोड़ी सी चीनी है। क्या यह आपको रुचेगा?

जीवानन्द हाथ-मुँह धोकर खाने बैठ गये। कहा—तुम्हारे देने से रुचि की चिन्ता नहीं है अलका, परन्तु पेट में पचे तो? फिर मेरा वही शूल का दर्द—

बात पूरी होने के पहले षोड़शी ने तुरन्त ही पत्तल खींच ली और घबराकर अपने माथे पर हाथ पटकते हुए कहा—मैं अभागिन भूल गई थी! मैं यह आपको कभी खाने न दूँगी।

अपनी बात से जीवानन्द को लज्जा मालूम हुई। उन्होंने कहा—ज़्यादा न खाऊँ तो शायद हानि न हो।

षोड़शी बोली—शायद? शायद लेकर आप लोगों का चल सकता है, मेरा नहीं।

"परन्तु इस कारण तो तुम्हें दुःख होगा?"

षोड़शी ने आँखें फाड़कर कहा—"दुःख की बात क्या कहते हो? यहाँ से जाते समय तुम्हारे सामने से भोजन छीन लिया, खाने को कुछ भी नहीं दे सकी। अफ़सोस से मैं तो रोते-रोते मरूँगी।" थोड़ी देर चुप रहकर एकाएक अनुनय के स्वर से बोली—दोपहर को झञ्झट के मारे कुछ बना नहीं पाई, शाम को पकाया था। भात, मछली का झोल—

"मछली का भोल कैसे—?"

षोड़शी हँसकर बोली—क्या मैं विधवा हूँ ? मैं तो सब खाती हूँ।

अब जीवानन्द के ओठों में हँसी दिखाई पड़ी। कहा—तो वह सब अपने लिए रखकर मुझे कृपाकर फलाहार क्यों कराने लगीं ?

षोड़शी ने तुरन्त उत्तर दिया—"मुझसे भूल हुई। सौ बार दोष मानती हूँ।" यह कहते हुए वह चूड़ा-दही की पत्तल उठाकर दाल-भात लाने के लिए हँसती हुई चली गई।

षोड़शी के पूछने पर जब जीवानन्द ने कहा था कि उनकी चिन्ता का आदि या अन्त नहीं है तब उन्होंने झूठ नहीं कहा था, कुछ बढ़ाकर भी नहीं कहा था। इस जीवन में अपने जीवन को उन्होंने कभी आलोचना का लक्ष्य ही नहीं समझा था और कभी परिणाम की चिन्ता भी क्षण भर के वर्तमान प्रयोजन को नहीं दबा सकी। इसी से उनके लिए क्षण भर के रूमाल का प्रयोजन भविष्यत् की रेशमी चद्दर के प्रयोजन से बहुत बड़ा है; इसी कारण चद्दर न रहने से उनके बिस्तरे में क़ीमती शाल बिछाया गया था और इसी कारण सिगरेट की धूल झाड़ने की तश्तरी सामने न पाकर, वे सोने की घड़ी पर जलता हुआ सिगरेट रखने में ज़रा भी नहीं हिचकते। उनके लिए भविष्यत् कोई सत्य वस्तु नहीं है। जो अभी तक आया नहीं है, उस अनागत की वे परवा नहीं करते। स्त्री का जो शरीर

आँख से देखा जाता है उसी पर उनकी आसक्ति थी, पर जो स्त्रीत्व दृष्टि के परे है उस पर उनको लोभ ही न था। परन्तु आज भाग्यवश यौवन के अन्त में आकर जिस गहन वन में वे राह भूल गये हैं, उसकी कोई ख़बर ही उन्हें नहीं थी। किसलिए उनका मन अलका के चारों ओर घूम रहा है; तरह-तरह के कृच्छ्र तप करने से जिसका शरीर सूख गया है, जिसका रूप और यौवन कठिन तथा कान्तिहीन हो गया है, उसकी कामना करते-करते सारा संसार ही जब उनको बेमज़े मालूम होने लगा तब इस कारणातीत मोह की कैफ़ियत अपने अन्दर भी उनको ढूँढ़ने से नहीं मिली। इस रमणी से उनका कौन सा अभाव कब पूरा होगा और उससे उनका प्रयोजन ही क्या है, इस अपरिचित विचार का उन्हें कोई किनारा नहीं मिलता।

भोजन करते-करते वे अन्यमनस्क हो गये थे। सामने ही खुले दरवाज़े की ओर पीठ किये षोड़शी बैठी थी। दो-एक मामूली प्रश्नों का जवाब न पाकर षोड़शी बोल उठी—आप क्या सोच रहे हैं? मेरे प्रश्न का जवाब क्यों नहीं देते?

जीवानन्द ने आँख उठाकर पूछा—किसका?

षोड़शी बोली—अब तो आपको चण्डीगढ़ छोड़कर घर जाना चाहिए। आपको यहाँ और तो कोई काम नहीं है।

जीवानन्द शायद अन्यमना रहने के कारण ठीक मतलब नहीं समझ सके; कहा—काम नहीं है?

षोड़शी बोली—कहाँ, मुझे तो कुछ नहीं दिखाई पड़ता। यह गाँव आपका है, इसे निष्पाप करने के लिए आप आये थे। मेरी ऐसी असती को देश से निकालने के बाद आप को यहाँ और क्या काम है, मुझे तो नहीं दिखाई पड़ता।

"परन्तु तुम तो असती नहीं हो।" कहकर जीवानन्द आँखें फाड़कर उसकी ओर एकटक देखते रहे। क्षण भर के लिए दोनों की आँखें मिलीं, उसके पश्चात् षोड़शी ने मुँह फेर लिया। परन्तु इतनी देर में, इतनी बातचीत के भीतर भी, जिस वस्तु पर उसका ध्यान नहीं गया था उसे इस क्षणिक दृष्टि में पहले पहल देखकर वह वास्तव में विस्मित हुई। जीवानन्द की आँखों में उस तीक्ष्ण बुद्धि का आभास नहीं था, ज़बानी बातचीत की तरह उसकी दृष्टि बहुत भोली-भाली, स्पष्ट और स्थूल थी; अपनी तानेज़नी और प्रणय-मान इस आदमी के सामने व्यर्थ हुआ है, यह उसको स्पष्ट प्रतीत हुआ। तनिक चुप रहकर बोली—परन्तु अब तक तो यह बात मेरी अपेक्षा आप ही अधिक जानते थे।

जीवानन्द ने कहा—परन्तु निर्म्मल तुम्हें प्यार करते हैं यह तो सच है।

अपने लज्जा से रँगे हुए मुख को दूसरे की दृष्टि की ओट में रखकर षोड़शी बोली—"तो क्या वह भी मेरा ही दोष है? अगर और कोई अपने कलुषित प्रेम से मेरे जीवन को दुर्भर कर दे तो क्या वह भी मेरा ही अपराध है?" परन्तु

बात कहकर उनका मुँह देखते ही वह पछताती हुई झट बोल उठी—"किन्तु मेरे दोष के लिए तो इन चीज़ों का अपराध नहीं है।" अब वह सामने के बर्तन को दिखाती हुई बोली—खाना बन्द क्यों कर दिया? सभी तो पड़ा है।

"नहीं, खाता तो हूँ।" कहकर जीवानन्द ने फिर खाने में मन लगाया।

गाड़ीवान ने पुकारकर कहा—क्या और भी देर होगी माजी?

"नहीं बेटा, अब ज़्यादा देर नहीं होगी।" स्वर नीचा करके कहा—आपको चण्डीगढ़ से जाना ही पड़ेगा, यह मैं कहे देती हूँ।

जीवानन्द ने कहा—तो बतलाओ, कहाँ जाऊँ?

"अपने मकान पर, बीजगाँव में।"

"बहुत अच्छा, वहीं जाऊँगा।"

"परन्तु कल ही जाना होगा।"

जीवानन्द ने मुँह उठाकर कहा—कल ही? परन्तु काम तो है। मैदान से पानी के निकास के लिए एक पुल बनवाना है। इन लोगों की ज़मीन लौटा देनी है, यह तो तुम्हारा ही हुक्म है। उसके सिवा, मन्दिर का भी अच्छा प्रबन्ध करना है। जो अतिथि यात्री लोग यहाँ आते हैं उन पर अत्याचार न हो—यह सब बिना किये ही तुम चले जाने को कहती हो?

षोड़शी दुविधा में पड़ गई। परन्तु उसने हँसकर पूछा—आपके ये सब अच्छे सङ्कल्प क्या कल सुबह तक बने रहेंगे?

जीवानन्द परिहास में शामिल नहीं हुए, चुप हो रहे।

षोड़शी ने कहा—तो आवश्यक के अतिरिक्त एक दिन भी नहीं ठहरिएगा। मुझसे वादा कीजिए और जितने दिन रहना पड़े, पहले की तरह सावधान रहिएगा। वचन दीजिए।

इस बात का भी उन्होंने उत्तर नहीं दिया। चुपचाप भोजन करने लगे। षोड़शी ने ज़िद नहीं की, परन्तु उत्तर की अपेक्षा इस नीरवता ने जीवानन्द के भीतर का परिवर्तन अधिक स्पष्ट रूप से प्रकट कर दिया।

उनके भोजन कर चुकने पर बाहर आकर षोड़शी ने उनके हाथ धुलाये। उसका एकमात्र अँगौछा गठरी के काम में लगकर गाड़ी के अन्दर पहुँच गया था। अतएव अपना आँचल उसने हाथ में थमाकर सिर्फ़ कहा—यह लीजिए।

जीवानन्द ने हाथ-मुँह पोंछकर एकाएक कहा—परन्तु इसे और किसी को तुमसे दिया नहीं जा सकता था अलका।

षोड़शी ने अपना आँचल खींचकर मुँह झुकाये हुए कहा—भीतर आकर और ज़रा बैठिए। तैयार होकर बाहर निकलने में अब देर नहीं लगेगी। मुझे गाड़ी पर सवार कराकर आपको जाना होगा।

जीवानन्द ने कहा—"यानी तुम्हारे देश-निकाले का काम मैं ही पूरा कर जाऊँ? ख़ैर, मैं वही कर जाऊँगा,

परन्तु तुम्हारा भी एक काम बाक़ी है। अपनी करनी का फल मेरे सिवा और कौन भोगेगा? उसकी शिकायत मैंने अब तक किसी से नहीं की—परन्तु जाते समय तुमसे इतना ही दावा करूँगा कि उससे ज़्यादा दुःख मुझे न भोगना पड़े।" अब उन्होंने घर में आकर पाकेट से वह चिट्ठी निकालकर षोड़शी के हाथ में देते हुए कहा—"दिन भर तुमने कुछ खाया नहीं है, अब थोड़ा सा खा लो। तब तक मैं अँधेरे में ज़रा टहल आऊँ। ठीक समय पर हाज़िर हो जाऊँगा।" उनके बाहर निकलने की चेष्टा करते ही षोड़शी पल भर में दरवाज़ा रोककर खड़ी हो गई। इतनी बातचीत के भीतर भी इस पर-दुःख-विमुख स्वार्थी मनुष्य ने उसके भूखे रहने के तुच्छ विषय को याद रक्खा है, यह सोचकर षोड़शी के मन में काँटा चुभने लगा। हाथ की चिट्ठी की ओर ताककर उसने पूछा—यह तो मुझी को लिखी गई है। क्या आपके सामने ही मैं इसे नहीं पढ़ सकती?

जीवानन्द ने कहा—पढ़ सकती हो, किन्तु ज़रूरत नहीं। इसका जवाब देने की तो आवश्यकता नहीं होगी। मुझे दुःख से बचाने के लिए उससे बहुत अधिक दुःख तुमने अपने ऊपर ले लिया है; नहीं तो शायद इस तरह तुम्हें जाना भी न पड़ता। मेरा अन्तिम अनुरोध इसी में लिखा है। अगर उसे मान सको तो उससे अधिक आनन्द का विषय मेरे लिए और कुछ न होगा।

षोड़शी ने कहा—तो पढ़ लूँ?

जीवानन्द चुपकी साधे खड़े रहे। षोड़शी ने उस कागज़ को हाथ पर खोलकर ज़रा झुकते हुए उन थोड़ी सी पंक्तियों को साँस रोककर पढ़ डाला। अब वह निश्चल खड़ी रही। बाहर उसका नाम लिखा रहने पर भी वास्तव में यह चिट्ठी उसकी नहीं थी। भीतर लिखा था—

"फ़क़ीर साहब,

षोड़शी का असली नाम अलका है। यह मेरी स्त्री है। आपके कुष्ठाश्रम की मैं भलाई चाहता हूँ, लेकिन इससे कोई नीच काम न कराइएगा। जहाँ आश्रम खोला गया है, वह जगह मेरी नहीं है, परन्तु उससे मिला हुआ शैवाल-दीघी गाँव मेरा है। उस गाँव की आमदनी पाँच-छः हज़ार रुपये हैं। मैं आपको जानता हूँ। परन्तु आपकी अनुपस्थिति में कोई निरुपाय समझकर इसका अनादर न करे, इस डर से आश्रम के लिए ही वह गाँव मैं इसे देता हूँ। आप ख़ुद किसी वक़्त क़ानूनदाँ थे, अतएव इस दान की पक्की कार्रवाई कर लेने के लिए जो कुछ ज़रूरत हो, कर लीजिएगा। उसका ख़र्च मैं ही दूँगा। दस्तावेज़ लिखवाकर भेज देने से मैं दस्त-ख़त करके रजिस्ट्री करा दूँगा।

श्रीजीवानन्द चौधरी"

षोड़शी बाहर जाकर झट आँखें पोंछकर लौट आई और बोली—पूरी ख़बर तुम्हें कहाँ मिली? मैं कुष्ठाश्रम की दासी बनकर जा रही हूँ, यह भी तुम्हें कैसे मालूम हुआ?

जीवानन्द ने कहा—कुष्ठाश्रम की बात बहुत लोग ही जानते हैं। रही तुम्हारी ख़बर। सो आज ही देवता के स्थान पर खड़े होकर जो लोग सौगन्ध खा गये और अपने कान से सुनकर भी जिन्हें मैं अँधेरे में पहचान नहीं सका उन्हें तुमने कैसे पहचान लिया?

षोड़शी इसका ठीक जवाब नहीं दे सकी। एकाएक बोल उठी—क्या घर-गृहस्थी में अब तुम्हारा मन नहीं लगता? सब ख़ैरात में गवाँकर क्या तुम संन्यासी होकर चले जाना चाहते हो?

यह प्रश्न दोनों के ही कानों में खटका। जीवानन्द पहले कुछ जवाब नहीं दे सके, परन्तु देखते ही देखते वे उत्तेजित हो उठे। कहा—मैं संन्यासी हूँ? झूठ बात! घर-गृहस्थी का कुछ भी मैं गवाँ नहीं सकूँगा। अब मैं यहाँ जीना चाहता हूँ; आदमियों के बीच आदमी बनकर रहना चाहता हूँ। मकान चाहता हूँ, स्त्री चाहता हूँ, बाल-बच्चे चाहता हूँ—और जिस दिन मृत्यु को नहीं रोक सकूँगा, उस दिन उन्हीं के सामने चला जाना चाहता हूँ। मैंने बहुत कुछ खो दिया है; जितना गँवाया है उसका लेखा सुनने से तुम चौंक उठोगी। किन्तु मैं और नुक़सान नहीं उठाऊँगा।

षोड़शी डरती हुई धीरे-धीरे बोली—परन्तु मैं तो संन्यासिनी हूँ। दुनिया में स्त्रियों की कमी नहीं है। इसमें तुम मुझे क्यों समेटना चाहते हो?

जीवानन्द ने कुछ उत्तर नहीं दिया। दुनिया में स्त्रियों की कमी है या नहीं, यह बात कहने की स्पर्द्धा जिसको हुई है, उसे वे और क्या कहें ?

गाड़ीवान ने आँगन में से आवाज़ दी—पौ फटने में देर नहीं है माजी।

"अच्छा, आती हूँ बेटा।" कहकर षोड़शी ने बचा हुआ तेल दिये में उँडेल दिया और क्षीण दीपशिखा को उज्ज्वल कर वह बाहर निकल आई। घर में ताला लगाने की आवश्यकता नहीं थी। दरवाज़े में साँकल लगाकर गले में आँचल लपेटते हुए उसने जीवानन्द के चरणों में साष्टाङ्ग दण्डवत् की। उनके पैरों की धूल लेकर कहा—मैं अब जाती हूँ।

जीवानन्द ने कहा—खाने की भी फ़ुरसत नहीं मिली।

"नहीं। असामी जानते हैं कि मैं तड़के रवाना हूँगी, उनके आने के पहले ही मुझे चल देना चाहिए।" ज़रा हँसकर बोली—एक-आध दिन न खाने से हम लोग नहीं मरतीं।

साथ-साथ आकर जीवानन्द ने उसे गाड़ी पर चढ़ा दिया। गाड़ी चल पड़ने पर उसके कान के पास मुँह लाकर जीवानन्द ने कहा—अलका, तुम्हारी माँ ने एक दिन तुम्हें मुझको सौंपा था, तो भी मैं तुम्हें न पा सका; परन्तु अगर उस दिन मुझे कोई तुम्हारे हाथ में सौंप देता तो शायद इस अँधेरे में इस प्रकार मुझे छोड़कर तुम न जा सकतीं।

षोड़शी को इसका जवाब नहीं सूझा। केवल उन बातों की एक अव्यक्त व्याकुल ध्वनि उसके कानों में गूँजने लगी। मोड़ पर गाड़ी के घूमने के पहले उसने गर्दन बढ़ाकर देखा कि पिछली रात के घने अँधेरे में ठीक वहीं पर वे वैसे ही स्तब्ध खड़े हुए हैं।

सवेरा होने में ज्यादा देर नहीं थी। जीवानन्द मैदान के रास्ते अपने घर लौटने लगे। थोड़ी देर से कुछ अस्फुट कोलाहल उनके कानों में आ रहा था। कुछ आगे बढ़ते ही सामने के आकाश में उषा की रक्तिम आभा की तरह लाल रोशनी नज़र आई। और, चलने के साथ ही साथ वह शब्द और रोशनी क्रमशः बढ़ने लगी। अन्त में नज़दीक आकर देखा कि बीजगाँव के ज़मींदार-वंश के प्रमोदभवन और उनके नाना के प्यारे शान्तिकुञ्ज के जलकर भस्म होने में अब विलम्ब नहीं है। इसी लिए अनेक मनुष्य व्यर्थ चिल्ला रहे हैं और दौड़-धूप कर रहे हैं।

२६

सवेरा होते ही चण्डीगढ़ के छोटे-बड़े सभी आदमी आकर हाय-हाय करने लगे। शिरोमणिजी आये, राय बाबू आये, तारादास आये और और भी बहुत से सज्जन—'जले हुए शान्तिकुञ्ज का सभी जल गया या दैववश कुछ बच भी गया है और जो जल गया है उसकी क़ीमत अन्दाज़न कितनी

हो सकती है और जो बच गया वह मामूली है या नहीं' आदि ख़बरें विस्तृत रूप से पाने के लिए दौड़ आये। और यह कैसे हुआ और किसने किया ?—यह भी जानने को वे लोग उत्सुक थे। सब लोगों के बीच में एककौड़ी नन्दी बड़ा शोर मचाने लगा। मानो सर्वनाश उसी का हुआ है। उसने सबके सामने चिल्लाकर जता दिया कि यह काम सागर सर्दार का है। उसको और उसके दो-एक शागिर्दों को किसी-किसी ने कल गहरी रात तक बाहर घूमते-फिरते देखा है। थाने में इत्तला भेज दी गई है, पुलीस आती होगी। तमाम भूमिज वंश को अगर इस वारदात से कालेपानी न भेज दूँ तो मेरा नाम एककौड़ी नन्दी ही नहीं, और व्यर्थ ही अब तक मैंने हुजूर के यहाँ ग़ुलामी की है।

क़रीब-क़रीब बुझी हुई आग के उत्ताप से कुछ दूर पर एक बरगद के नीचे सभा बैठी थी। जीवानन्द उपस्थित थे। उनके चेहरे पर सुस्ती और थकावट के सिवा उद्वेग या उत्तेजना कुछ भी नहीं थी। उन्होंने तनिक मुसकुराकर कहा—तो तुम्हें भी उनके साथ जाना पड़ेगा एककौड़ी। ज़मींदार की गुमाश्तागिरी में तुमने जिन लोगों के घर फूँके थे उसकी ख़बर तो मुझे है। आग लगाते उन्हें किसी ने आँख से नहीं देखा, मिथ्या संशय पर यदि पुलीस उन पर अत्याचार करे तो सत्य काम के लिए तुम्हें भी उसका हिस्सा लेना पड़ेगा।

उनका कहना सुनकर सब लोग दंग रह गये। एककौड़ी पहले तो सन्न हो गया, फिर इसे परिहास का स्वरूप देने के उद्देश्य से सूखी हँसी हँसकर बोला—हुजूर माँ-बाप हैं। सात पुश्त से हम हुजूर के गुलाम हैं। हुजूर की आज्ञा से जेल क्यों, फाँसी पर लटकना भी हमारे लिए गौरव की बात है।

जीवानन्द ने चिढ़कर कहा—मेरी राय लिये बिना तुम्हारा पुलीस में इत्तला भेजना ठीक नहीं हुआ। जो जल गया है वह नहीं लौटेगा, परन्तु इसके ऊपर यदि पुलीस के साथ मिलकर तुम कोई नया बखेड़ा खड़ा करो और कुछ ऊपरी आमदनी का ज़रिया निकालो तो नुकसान का पलड़ा बहुत भारी हो जायगा।

बहुत लोग होठ दबाकर हँसने लगे। एककौड़ी कोई जवाब नहीं दे सका। क्रोध के मारे झुँझलाता हुआ मन ही मन केवल उनके वंश के नाश की कामना करने लगा। नदी की तरफ़ के, नौकरों के, कुछ कमरे बच गये थे। वहीं के दुतल्ले के दो-तीन कमरों में फ़िलहाल रहने की इच्छा प्रकट कर जीवानन्द ने आये हुए हितेच्छुओं को बिदा कर दिया; परन्तु केवल तारादास को कल सवेरे एक दफ़े मिलने के लिए हुक्म कर दिया।

तारादास ने कहा—कल रात को षोड़शी चली गई है।

"मुझे मालूम है।"

"कुछ बर्तन नहीं मिल रहे हैं।"

"तो और ख़रीद लेना।"

इस अग्नि-दाह के सम्बन्ध में, बात की बात में, तरह-तरह की ख़बरें फैल गईं। ज़मींदार उस रात को घर में नहीं थे, इसके बारे में चर्चा करना बहुतों को निरर्थक प्रतीत हुआ। परन्तु षोड़शी भैरवी के जाने के साथ इसका कोई ख़ास नाता है और जिन्होंने यह काम किया है उन्हें जान-बूझकर ज़मींदार ने रिहा कर दिया, इस विषय में अनुमान और संशय प्रकट करने की सीमा न रही। राय बाबू होशियार आदमी हैं। एककौड़ी के फंदे में जीवानन्द को न फँसते देखकर इनकी समझदारी पर उनको सौगुनी श्रद्धा बढ़ गई। परन्तु अपने लिए वे बहुत ही उद्विग्न हो पड़े। षोड़शी के भगाने में वे भी एक मुखिया हैं। और जिन लोगों ने ज़मींदार का मकान जला डाला, वे लोग आसपास ही कहीं छिपे हुए हैं, इस बात की याद आते ही बिछौने में उनका शरीर पसीने से तर हो गया। पहरे के लिए चारों ओर आदमियों को तैनात कर देने पर भी वे सारी रात बरामदे में ही टहलते रहे। एक उनका मकान ही थोड़े है। उनके बहुत से अनाज के खत्ते हैं, पयाल के ढेर लगे हैं, अन्न जमा करने का बहुत बड़ा प्रबन्ध है, इन सबकी देख-भाल के लिए हर घड़ी उन्हें सावधान रहना पड़ेगा। डर के साथ दिन बीतने लगे। किसी तरह से दिन बीत रहे थे परन्तु इतने में ऐसी एक घटना

हुई जिससे निकलने की राह ही नहीं रही। अदालत का सम्मन आ पहुँचा, भूमिजों तथा और-और किसानों ने मिलकर ज़मींदार और राय बाबू पर नालिश कर दी। जिस ज़मीन को उन्होंने मिलकर ऊख की खेती और गुड़ का कारखाना खोलने के लिए मन्द्राजी साहब के हाथ बेच दिया था उसे रद करने की दरख़्वास्त है। ख़बर है कि अदालत के प्रस्ताव और इशारे से कलेक्टर साहब स्वयं आकर मौक़ा-तहक़ीक़ात करेंगे। बहुत रुपये का मामला था, इसलिए एककौड़ी के साथ मिलकर बहुत से जाली दस्तावेज़ बनाये गये, एक की सम्पत्ति दूसरे को बय कर देने के लिए जितने प्रकार की तरकीबें हो सकती हैं, सब इस्तेमाल की गईं। यही मन में सोचते हुए वे देर तक स्थिर होकर बैठे रहे। किन्तु इससे भी बड़ी बात यह है कि इन छोटी जाति के गँवार मुर्दार किसानों को इतना साहस कैसे हुआ कि गाँव में रहकर भी इन दुर्दान्त ज़मींदार जीवानन्द चौधरी और जनार्दन राय पर नालिश कर बैठे? जीवन में अधिक दिन ही जिन्हें खाने को नहीं मिलता, जाड़े के दिनों में जो लोग बैठकर रात बिताते हैं, मरी के दिनों में जो लोग कुत्ते-बिल्ली की तरह मर जाते हैं, खेती के समय मुट्ठी भर बीज के लिए जो लोग इसी दरवाज़े पर आकर धरना देते हैं, उन्हें अदालत में जाने को रुपया कहाँ से मिला? ऐसी दुर्बुद्धि उन्हें किसने दी? क्या वह इन्हें यह सीधी सी बात नहीं सुझा सका कि

एक ज़िले की अदालत ही नहीं, हाईकोर्ट नाम की भी एक जगह है जहाँ जीवानन्द और जनार्दन को लाँघकर सागर सर्दार कभी विजयी नहीं हो सकता। अँगरेज़ों की अदालत धनी के लिए है, ग़रीब के लिए नहीं। उनके पास धन है, सामर्थ्य है, बैरिस्टर दामाद है, भरोसा करने लायक़ वकील-मुख़्तार हैं तथा और भी कितनी ही सुविधाएँ हैं—यह सब अपने आपको समझाकर जनार्दन, शक्ति और साहस सञ्चय करने के लिए, चेष्टा करने लगे। परन्तु ज्यादा तसल्ली नहीं हुई; क्योंकि यह तो सिर्फ़ रुपये-पैसे का, जायदाद या ज़मीन के ख़रीदने-बेचने का मामला नहीं है। इन कामों में जो ग़ैर-मामूली कारवाइयाँ की गई हैं उनके फल रूप से फ़ौजदारी की क़ानूनी किताबों में जो कड़ी सज़ा के वाक्य लिखे हुए हैं उनके भयङ्कर चेहरे—ओट में रहकर भी—उन्हें डराने लगे।

इन बातों के प्रकट होने में कुछ बाक़ी नहीं है, राय बाबू अपनी ज़िन्दगी भर की अभिज्ञता से यह जानते थे। इसलिए किसी तरह से दिन बिताकर रात में उन्होंने एककौड़ी को बुला लिया और पूछा कि ज़मींदार की तरफ़ से इसका क्या इन्तज़ाम हो रहा है।

एककौड़ी ने कहा—हुज़ूर के सामने अभी तक इसे पेश ही नहीं किया गया है।

जनार्दन ने झुँझलाकर कहा—किया नहीं है तो करो जाकर। बुढ़ौती में क्या क़ैद काटूँगा?

उनकी आशङ्का और व्याकुलता देखकर एककौड़ी ने हँसकर कहा—डर क्या है राय बाबू, क़ैद काटनी होगी तो मैं ही काटूँगा, आप लोगों को न जाने दूँगा। परन्तु इस ग़रीब पर दृष्टि रखिएगा, भूलिएगा नहीं।

जनार्दन ने ख़ुश होकर कहा—यह तो मैं जानता हूँ एककौड़ी। तुम्हारे रहते डर की बात नहीं है। तुम जितना समझते हो उतना वकील के दादा भी नहीं समझते। परन्तु तुम्हें तो सब कुछ मालूम है। सुना है कि के० साहब ख़ुद ही तहक़ीक़ात करने आ रहे हैं। साला बड़ा पाजी है। परन्तु भीतरी बात कुछ मालूम है? उन्हें सलाह किसने दी और रुपया ही किसने दिया?

एककौड़ी ने बिना सोचे ही षोड़शी का नाम लेकर कहा—रुपया दिया चण्डी माता ने और किसने? इसी से तो षोड़शी झटपट सटक गई।

"लौंडी है कहाँ?"

एककौड़ी ने कहा—आसपास कहीं छिपी होगी। जल्दी ही पता लगा लूँगा।

जनार्दन दम भर चुप रहकर बोले—पता लगाना। बखेड़े से बचूँ, उसके बाद समझ लूँगा।

एककौड़ी नन्दी उस दिन इन्हीं के घर भोजन कर अधिक रात में घर लौटने लगा। उसने जाते समय बनावटी क्रोध दिखाकर कहा—उस दिन सागर सर्दार के विषय में आप

लोग ज़मींदार की ख़ातिर से होंठ दबाकर हँसने लगे थे, परन्तु उस दिन अगर पुलीस में इसकी इत्तला दे रखते तो आज इस आफ़त की नौबत न आती।

जनार्दन ने लज्जित होकर अपनी ग़लती मान ली। एककौड़ी ने मालिक के बारे में एक ख़ास ख़बर सुनाकर कहा—शराब पीकर बल्कि अच्छे थे, अब तो बातचीत करना ही मुश्किल है। शूल का दर्द तो बना ही रहता है। इतने दिनों की आदत कहीं सहज छूटती है। शायद ज़्यादा दिनों तक न बचेंगे।

जनार्दन को विश्वास नहीं हुआ। उन्होंने पूछा—तो क्या सचमुच नहीं पीते हैं?

एककौड़ी ने सिर हिलाकर कहा—सचमुच उन्होंने पीना छोड़ दिया है। सूर्यनारायण का पश्चिम में उदय होना भी सहज है—परन्तु, क्या कहूँ राय बाबू, बड़े ज़िद्दी आदमी हैं। उस रोज़ दिन भर की तकलीफ़ से रात को हाथ-पैर बिलकुल ठण्डे पड़ गये थे। डाक्टर साहब डर गये और बोले—'मेरा कहना मानकर चम्मच भर तो पी लीजिए, नहीं तो हार्ट फ़ेल हो सकता है।' परन्तु बाबूजी को तनिक भी डर नहीं लगा। ज़रा हँसकर कहा—'इतने दिनों में तो वह बेचारा कभी फ़ेल नहीं हुआ, बराबर एक सा चला आ रहा है। आज यदि वह फ़ेल हो जाय तो उसको दोष नहीं दूँगा। परन्तु मैं तो जन्म भर से फ़ेल होता आया हूँ,

कम से कम आज एक रोज़ के लिए भी मुझे पास हो जाने दीजिए।' कोई नहीं पिला सका।

"क्या कहते हो?"

एककौड़ी ने कहा—अब धुन सवार है कि मकान की मरम्मत रोक दो, उस रुपये से मैदान के बीच में एक पुल बनाना है, रूपसी झील के उत्तरी ओर एक बाँध बँधवाना है। इञ्जिनियर साहब आये थे। हिसाब लगाकर उन्होंने कहा—'उस रुपये से ऐसे दस मकानों की मरम्मत हो सकती है। उसका एक हिस्सा इधर ख़र्च करके मकान की मरम्मत कर उसकी रक्षा कीजिए।' परन्तु किसी तरह भी नहीं माने। दीवान साहब बाप की उम्र के हैं। उन्होंने कहा—'ज़मींदारी रेहन हो जायगी तो?' बाबूजी ने कहा—असामी लोग हर साल मालगुज़ारी देते आ रहे हैं और ख़तम हो रहे हैं। उन्हें बचाने के लिए अगर ज़मींदारी रेहन हो जाय तो होने दीजिए। वह छुड़ा ली जायगी।'

राय बाबू ने थोड़ी देर चुप रहकर कहा—पागल तो नहीं हो गये?

इसके दो दिन बाद पता लगाने पर जब जनार्दन को मालूम हुआ कि एककौड़ी ने आज तक उस बात को ज़मींदार के आगे पेश नहीं किया तब वे बहुत घबराये। निकम्मा और डरपोक कहकर उसे मन ही मन धमकाया। रात को अच्छी नींद भी नहीं आई। यदि साहब एकाएक

किसी दिन इत्तिला भेजकर मौके पर आ जायँ तो आफ़त की हद नहीं रहेगी। सब ओर से तैयार न रहें तो क्या होगा, कहा नहीं जा सकता। निश्चय किया कि स्वयं मिलकर सब बातें निवेदन कर देंगे, दूसरे पर भरोसा करने से मरना पड़ेगा।

सुबह उठकर उन्होंने १०८ बार दुर्गा का नाम जप लिया और कागज़ पर श्री श्रीचण्डी माता का नाम लाल स्याही से लिखकर साइत मज़बूत कर ली और छींक, ख़ाली घड़ा आदि अपशकुनों से अपने को बचाकर चार-पाँच तगड़े जवानों को साथ लिये हुए वे ज़मींदार के मकान की ओर रवाना हुए। परन्तु बहुत दूर जाना नहीं पड़ा, इसी बीच पाँच-छ: आदमियों ने भागते हुए आकर जो ख़बर दी वह जैसी अप्रीतिकर है वैसी ही अचिन्तित है। बहुत दिनों की बात नहीं है, बड़ा सड़क के पासवाली क़रीब दस बिस्सा ज़मीन राय बाबू ने घेर ली थी। मनशा यही था कि अपनी दूकान हटाकर वहाँ लायेंगे। यह ज़मीन चण्डी माता की है। इसके बारे में षोड़शी से उनकी तकरार भी हो गई थी। परन्तु ज़बर्दस्त जनार्दन राय को वह रोक नहीं सकी। इसके सम्बन्ध में राय बाबू के पास एक दस्तावेज़ भी था, परन्तु लोग उस पर विश्वास नहीं करते थे। आज सवेरे इसी ज़मीन पर से उन्हें बेदख़ल किया गया है। जनार्दन ने धीरे-धीरे वहाँ पहुँचकर देखा कि प्राय: सभी लोग मौजूद हैं। शिरोमणिजी, तारादास, गगन चक्रवर्ती तथा और भी उनके दल के कई सज्जनों

के सामने जीवानन्द चौधरी ने स्वयं हुक्म देकर घेरा तुड़वा दिया और उसको मन्दिर की ज़मीन के साथ मिला दिया। किसी को प्रतिवाद करने की हिम्मत न हुई।

जनार्दन ने असह्य क्रोध को जी-जान से दबाकर विनय के साथ कहा—यह सब करने के पहले हुज़ूर मुझे ज़रा ख़बर भी दे सकते थे।

जीवानन्द ने हँसकर कहा—उसमें व्यर्थ विलम्ब ही होता। मुझे मालूम था कि ख़बर आपके पास पहुँचेगी ही।

जनार्दन ने कहा—ख़बर पहुँच ही गई, परन्तु एक दिन पहले पहुँचती तो अदालत जाने की नौबत न आती।

जीवानन्द ने वैसे ही मुस्कुराते हुए कहा—इससे भी तो अदालत जाने की नौबत नहीं आनी चाहिए राय बाबू! भैरवियों के ज़माने में देवी की बहुत सी सम्पत्ति बेदख़ल हो गई है, अब फिर उसको क़ब्ज़े में लाना है।

जनार्दन ने रूखी हँसी हँसकर कहा—इससे बढ़कर ख़ुशी की बात और क्या है हूज़ूर। सुना है कि किसी समय सारा चण्डीगढ़ ही देवी की सम्पत्ति में था, अब तो—

जनार्दन के चोखे जवाब का इशारा समझकर सब लोग मन में ख़ुश हुए। शिरोमणिजी तो जनार्दन राय की बुद्धि और वाक्पटुता से उछलने लगे।

जीवानन्द के चेहरे पर कोई परिवर्तन नहीं दिखाई पड़ा। कहा—उसमें भी कसर नहीं रहेगी। चण्डी के तमाम दस्ता-

वेज़, नक़्शे आदि जो कुछ थे सब मैंने कलकत्ते में एटर्नी के पास भेज दिया है। परन्तु आप लोग सहायक रहिएगा।

शिरोमणि जयध्वनि कर उठे। लेकिन बात सत्य हो तो नतीजा क्या निकलेगा, यह सोचकर क्रोध और शङ्का से जनार्दन का मुँह पीला पड़ गया। परन्तु इससे भी बड़ी मुसीबत उनके सिर पर लदी हुई है, यह याद कर आज के लिए उन्होंने अपने को सँभाल लिया। वे धीरे-धीरे घर लौटने लगे। जिस उद्देश्य से वे घर से आये थे वह निष्फल हो गया। रास्ते में चलते-चलते उनके मन में आया कि मेरी शायद सौ दो सौ बीघा ज़मीन निकल जायगी, परन्तु स्वयं वे तो सारा चण्डीगढ़ ही हज़म कर बैठे हैं, उसका क्या होगा? अत: उनकी बात बिलकुल ही फ़िज़ूल है, सिर्फ़ धोखा देने के लिए कही गई है, इसमें कुछ सन्देह नहीं रहा। घर में घुसकर तमाखू के लिए आवाज़ देते हुए वे बैठक में क़दम रखते ही चौंक पड़े। एक तरफ़ एककौड़ी छिपा बैठा है। उसका मुँह सूखा हुआ है और चेहरा उदास है। उसे देखकर जनार्दन ने कहा—क्या जी, तुम एकाएक यहाँ कैसे? तुम्हारे सनकी मालिक ने तो उधर दङ्गा शुरू कर दिया।

एककौड़ी ने कहा—मालूम है और उसी सनकी के पास अभी हमें जाना पड़ेगा।

जनार्दन ने डरकर पूछा—किसलिए?

एककौड़ी ने कहा—छोटे कमीनों को रुपये और सलाह की मदद किसने दी है, अभी तक नहीं मालूम हुआ। परन्तु

यह मालूम हुआ है कि गवाह माने जाने पर हुज़ूर कुछ भी—जाली दस्तावेज़ बनाने की बात भी—नहीं छिपायेंगे।

जनार्दन का चेहरा उतर गया। इस आदमी की जो ज़िद की बात उस दिन उन्होंने सुनी थी वह याद आई। उनके मुँह से निकला—क्या यह अन्त में लङ्कादहन कर बैठेगा।

चिलम की तमाखू जलकर ख़ाक हो रही थी, नहाने का पानी ठण्डा हो रहा था, जनार्दन दौड़कर बाहर निकल पड़े। जीवानन्द उस समय मन्दिर की एक टूटी मेहराब की जाँच कर रहे थे, और तारादास पास खड़े होकर उनके प्रश्न का जवाब दे रहे थे। जनार्दन ने सामने आकर कहा—हुज़ूर, सारी घटना को ज़रा याद कर लें।

जीवानन्द पहले समझ नहीं सके कि कौन सी घटना है। परन्तु राय बाबू की घबराहट और आँगन में एक तरफ़ एक-कौड़ी को देखकर उन्हें कल रात की बात याद पड़ी। उन्होंने कहा—परन्तु उपाय ही क्या है राय बाबू? साहब ज़मीन नहीं छोड़ना चाहते। उन्होंने सस्ते में ख़रीदी है। इसके अलावे उन्हें हानि भी बहुत होगी। अतः मुक़दमे में जीतने के सिवा किसानों को और कोई रास्ता नहीं सूझता।

जनार्दन ने घबराकर कहा—परन्तु हमारे निकलने को रास्ता तो चाहिए।

जीवानन्द ने दम भर सोचकर कहा—ठीक है। हमारा रास्ता भी बहुत दुर्गम मालूम होता है।

उनका शान्त कण्ठस्वर और विकार-रहित मुख देखकर जनार्दन अपने को सँभाल नहीं सके। बेपरवा होकर बोल उठे—हुज़ूर रास्ता दुर्गम ही नहीं है, बल्कि जेल काटनी पड़ेगी। और केवल हम लोग ही न बाँधे जायँगे बल्कि आपको भी छुटकारा न मिलेगा।

जीवानन्द ज़रा हँसे, बोले—तो क्या किया जायगा राय बाबू? शौक़ से जब पेड़ लगाया गया है तब उसका फल भी चखना ही पड़ेगा।

जनार्दन ने जवाब नहीं दिया, वे तेज़ी से बाहर निकल पड़े। एककौड़ी को शायद सब बातें सुनाई नहीं पड़ीं। उसके दौड़कर पास आते ही राय बाबू ने चिल्लाकर कहा—एककौड़ी, यह हमारा सर्वनाश करेगा। मेरे निर्म्मल को तार दे दो, वह एक बार आ तो जाय।

२७

निर्म्मल चण्डीगढ़ से बहुत दुःख पाकर गये थे। जाते समय उनकी यही इच्छा थी कि चण्डीगढ़ के भले-बुरे सब तरह के सम्बन्ध से सदा के लिए अपने को अलग रक्खेंगे। परमात्मा से उन्होंने यही प्रार्थना की थी कि जो बीत गया है वह फिर लौट न आवे; चण्डीगढ़ से कोई सम्बन्ध ही उनके जीवन के साथ न रह जाय। वे सीधे आदमी हैं। विला-सिता और अँगरेज़ी ढँग के भीतर से भी वे संसार के सीधे रास्ते

से ही चलना चाहते थे। हैमवती ही थी उनकी एकमात्र गृहिणी, प्यारी और सन्तान की माता। सौन्दर्य, प्रेम, श्रद्धा और बुद्धि में इससे बढ़कर कोई स्त्री संसार में हो सकती है, यह उनकी समझ में नहीं आता था। परन्तु इतनी प्यारी स्त्री को छोड़कर उनका मन एक समय उद्भ्रान्त होना चाहता था। घर लौट आने तक यही दो बातें उन्हें बहुत खटक रही थीं। पहली बात यह कि इस दुर्बुद्धि का इतिहास हैम से सदा के लिए छिपा रखना पड़ेगा, और दूसरी है षोड़शी का चरित्र। इसके सम्बन्ध में वे ठीक-ठीक कुछ भी न जानते थे, तो भी उनका मन किस कारण उस पर आसक्त हो गया था—यही प्रश्न अपने चित्त से बार-बार करने पर एक ही उत्तर निर्मम निःसंशय रूप से मिलता था कि षोड़शी चरित्रहीना है। किसी असम्भव वस्तु पर उनको कभी लोभ नहीं हुआ और हो भी नहीं सकता। वह पहुँच के बाहर नहीं है, यह समझकर ही उनका मन उस तरह से उसके लिए उन्मुख हो गया था। यह बात सोचकर उन्हें तनिक तृप्ति मिलती थी और वे मन ही मन कहते थे कि उस राह पर फिर कभी न चलूँगा। हैम चाहे तो अपने नैहर जाय किन्तु वे स्वयं कभी चण्डीगढ़ का नाम तक न लेंगे।

उस दिन अदालत से लौटने पर निर्मल ने हैमवती से सुना कि उसकी माता के यहाँ से चिट्ठी आई है। उन्होंने लिखा है कि किसी को मालूम नहीं, रात को छिपकर षोड़शी कहीं चली गई है।

निर्म्मल ने दिल्लगी के तौर पर मुस्कुराते हुए कहा—किसी को नहीं मालूम कि कहाँ गई? न सागर सर्दार जानता है न ज़मींदार जीवानन्द चौधरी ही?

हैमवती ने नाराज़ होकर कहा—तुम कैसी बातें करते हो! सागर शायद जान भी सकता है, परन्तु ज़मींदार कैसे जानेगा? स्त्रियों पर कलङ्क लगाने में तुम लोगों को मज़ा मिलता है।

"यही सही" कहकर निर्म्मल बाहर जा रहे थे कि हैम ने पुकारकर कहा—एक घटना और हुई है। उसी रात को किसी ने ज़मींदार का 'शान्तिकुञ्ज' जला डाला।

"क्या कहती हो?"

"हाँ। लोग सन्देह करते हैं कि सागर ने ही गुस्से के मारे आग लगा दी है। परन्तु ज़मींदार के नाम के साथ षोड़शी पर गाँववालों ने जो लाञ्छन लगाया था, वह अगर सच होता तो क्या कभी ज़मींदार का मकान जल जाता? तुम्हीं कहो न?"

निर्म्मल चुप हो रहे। हैम बोली—कोई कुछ भी कहे, मैं निश्चित रूप से जानती हूँ कि वे निर्दोष हैं। चण्डी की ऐसी भैरवी पहले कभी नहीं थी। उन्हीं की कृपा से तो लड़के का मुँह देखना नसीब हुआ है। याद है?

निर्म्मल ने इस बात का भी कुछ उत्तर नहीं दिया। चिट्ठी लिखकर पूरा ब्योरा मालूम करने के लिए उनके कौतूहल की सीमा न रही, परन्तु इस इच्छा को दबाकर वे बाहर चले गये। उनका प्रण था कि षोड़शी के सब तरह के सम्बन्ध

से अपने को अलग रक्खेंगे। परन्तु दूसरे दिन सुबह ही जब ससुर का ज़रूरी तार मिला और शाम को सास की चिट्ठी भी आ गई कि, पत्र पहुँचते ही अगर दामाद चण्डीगढ़ नहीं आ जायँगे तो उनके वृद्ध ससुर को अबकी कोई न बचा सकेगा, उन्हें जेल जाना ही पड़ेगा, तब हैमवती रोने लगी। अब और एक दफ़े ट्रङ्क तथा बिस्तरा बाँधने के लिए हुक्म देकर निर्म्मल को अपने काम का बन्दोबस्त करने के लिए बाहर जाना पड़ा।

दो दिन के बाद निर्म्मल, हैम के साथ, चण्डीगढ़ में आ पहुँचे। आकर देखा कि सब लोग बहुत ही घबरा रहे हैं। ठिकाना नहीं, कब कौन आग लगा दे। चारों ओर आदमी पहरा दे रहे हैं। राय बाबू सूखकर आधे रह गये हैं। कहीं निकलते तक नहीं। ऐसे दुर्दान्त मनुष्य की अपने ही गाँव में यह दुर्गति देखकर निर्म्मल बड़े विस्मित हुए। यहाँ से उनको गये बहुत दिन नहीं हुए; परन्तु इतने में ही कैसा परिवर्तन हो गया है! लोगों से जो तरह-तरह की ख़बरें मिलीं उनसे असली घटना कुछ भी समझ में नहीं आई। एक संवाद में सभी की राय एक सी थी कि ज़मींदार जीवानन्द चौधरी सनक गये हैं। उन्होंने शराब छोड़ दी है, किसानों से अपने ही विरुद्ध नालिश करवा दी है। जिस रुपये से जले हुए मकान की मरम्मत करानी चाहिए थी उससे मैदान के बीच में एक पुल बनवा रहे हैं—ऐसे ही बहुत से क़िस्से सुनने में आये। परन्तु यह कोई नहीं जानता कि ऐसा परि-

वर्तन एकाएक क्यों हो गया। इस आदमी से निर्म्मल को बहुत ही घृणा थी। इसी के पास सिफ़ारिश करने जाना पड़ेगा, यह सोचकर वे बहुत ही सकुचने लगे। परन्तु घटना ने जैसा रूप धारण कर लिया है उससे और कोई रास्ता ही नहीं सूझा। भूमिज किसान लोग बिलकुल विरुद्ध हैं। पहले तो उनका सर्वनाश हो गया है और उसके सम्पादन करने में किसी प्रकार की चेष्टा की कमी नहीं हुई थी; और उस पर उनकी एक मात्र हितैषिणी भैरवी माता के ऊपर जो अत्याचार हुआ है उससे उनके क्रोध की सीमा ही नहीं है। वे कोई बात सुनने के नहीं। इधर मन्द्राजी साहब को बड़ी हानि है, उसका मेशीन वग़ैरह सामान आ गया है, उसको मुआविज़ा देना प्रायः असाध्य है, ज़मीन पर दख़ल पाना उसके लिए ज़रूरी है। ख़ासकर स्वयं अनुपस्थित रहकर जिस एटर्नी से वह काम चलवा रहा है, वह जैसा रूखे मिजाज़ का है वैसा ही अभद्र है, उससे सुलह होना नामुमकिन है। एक ही उपाय है—आपस में समझौता कर लेना। क्योंकि और चाहे जो हो, उससे फ़ौजदारी दण्डविधि की सख़्त सज़ाओं के हाथ से शायद बचाव हो जाय। अपने दल का ही यदि कोई अपराध स्वीकार कर ले तो बचने का कोई उपाय नहीं रहेगा। परन्तु उस सनकी ने कह रक्खा है कि हाकिम से वह कुछ भी नहीं छिपावेगा। इस बात को निर्म्मल हँसकर उड़ा दे सकते थे, परन्तु यहाँ आने पर उन्होंने जीवानन्द

के बारे में जितने क़िस्से सुने हैं, ख़ासकर शराब छोड़ने का क़िस्सा—जैसे कि हार्ट फ़ेल होने का डर दिखाकर भी डाक्टर बूँद भर शराब उसे नहीं पिला सका—उसको देखते हुए कौन कह सकता है कि उस सनकी आदमी पर कौन सी धुन सवार है। परन्तु वे आये हैं इस अबोध और अबाध्य मनुष्य को सुबुद्धि देने के लिए। इसे समझाना पड़ेगा, धमकाना होगा और मौक़े पर ख़ुशामद भी करनी होगी—उन्हें अभी तक पूरा पता नहीं है कि और क्या-क्या करना पड़ेगा। यह अनीप्सित कार्य करने में निर्म्मल का सारा चित्त मानो विद्रोही हो रहा था। परन्तु करते क्या? अपराधी हैं हैम के पिता; उन्हें बचाना ही होगा। हैम रोने लगी। सास रोने लगीं। एककौड़ो चोर की तरह आवा-जाई करने लगा। ससुर ने बिना खाये-पिये शय्या का आश्रय ले लिया, परन्तु अब एक ही दिन बाक़ी है। कल के बाद परसों हाकिम तहक़ीक़ात करने आयेंगे।

तीसरे पहर के लगभग जीवानन्द के साथ मैदान में निर्मल की भेंट हुई। अब तक पानी के निकास का रास्ता नहीं था, इसी से एक पुल बन रहा था। प्रशान्त हँसी के साथ जीवानन्द ने दोनों हाथ फैलाकर उन्हें ग्रहण किया और कहा—"आपके आने की ख़बर मुझे कल ही मिल गई थी। आप अच्छे तो हैं, घर में कुशल-मङ्गल है?" ज़मींदार के बर्ताव में ऐंठ नहीं है, बनावटी भाव भी नहीं है, वह जैसा सरल है वैसा ही खुला हुआ है। उन्हें संशय करने को

अवकाश ही नहीं मिला। इस प्रकार के बर्ताव के लिए निर्म्मल प्रस्तुत नहीं थे, वे मानो अपने सामने ही कुछ हीन प्रतीत हुए। अगर इसका दिमाग़ बिगड़ भी गया हो तो कोई लज्जा की बात नहीं। जीवानन्द के कुशल-प्रश्न का उत्तर निर्म्मल ने सिर्फ़ सिर हिलाकर ही दिया; जीवानन्द से कुशल पूछने का उन्हें अवकाश ही नहीं मिला। जीवानन्द ने कहा—"आप रिश्तेदार हैं, गाँव भर के आदर-पात्र हैं। परन्तु जान-बूझकर ऐसी जगह आकर मिले कि—।" एकाएक मिस्त्रियों-मज़दूरों की ओर नज़र पड़ते ही कहा—भइया, आज हमें ज़रा रात तक काम करना होगा, हफ़्ते भर से घटा छाई हुई है, एक दो दिन में ही शायद पानी बरसेगा। तब तो बना-बनाया काम बिगड़ जायगा। हम लोग ऐसा काम कर जायँगे कि नाती-पोतों को भी सिर झुकाकर मानना पड़ेगा कि हाँ, जिन लोगों ने पुल बनाया था उन्होंने हृदय के सच्चे प्रेम से ही बनाया था—वही होगा हमारा असली मिहनताना।

उन लोगों का हृदय पिघल गया। बीजगाँव के भयङ्कर ज़मींदार उनके साथ मिलकर काम कर रहे हैं, उनके मुँह से ऐसी बात! काम करनेवालों ने एक स्वर से जताया कि हमारी भी यही इच्छा है। बादल से अगर चाँदनी छिप न जाय तो रात के १० बजे तक काम करने की उन्होंने इच्छा प्रकट की।

निर्म्मल ने कहा—आपसे मेरा एक काम है।

जीवानन्द ने कहा—क्या किसी दूसरे दिन नहीं हो सकता ?

"जी नहीं, मेरा ख़ास प्रयोजन है।"

जीवानन्द हँस पड़े, कहा—सो ठीक है। ओछे कामों का बोझ उठाने के लिए जो लोग आपको इतनी दूर से खींच लाये हैं वे क्या सहज ही छोड़ देंगे ?

इस बात से निर्म्मल को बड़ी चोट पहुँची। उन्होंने कहा—वह तो ठीक है। ओछे काम मनुष्य कर डालते हैं, तभी तो हम लोगों की संसार में ज़रूरत है चौधरी साहब। नहीं तो इस मैदान में आपको तङ्ग करने की मुझे क्यों आवश्यकता होती ?

जीवानन्द ने क्रोध नहीं किया। उसी तरह प्रसन्नता के साथ कहा—मैं ज़रा भी तङ्ग नहीं हुआ हूँ निर्म्मल बाबू। आप जिस काम के लिए आये हैं वह आपका कर्तव्य है, इसमें मुझे तनिक भी सन्देह नहीं। नहीं तो आप आते ही क्यों ? परन्तु कर्तव्य का सिद्धान्त तो सब का एक सा नहीं है। राय बाबू का मैं अकल्याण नहीं चाहता। आपके आने का उद्देश्य सफल हो जाय तो मैं सचमुच ख़ुश हूँगा, परन्तु मैंने अपना कर्तव्य भी निश्चित कर लिया है। इसमें परिवर्तन होना अब सम्भव नहीं।

निर्म्मल का चेहरा उतर गया। उन्होंने ज़रा सोचकर कहा—यह अच्छा ही हुआ कि आपने कृपा कर मुझे इस अप्रिय आलोचना की भूमिका के अंश के पार कर दिया।

इस गाँव में आकर आपके सम्बन्ध में मैंने बहुत सी बातें सुनी हैं।

जीवानन्द ने हँसकर कहा—उसमें एक यह है कि मेरा दिमाग़ ठिकाने नहीं है। क्यों, सच है न?

निर्म्मल ने कहा—संसार में साधारण मनुष्य की विचार-बुद्धि के साथ एकाएक किसी के कर्तव्य का सिद्धान्त अगर एकदम अलग हो जाय तो बदनामी फैलती ही है। तो क्या यह सच है कि आप सभी बातें स्वीकार कर लेंगे?

जीवानन्द ने "सच है" कहा। उनके स्वर में गाम्भीर्य नहीं था, बल्कि होठों पर हँसी की रेखा थी, तो भी निर्म्मल ने समझ लिया कि यह धोखा नहीं है। उन्होंने कहा—ऐसा भी तो हो सकता है कि आपके स्वीकार करने से सिर्फ़ आप ही को सज़ा हो जाय और सब लोग बच जायँ।

जीवानन्द ने कहा—"निर्म्मल बाबू, आपका कहना उस पाठशाला के गोविन्द की तरह है। उसने कहा था—'पण्डितजी, मुकुन्द ने भी आम चुराये थे।' यानी बेंत सब पर बँटकर न पड़े तो उसकी पीठ का दर्द न घटेगा।" अब वे हँसने लगे। उनकी हँसी से निर्म्मल के चेहरे पर क्रोध के चिह्न देखकर जीवानन्द ने उनके क्रोध को शान्त करने की चेष्टा करते हुए कहा—माफ़ कीजिए जनाब, यह मैंने भूलकर भी नहीं चाहा। अपनी करनी का फल मैं ही अकेला भोगूँगा, और किसी को मैं इसमें समेटना नहीं चाहता। राय

बाबू छुटकारा पाकर अपने घर आराम से रहें और मेरे एककौड़ी नन्दी साहब कहीं और गुमाश्तागिरी में दिन पर दिन तरक्क़ी करते रहें—किसी पर मुझे रत्ती भर भी क्रोध नहीं है।

निर्म्मल क़ानूनदाँ आदमी हैं। सहज में निराश नहीं होते, बोले—ऐसा भी हो सकता है कि न तो किसी को कुछ सज़ा भोगनी पड़े और न किसी को हानि ही सहनी पड़े।

जीवानन्द ने उसी वक़्त राज़ी होकर कहा—"अच्छी बात है। अगर आप कर सकें तो कीजिए। परन्तु मैंने बहुत सोचकर देखा है कि वह हो नहीं सकता। किसान लोग अपनी-अपनी ज़मीन नहीं छोड़ेंगे; क्योंकि यह केवल उनके रोटी-कपड़े का सवाल नहीं है बल्कि यह है उनका ख़ानदानी जोत। इसके साथ उनका हार्दिक सम्बन्ध है। उन्हें यह मिलना ही चाहिए।" ज़रा ठहरकर फिर कहा—आप अच्छी तरह से जानते हैं कि दूसरा पक्ष कितना प्रबल है, उस पर कोई ज़बर्दस्ती नहीं चलेगी। चल सकती है केवल किसानों पर, परन्तु उन लोगों पर लगातार अत्याचार होता आया है, अब मैं वह नहीं होने दूँगा।

निर्म्मल ने मन में डरकर कहा—आपकी इतनी बड़ी ज़मींदारी में क्या इतने किसानों को जगह नहीं मिलेगी? कहीं न कहीं—

"नहीं नहीं, और कहीं नहीं, इसी चण्डीगढ़ में मिलनी चाहिए। यहीं उनसे छः हज़ार रुपया मैंने ज़बर्दस्ती वसूल

किया है। और राय बाबू ने ही उन्हें इन रुपयों की मदद दी है। उस ऋण का परिशोध हमें करना ही होगा। अब इस अप्रिय आलोचना की आवश्यकता नहीं निर्म्मल बाबू, मैंने अपना कर्तव्य निश्चित कर लिया है।"

इन छः हज़ार रुपयों का इशारा निर्म्मल की समझ में नहीं आया, परन्तु इतना उन्होंने अवश्य समझ लिया कि उनके ससुर ने अपने को बहुत से झगड़ों में फँसा लिया है, जिनसे उन्हें साफ़ बचा लेना सहज नहीं है। उन्होंने अन्तिम बार चेष्टा करते हुए कहा—अपना बचाव करने का अधिकार तो सभी को है, अतः उन्हें भी करना ही होगा। आप स्वयं ज़मींदार हैं। आपको मुक़दमे का विवरण सुनाना निरर्थक है, अन्त तक शायद विष से ही विष का इलाज करना पड़े।

जीवानन्द ने मुस्कुराकर कहा—तो क्या वैद्य अब जाल-साज़ी करने के अपराध में हत्या की व्यवस्था देंगे?

निर्म्मल के चेहरे पर सुर्ख़ी छा गई। वे बोले—आपको मालूम है कि कभी-कभी दवा का नाम बता देने से मरीज़ को लाभ नहीं होता। जो हो, आप ज़मींदार है, ब्राह्मण हैं और उम्र में भी बड़े हैं। आपको मैं कड़ी बात कहना नहीं चाहता और यह सुनने का भी मुझे कौतूहल नहीं है कि अकस्मात् किस कारण से आपके धर्मज्ञान ने इतना प्रबल रूप धारण कर लिया। परन्तु एक बात मैं आपसे कह देना चाहता हूँ

कि यह भाव आपका स्वाभाविक नहीं है। गवर्नमेंट अगर गिरफ़्तार कर ले तो जेलख़ाने में किसी रोज़ यह आपकी समझ में आ जायगा। आप साँप को रस्सी समझ रहे हैं।

जीवानन्द ने कहा—आपकी यह बात सच है, परन्तु जब तक भ्रम है तब तक मेरे लिए रस्सी ही सत्य है।

निर्म्मल ने कहा—उससे मौत नहीं टलेगी। और भी एक सत्य बात मैं आपसे कहे जाता हूँ कि इस प्रकार का गन्दा काम करना मेरा पेशा नहीं है। आपसे मैं बहुत ही घृणा रखता हूँ, और एक पापिष्ठ के लिए दूसरे पापिष्ठ की ख़ुशामद करने में मुझे लज्जा मालूम होती है। परन्तु आप उसे नहीं समझेंगे—वह शक्ति ही आपमें नहीं है।

जीवानन्द के चेहरे पर कुछ परिवर्तन नहीं दिखाई दिया, ज़रा सी उत्तेजना भी नहीं। उसी तरह शान्त भाव से उन्होंने कहा—"परन्तु आपसे मैं घृणा नहीं रखता बल्कि मैं तो आपमें श्रद्धा रखता हूँ। यह समझने की शक्ति भी आपमें नहीं है।" उनके इस निर्विकार भाव से निर्म्मल जल-भुन रहे थे। इस जवाब को ओछी दिल्लगी समझकर उन्होंने रूखे स्वर से कहा—"चोर-डाकुओं में भी विश्वास नाम की कोई चीज़ होती है; वे भी उसे आपस में नहीं तोड़ते। विश्वास-घाती से वे घृणा करते हैं। परन्तु ज़िन्दगी भर लगातार दुराचरण करते-करते जिसकी बुद्धि विकृत हो गई हो, उससे सवाल-जवाब करना व्यर्थ है। मैं जाता हूँ।" अब वे पलक मारते ही पीछे

घूमकर तेज़ी के साथ चल पड़े। जीवानन्द ने देखा कि बहुत से मज़दूर लोग हाथ का काम छोड़कर अचम्भे के साथ देख रहे हैं। उन्होंने ज़रा म्लान हँसी हँसकर कहा—भइया, जितना समय तुम लोगों ने व्यर्थ नष्ट कर दिया उसे पूरा कर लेना होगा।

यह बात निर्म्मल के कानों में भी पहुँची।

तीन-चार दिन के भीतर किसानों का मुद्दत का दुःख दूर होकर पानी के निकास के लिए पुल बनकर तैयार हो गया। आसपास के गाँवों से लोग उसे देखने के लिए आने लगे। परन्तु जिन्होंने इसे बनवाया वही जीवानन्द बीमार पड़ गये। इतना परिश्रम उनसे सहा नहीं गया। इस बहाने से और साहब से मिलकर दूसरे उपायों से तहक़ीक़ात के दिन को निर्म्मल एक हफ़्ता हटा देने में समर्थ हुए। परन्तु वह दिन भी अब आना ही चाहता है। दो ही दिन रह गये हैं। बचने का एक ही उपाय था। उसी का आश्रय लेकर जनार्दन ने तारादास के द्वारा चण्डी की विशेष पूजा का प्रबन्ध कर दिया और स्वयं भी मन्दिर के एक कोने में बैठकर शाम-सवेरे देवी से यही प्रार्थना करने लगे कि 'अबकी बार जीवानन्द चङ्गा न हो, साहब के आने के पहले ही इसे कुछ हो जाय।' अपनी लड़की के साथ जाकर षोड़शी के पैरों पर जा पड़ने की बात भी एक बार मन में आई थी; क्योंकि छोटे आदमियों को वही रोक सकती है। परन्तु वह अब है कहाँ? जो गाड़ीवान उसे पहुँचा आया था उसका पता,

बहुत चेष्टा करने पर भी, नहीं मिला। सात दिन का समय पाकर हैम को पक्का भरोसा हो गया था कि लड़के को साथ लेकर अगर वह षोड़शी के पास जाकर रोने लगेगी तो वह कभी इनकार नहीं करेगी। परन्तु अब वह आशा भी नहीं है। इन दिनों प्रायः रोज़ ही निर्म्मल को ज़िले में जाना पड़ता था। यह जो भद्दा मुक़द्दमा छिड़नेवाला है, उसके सभी छेदों को पहले से ही बन्द कर देना आवश्यक है। उस दिन दोपहर को वे रजिस्ट्री आफ़िस के बरामदे में एक ओर बेंच पर बैठे कई ज़रूरी दस्तावेज़ों की नक़ल पढ़ रहे थे। अचानक सामने सुनाई पड़ा—जमाई बाबू, सलाम। खैरियत तो है?

निर्म्मल ने चौंककर, मुँह उठाकर, देखा कि सामने फ़क़ीर साहब हैं। उनके भी हाथ में बहुत से काग़ज़ात हैं। उन्होंने झट उठकर सलाम करते हुए उनके दोनों हाथ पकड़ लिये और पास बिठाकर कहा—सुना है कि याद करने से ही आपके दर्शन मिलते हैं। इधर कई दिनों से मैं आपको हृदय से, बड़े आग्रह के साथ, याद कर रहा था।

फ़क़ीर साहब हँस पड़े, बोले—भला बताइए तो, किसलिए?

"षोड़शी की मुझे बड़ी ज़रूरत है। वे जहाँ हों वहाँ जाकर मुझे उनसे भेंट करनी होगी।"

फ़क़ीर साहब विस्मित नहीं हुए। उन्होंने आनन्द भी प्रकट नहीं किया। कहा—"भेंट न होना ही तो अच्छा है।" निर्म्मल

लज्जित हुए, बोले—आप शायद सर्वज्ञ हैं। अगर ऐसा ही है तो आप जानते ही हैं कि हमारा कितना बड़ा प्रयोजन है।

फ़क़ीर साहब ने कहा—"नहीं, मैं तो सर्वज्ञ नहीं हूँ; परन्तु माँ षोड़शी मुझसे कुछ भी नहीं छिपाती हैं।" ज़रा रुककर फिर कहा—भेंट होने न होने की बात वही कह सकती हैं, मुझे नहीं मालूम। परन्तु उनकी सब ख़बर आपको बतलाने में मुझे कोई रुकावट नहीं है। क्योंकि एक दिन जब सभी लोग उनका सर्वनाश करने को तैयार हो गये थे, उस दिन अकेले आप ही उन्हें बचाने के लिए खड़े हुए थे। मैंने उन्हीं से यह बात सुनी है।

निर्म्मल ने कहा—और आज वही मामला पलटा खा गया है फ़क़ीर साहब। अब अगर उन लोगों को कोई बचा सकता है तो षोड़शी ही।

फ़क़ीर का चेहरा अप्रसन्न हो उठा। इसका विस्तृत विवरण जानने के लिए उन्होंने कौतूहल प्रकट न कर इतना ही कहा—चण्डीगढ़ की ख़बर मैं नहीं जानता। परन्तु मेरा कहना है कि उनकी भलाई करने का भार आप ईश्वर को सौंप दीजिए। मेरी माँ को फिर इसमें न घसीटिए निर्म्मल बाबू।

पिछले दिनों का सारा इतिहास निर्म्मल को याद आ गया। इसका जवाब देना कठिन है। उन्होंने कुण्ठित होकर पूछा—तो अब वे कहाँ हैं?

"उस जगह को शैवालदीघी कहते हैं।"

"क्या वहाँ वे सुख से हैं ?"

अबकी फ़क़ीर साहब ने ज़रा हँसकर कहा—यह लीजिए। स्त्रियों के सुख से रहने की ख़बर देवता भी नहीं जानते, फिर मैं तो फ़क़ीर हूँ। तो भी इतना कह सकता हूँ कि माँ मेरी शान्ति से हैं।

निर्म्मल ने क्षण भर चुप रहकर पूछा—अदालत में आप कहाँ आये थे ?

फ़क़ीर ने कहा—यह ठीक है, साधुओं-फ़क़ीरों के लिए यह स्थान निषिद्ध होना ही चाहिए। परन्तु संसार का मोह तो मनुष्य को जल्दी नहीं छोड़ता बेटा, इसलिए बुढ़ौती में फिर मुझे ज़मीन-जायदाद के झंझट में फँसना पड़ा। भली याद आई, मुफ़्त में आपके ऐसा क़ानूनदाँ भी नहीं मिलेगा और सिर्फ़ आपसे ही यह कहा भी जा सकता है। मेरे इन काग़ज़ों को आप ज़रा देख लें।

निर्म्मल ने हाथ फैलाकर कहा—किस विषय के कागज़ात हैं ?

"एक दानपत्र का मसौदा है।" कहकर फ़क़ीर ने काग़ज़ों का बण्डल निर्म्मल के हाथ में दे दिया। दूसरे का काम करने का अवकाश या इच्छा निर्म्मल को नहीं थी। उन्होंने उदास भाव से उसे ले लिया। वे धीरे-धीरे उसे खोलकर पढ़ने लगे। परन्तु कई पंक्तियाँ पढ़कर ही उनकी दृष्टि तीव्र हो गई, मुख गम्भीर हो गया और ललाट सिकुड़ उठा। इस

दान की सम्पत्ति मामूली नहीं है, कई सफ़हों तक उसका ब्योरा है। उन पर से किसी तरह नज़र घुमाकर, अन्त में, आख़िरी पन्ने में जब जीवानन्द की उस चिट्ठी पर उनकी दृष्टि पड़ी तब उन पंक्तियों का लेख दम भर में पढ़कर निर्म्मल स्तब्ध हो गये। फ़क़ीर साहब उनके चेहरे का उतार-चढ़ाव देख रहे थे, बोले—संसार में बहुत सी आश्चर्य की बातें हैं!

निर्म्मल के मुँह से गहरी साँस निकल पड़ी। उन्होंने सिर हिलाकर सिर्फ़ "हाँ" कहा।

फ़क़ीर ने कहा—मसौदा ठीक है न?

निर्म्मल ने कहा—ठीक है। परन्तु इसकी सचाई का प्रमाण क्या है?

फ़क़ीर ने कहा—"बात सच न होती तो यह दान षोड़शी ग्रहण नहीं करतीं। इससे बढ़कर और क्या प्रमाण हो सकता है निर्म्मल बाबू।" अब वे उत्सुक दृष्टि से देखने लगे, परन्तु कुछ जवाब नहीं मिला। निर्म्मल की दृष्टि वैसी ही उदास और ललाट की सिकुड़न वैसी ही बनी रही। फ़क़ीर साहब शायद अनुमान भी नहीं कर सके कि निर्मल का मन कहाँ चला गया था।

२८

अचानक कई दिन तक लगातार पानी बरसने से संसार का सारा काम-काज बन्द हो गया, यहाँ तक कि अबाध-गति मैजिस्ट्रेट साहब भी अपने तहक़ीक़ात के पहिये को ढकेल-

कर नहीं ला सके। परन्तु उनका हुक्म था कि पानी ज़रा रुक जाने से ही वे चण्डीगढ़ में पधारेंगे और उस हुक्म की तामील का दिन आज है। ख़बर आई है कि गाँव के बाहर बारुई नदी के किनारे उनका तम्बू खड़ा किया गया है। मुर्ग़ी, अण्डा, दूध, घी वग़ैरह जुटाने में एककौड़ी जी-जान से लग गया है। बहुत सम्भव है कि दोपहर के पहले ही उनके घोड़े की टापों की आहट सुनाई दे।

रात के पिछले पहर से ही पानी रुक गया, परन्तु आकाश का रंग नहीं बदला। यह मूर्त्ति देखकर कोई अनुमान नहीं कर सकता कि दुर्योग बन्द हो गया अथवा घटा चारों ओर से फिर उमड़ आवेगी। मकान के जल जाने के बाद बाहर की ओर दुतल्ले के जिन दो कमरों में जीवानन्द ने आश्रय लिया था, उन्हीं के बरामदे में खटिया पर वे सुबह से पड़े बारुई की तरफ़ एकटक देख रहे थे। पहाड़ से गँदला पानी उतर आने से नदी का वह शीर्ण रूप अब नहीं है, प्रबल स्रोत दोनों ओर के तटों पर धक्का मारता हुआ तेज़ी से बह रहा है। जीवानन्द न जाने क्या-क्या सोच रहे थे। बुख़ार और उनका सदा का सहचर शूल का दर्द घट गया था सही परन्तु बिलकुल अच्छा नहीं हुआ था। अब भी वे बिछौने पर पड़े हैं, चल-फिर नहीं सकते। मैजिस्ट्रेट साहब के पहुँचने की ख़बर पाने पर वे पालकी से जाकर स्वयं उनसे मिलेंगे, झूठ कुछ भी न कहेंगे—यह निश्चय उन्होंने उसी प्रकार कर लिया

था जिस प्रकार कि उन्होंने शराब पीना छोड़ने का निश्चय किया था। जैसे उन्होंने सङ्कल्प कर लिया था कि ज़िन्दगी भर में किसी को दुःख नहीं दूँगा वैसे ही यह निश्चय भी उन्होंने कर लिया था। परन्तु वास्तव में उन्हें किसी के विरुद्ध कोई शिकायत या कोई अभियोग नहीं था। जीवानन्द मन ही मन यही विचार रहे थे कि अपराध तो मनुष्य ही करते हैं, मनुष्य के लिए ही तो अपराध की सृष्टि हुई है, इसलिए मेरी गवाही से मेरे सिवा और किसी की हानि होगी, यह सोचने से ही सचमुच दुःख होता है। किस तरह कहने से औरों की कुछ हानि न हो, इसी बात की जीवानन्द तरह-तरह से आलोचना कर रहे थे, परन्तु किसी बात को अन्त तक सुश्रृङ्खला के साथ विचारने की हालत उनकी नहीं थी। इस-लिए एक ही प्रश्न घूम-फिरकर एक ही उत्तर लेकर बार-बार उनके सामने आ रहा था और इस प्रकार की चिन्ता से जब वे हैरान हो उठे इसी समय एक नई चीज़ पर एकाएक उनकी दृष्टि और मन जाकर टिका। एक छोटी सी नाव बहाव के साथ बड़ी तेज़ी से बही आ रही थी। उनके मकान के पास आते ही मल्लाह ने तीर पर लङ्गर डालकर उसकी गति रोक दी। इस नदी में नाव बहुत कम चलती है। साल के अधिकांश समय में पानी बहुत कम रहता है, इसलिए ही नहीं, बल्कि बरसात में तेज़ बहाव के कारण भी नाव चलाना कठिन था। ख़ासकर उन्हीं के मकान के पास आकर जब

यह नाव इस तरह रुक गई तब कौतूहल के कारण तकिया टेककर वे ज़रा सीधे हो बैठे। उन्होंने देखा कि दो आदमी और तीन स्त्रियाँ उतरकर आ रही हैं। पेड़ों की आड़ में से उन लोगों के स्पष्ट दिखाई न देने पर भी एक आदमी को जीवानन्द ने पहचान लिया, वह है जनार्दन राय। प्रौढ़ा स्त्री शायद उनकी धर्मपत्नी और दूसरी उनकी कन्या होगी। शायद कहीं गये थे। मैजिस्ट्रेट के आने की ख़बर पाकर जल्दी-जल्दी लौट आये हैं। सिर्फ़ एक बात उनकी समझ में नहीं आई कि अपना घाट छोड़कर इतनी दूर पर नाव बाँधने की क्या ज़रूरत थी। शायद वहाँ सुभीता न था, शायद भूल हुई है, शायद वे मैजिस्ट्रेट की नज़र से बचना चाहते थे। जो हो, ये लोग जब राय बाबू और उनकी स्त्री तथा कन्या हैं तब व्यर्थ बैठे रहने का कष्ट न कर जीवानन्द लेट गये। आँखें मूँदे हुए वे मन ही मन हँसकर बोले—अपराध की सज़ा देने का अधिकार क्या केवल अदालत को ही है? इस आदमी को शायद मैजिस्ट्रेट साहब ने कभी देखा भी न होगा। देखने पर भी शायद पहचान न सकते, तो भी इनकी शङ्का और सावधानी की सीमा नहीं है। स्त्री और कन्या के सामने ऐसी भीरुता की लज्जा ही क्या सज़ा से कम दण्ड है?

एकाएक सिरहाने किसी व्यक्ति के बैठ जाने पर खटिया की मचमचाहट से वे चौंक उठे और बोले—"कौन है?" बरामदे में किसी के घुसने की आहट भी उनको नहीं मिली थी।

जो बैठी थी उसने जीवानन्द के ललाट पर हाथ रखकर कहा—मैं हूँ।

जीवानन्द अपना हाथ बढ़ाकर और इसके हाथ को अपने दुबले हाथ से पकड़कर देर तक चुपचाप पड़े रहे। इसके बाद धीरे-धीरे पूछा—क्या तुम इसी नाव पर आई हो?

"हाँ।"

"राय बाबू तुम्हें पकड़ लाये हैं। उन्हें बचाना होगा?"

"हाँ। परन्तु हैम के पिता को बचाना है. जनार्दन राय को नहीं।"

"मैं समझ गया। परन्तु किसान लोग मुक़दमा क्यों डिसमिस करावेंगे? सागर क्यों मानेगा?"

"मेरे सामने उन लोगों ने स्वीकार कर लिया है।"

"स्वीकार कर लिया है? आश्चर्य है!" यह कहकर वे चुप हो गये।

षोड़शी ने कहा—नहीं, आश्चर्य नहीं है। वे लोग मुझे माँ जो कहते हैं।

"मुझे मालूम है।" जीवानन्द के हाथ की मुट्ठी ढीली हो गई। कुछ देर स्थिर रहकर धीरे-धीरे उन्होंने कहा—अच्छा ही हुआ। आज सवेरे से मैं सोच रहा था अलका, इतना बड़ा कठिन काम मैं कैसे करूँगा? मैं बच गया। मुझे अब कुछ करने को नहीं रहा, तुमने सब कुछ कर दिया।

षोड़शी ने सिर हिलाकर कहा—"तुम्हारे करने को कुछ काम न रहा होगा परन्तु मेरा काम तो अभी बाकी ही है।" अब जीवानन्द का जो हाथ बिछौने पर लटक पड़ा था उसे अपनी मुट्ठी के भीतर लेकर और उनके कानों के पास मुँह लाकर बोली—"मेरी नाव तैयार है, किसी तरह तुम्हें लेकर भाग सकूँ तो मेरा सबसे बड़ा काम पूरा हो जाय। चलो।" षोड़शी ने झुककर जीवानन्द की छाती पर अपना सिर रख लिया। वह चुपचाप बैठी रही। बहुत देर तक किसी ने कुछ नहीं कहा। केवल एक की छाती की धड़कन को दूसरी ध्यान से सुनने लगी।

जीवानन्द ने पूछा—मुझे कहाँ ले चलोगी ?

षोड़शी ने कहा—जहाँ मेरी आँखें ले चलें।

"कब चलना पड़ेगा ?"

"अभी। साहब के आने के पहले ही।"

जीवानन्द ने उसके मुँह पर दृष्टि जमाकर धीरे-धीरे कहा—परन्तु मेरे किसान लोग ? उन लोगों से हमारी वंश-परम्परा ने जो ऋण ले रक्खा है उसे तो—?

उनकी दृष्टि की ओट में मुँह करके षोड़शी धीरे-धीरे बोली—वंश-परम्परा से ही हमें उसे चुकाना होगा।

जीवानन्द ने ख़ुश होकर कहा—ठीक बात है अलका। परन्तु विलम्ब करने से तो नहीं चलेगा। अभी से हम दोनों को यह भार सिर पर उठा लेना होगा।

षोड़शी एकाएक हाथ जोड़कर बोली—हुजूर, दासी को यही भिक्षा दीजिए कि प्रजा का भार सँभालने की चेष्टा करके आप अपने को जंजाल में न फँसावें। जीवन भर तो आप तरह-तरह के भार उठाते आये हैं, इस बीमारी की हालत में कुछ दिन आराम करने से कोई निन्दा नहीं करेगा। परन्तु के० साहब आ सकते हैं, चलिए।

जीवानन्द तनिक मुसकुराकर उसके हाथ के सहारे उठ बैठे। कहा—तुम इस तरह मेरा सारा अधिकार छीन मत लेना अलका। मुझे दुखियों के काम में लगाकर देखना, कभी तुम्हें धोखा नहीं होगा।

यह बात सुनकर उसकी आँखें भर आईं। इस प्रकार आत्मसमर्पण करके जिसने उसका सारा हृदय जीत लिया है उसकी ओर देखते ही अकस्मात् उसके पैरों के नीचे की धरती तक काँप उठी। परन्तु अपने को वह उसी दम सँभालकर उनके हाथ को ज़रा सा दबाते हुए हँसकर बोली—अच्छा तो अब चलो। नाव पर बैठे-बैठे एकान्त में सोचकर देखूँगी कि कौन-कौन सा अधिकार तुम्हें दिया जा सकेगा और कौन-कौन सा बिलकुल नहीं।

"अच्छी बात है" कहकर जीवानन्द षोड़शी का हाथ पकड़कर आगे बढ़े।

पण्डितजी—मतलब मास्टर साहब से है। इसमें बड़े अच्छे ढँग से कुलीनता, उच्च शिक्षा, द्विज और द्विजेतर, गाँव की भलाई और अपनी तरक्क़ी, नई शिक्षा और मिथ्या अभिमान आदि पर विचार हैं। उपन्यास बहुत ही सुन्दर है। 'पण्डितजी' की सर्वत्र प्रशंसा हो रही है। बढ़िया जिल्द पर भाव-पूर्ण चित्र में दिखलाया गया है कि सुदूर श्रीवृन्दावन की ओर उपन्यास-नायक वृन्दावन अपनी गृहिणी कुसुम के साथ, सर्वस्व त्यागकर, पैदल जा रहा है। मूल्य १॥) रु०।

बड़ी दीदी—मतलब बड़ी बहन से है। इसमें लेखक ने दिखलाया है कि माधवी भले घर की शिक्षिता बाल-विधवा है। बड़ा अच्छा स्वभाव है। नैहर की गृहस्थी की मानो जान है। उसके घर एक अजनबी, सुरेन्द्र, उसकी बहन के पढ़ाने को रक्खा गया। यह असल में एक मालदार वकील का एम० ए० पास लड़का था जो माँ-बाप से रूठकर आ गया था। इसको माधवी अनजानते प्यार करने लगी। दोनों का आचरण पवित्र रहने पर भी उनमें प्रेम का सञ्चार हो गया। अन्त में सुरेन्द्र गाड़ी से कुचला जाकर अस्पताल भेजा गया और चङ्गा होने पर अपनी ननिहाल की ज़मींदारी का मालिक बना। लेखक ने अन्त में माधवी को उसकी ससुराल पहुँचा दिया। वहाँ उसका पता पाकर सुरेन्द्र माधवी की, दग़ा से नीलाम हुई, सम्पत्ति उसे लौटाने गया किन्तु रास्ते में ही पुरानी चोट ने उभड़कर उसे अधमरा कर दिया। माधवी से भेंट तो हो गई; किन्तु उसी की गोद में सुरेन्द्र मर गया। मूल्य केवल १) रुपया।

परिणीता—ललिता थी तो रूप-गुण-आगरी किन्तु बचपन में ही बे माँ-बाप की हो जाने से अपने निर्धन मामा गुरुचरण के यहाँ आ रही थी जिनके कई लड़कियाँ थीं। ये एक लड़की का विवाह करके ही निर्धन हो गये थे। बेचारा गुरुचरण इसी सोच में घुला जा रहा था कि ललिता के लिए अच्छा घर-वर कहाँ मिलेगा।

नवीन राय के घरवालों से ललिता के मामा-मामी की घनिष्ठता थी। ललिता नवीन की स्त्री को माँ और उनके छोटे बेटे शेखर को बड़ा भाई कहती थी। शेखर ने ही ललिता को शिक्षा दी थी। खर्च के लिए वह शेखर से रुपये माँग लाती थी। शेखर के ब्याह की बातचीत होने लगी। कई जगह लड़कियाँ देखी गईं किन्तु सम्बन्ध पक्का न हुआ; क्योंकि एकाएक शेखर का मन ललिता पर अनुरक्त हो गया था।

नवीन राय के कड़े तगादे से गुरुचरण संकट में थे कि पड़ोसिन मनोरमा के भाई गिरीन्द्र ने उनसे हेलमेल बढ़ाकर उन्हें क़र्ज़ से छुटकारा दिला दिया। उस ब्राह्मसमाजी युवक की इच्छा ललिता से ब्याह करने की थी। गिरीन्द्र की बातों में आकर ब्राह्मसमाज में दीक्षित होते ही, गुरुचरण का, सब सम्पर्क नवीन राय से टूट गया। वे बीमार होकर गिरीन्द्र के घर मुँगेर गये। वहीं उनका देहान्त हुआ। यहाँ नवीन भी चल बसे। गुरुचरण के अनुरोध को मानकर गिरीन्द्र ने काली से ब्याह कर लिया; अपने को विवाहिता बतलाने से ललिता का ब्याह न हो सका।

इधर शेखर के विवाह की तैयारियाँ होने लगीं। विवाह करने को उसकी माँ काशी से कलकत्ते आ गई। दैवयोग से ललिता भी अपनी मामी और ममेरी बहनों के साथ कलकत्ते आई। उसकी मामी की ओर से मकान बेचने का सँदेशा लेकर गिरीन्द्र, शेखर के पास, गया। किन्तु शेखर ने इस जलन के मारे गिरीन्द्र से अच्छी तरह बातचीत तक न की कि इसी के साथ ललिता का विवाह हुआ होगा। अन्त में जब उसे सब हाल मालूम हुआ तब वह बहुत ही झेंपा। उसने ब्याह की तैयारी रोकवाकर माँ से कहा कि अपनी पतोहू ललिता से ही सब हाल पूछ लेना। मूल्य १)।

मँझली दीदी—दरिद्र माँ के मर जाने पर किसन सौतेली बहन कादम्बिनी के घर गया। वहाँ इसकी बेहद दुर्गति की गई। कादम्बिनी की देवरानी हेमाङ्गिनी—मँझली दीदी—का स्वभाव बहुत भला था

किन्तु वह अलग रहती थी। फिर भी उससे किसन की दुर्गति न देखी जाती थी। वह मौक़ा देखकर उसको खिला-पिला दिया करती; उसको तसल्ली दिया करती। इसका पता पाकर कादम्बिनी हेमाङ्गिनी को आड़े हाथों लेती। अन्त में कादम्बिनी के अत्याचार से किसन को बचाने के लिए हेमा, उसे लेकर, मैके को चल पड़ी। तब हेमा के पति ने, भाई-भौजाई का डर छोड़कर, किसन को अपने घर रखना स्वीकार किया। मूल्य ।।।) बारह आने।

नव-विधान—शैलेश्वर घोषाल कालेज में प्रोफ़ेसरी करते थे। ब्राह्मसमाजी थे। आमदनी से ख़र्च कहीं अधिक था, फलतः ऋणग्रस्त रहते थे; पर इसकी उन्हें परवा न थी। साहबी ढँग से रहते थे। यही हाल उनके बहनोई का था जो बैरिस्टर थे।

शैलेश की पहली स्त्री जीवित थी। वह पण्डित की बेटी थी। इस दशा में भी शैलेश ने, विलायत से लौटने पर, पिता की ज़िद मानकर दूसरी शादी कर ली। कुछ दिनों में शैलेश के ससुर और पिता दोनों लुढ़क गये, उसकी दूसरी सहधर्मिणी भी चल बसी। घर में बे माँ का बच्चा सोमेन रह गया। शैलेश तीसरी शादी कर लेता, पर दिग्गज पण्डित की तानेज़नी के मारे उसने पहली स्त्री उषा को बुला लिया। इसको शैलेश की बहन विभा फूटी आँखों न देख सकती थी। उषा ने आते ही साहबी ठाट बदल दिया। यह किसी को अच्छा न लगा, पर ख़र्च घट जाने और क़र्ज़ चुक जाने की व्यवस्था से शैलेश ने विरोध न किया।

इसी बीच ननँद विभा के झगड़ा करने और शैलेश की तुनुक-मिज़ाजी से ऊबकर उषा अपने मैके चली गई। इधर शैलेश के तीसरे विवाह की बातचीत होने लगी। साहबी ठाट जम गया; किन्तु शैलेश पर भगवान् की कृपा हो गई। वह सोमेन की माँ का व्यवहार और उषा की व्यवस्था देखकर नया विवाह कराना छोड़, छुट्टी लेकर, प्रयाग चला गया और वहाँ योग सीखने लगा।

इस सिलसिले में लेखक ने ब्राह्मसमाज का चित्र दिखलाकर हिन्दूधर्म की उदारता दिखलाते हुए उजड़ी गृहस्थी को सँभालने के लिए उषा को उसके मैके से बुलाकर शैलेश का उद्धार करा दिया है। मूल्य १) रुपया।

अरक्षणीया—इस उपन्यास की घटनावली से पता लगेगा कि रूप और धन की कमी हो तो अच्छी गुणनिधान लड़की के लिए वर का मिलना हिन्दू समाज में कैसी कठिन समस्या है। ज्ञानो ऐसी ही लड़की थी। उसके माँ और बाप परिश्रम करके थक गये पर अपनी बेटी का विवाह न कर सके। कथा के छल से लेखक ने दिखला दिया है कि विवाह के लिए बेटीवाले कैसे-कैसे प्रयत्न करते हैं; कुलीनता कैसा ग़ज़ब ढहाती है और जिनकी उम्र ढल चुकी है उनके साथ विवाह कराने के ठेकेदार—स्थान-अस्थान की परवा न कर—क्या-क्या करने को उतारू हो जाते हैं। सारे उपद्रवों का आक्रमण हो चुकने पर, माता और पिता के चल बसने पर, ज्ञानो का विवाह उसी अतुल से हुआ जिसके साथ पहले उसका सम्बन्ध पक्का हो गया था और जो प्रलोभन में पड़कर अन्यत्र विवाह कराने को तैयार हो गया था। मूल्य १) सिर्फ़ एक रुपया।

देहाती समाज—इसमें शरद् बाबू ने शहर में शिक्षा पाये हुए रमेश बाबू के द्वारा देहाती जीवन के सुधारे जाने का चित्र खींचते हुए बताया है कि उक्त पुण्य कार्य करने में उस युवक को कैसी-कैसी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है—जेल की सज़ा तक भोगनी पड़ी है—और उन्हीं गाँववालों ने उसकी बुराई की है जिनके हित में उसने अपना तन-मन-धन लगा दिया था। ग्राम्य-जीवन का स्पष्ट चित्र देखकर खिन्न, दुखी और व्याकुल होना पड़ता है। पृष्ठ-संख्या ढाई सौ के लगभग। मूल्य २)

पता—

मैनेजर, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग।